वेद और आर्यसमाज

जो लोग वेद-शास्त्र से अनभिज्ञ हैं वे लोग यह समझ बैठे हैं कि आर्यसमाज का मत 'वैदिक धर्म' है। इन्होंने कभी वेद-पुराण को पढ़ा नहीं, आर्यसमाज संसार को धोखा देने और अपना मत फैलाने के लिये जो वेद वेद चिल्लाती है एवं अपने मत को वैदिक कहती है बस इतने से ही साधारण मनुष्यों ने आर्यसमाज के मत को वैदिक मान लिया है किन्तु 'वेद और आर्यसमाज' में इतना ही अन्तर है कि जितना ज़मीन और आसमान में, अन्धकार और प्रकाश में, रात और दिन में तथा पाप और पुण्य में। कोई भी मनुष्य ऐसा वीर भारत जननी ने उत्पन्न नहीं किया और न आगे को कर सकती है कि जो आर्यसमाज के मत को वैदिक सिद्ध करदे ? आर्यसमाजी संसार के दिखलाने के लिये या लज्जा के भय से वेदधर्म के किसी सिद्धान्त को भले ही मानलें किन्तु इनके ग्रन्थों में वेद को आगे रख, वेद का गला घोट बलात्कार वेद से ईसाई धर्म की पुष्टि की गई है और उस ईसाई धर्म को चालबाजी से वैदिक सांचे में ढाल दिया है, हमारा कर्तव्य हमको विवश करता है कि संसार की भलाई के लिये इस समस्त जाल का भंडा फोड़ कर आर्यसमाज और वेद इन दोनों के सच्चे भावों को संसार के आगे रखदें, फिर जिसको वेद अच्छा लगे वह वैदिक धर्म को स्वीकार करले और जिसको चालबाजियां अच्छी लगें वह आर्यसमाज के रजिस्टर में नाम लिखवाले। हम यहां पर वेद के समस्त सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे और साथ में आर्यसमाज के सिद्धान्त भी दिखलावेंगे। जिन कृत्यों का वेद में वर्णन नहीं है, जो केवल धर्मशास्त्रीय विषय हैं उनको लिखकर उनके ऊपर भी आर्यसमाज की विवेचना लिखदेंगे पाठक क्रम से समझ कर पढ़ें, वैदिक विषय होने के कारण किसी २ स्थल में क्लिष्टता भी अवश्य होगी ऐसे स्थलों को विद्वानों से समझ लें। जिन लोगों को धर्म प्राणप्रिय है वे धार्मिकतत्व की विवेचना के लिये इस प्रकरण को अवश्य पढ़ें किन्तु जो लोग धर्म और वेद दोनों को निष्प्रयोजन समझ आर्यसमाजी बन गये हैं वे संसार में अपना मस्तिष्क बढ़ाने के लिये पढ़ें। पढ़ने की प्रार्थना दोनों से ही है और यदि कोई न पढ़े तो

न सही, न पढ़ने से हमारी कोई हानि नहीं। प्रवीण डाक्टर की कल्याण कारक औषधि को यदि कोई रोगी नहीं खाता तो इसमें डाक्टर की क्या हानि ? इस प्रकरण के आरम्भ में प्रथम हम ईश्वर के स्वरूप का विवेचन करेंगे कि वेद इस विषय में क्या कहता है और आर्यसमाज का क्या सिद्धान्त है ?

ईश्वर स्वरूप

वेद

आज कल मनुष्यों को ईश्वर के निराकार मानने का भूत सवार होगया है। अज्ञ लोग विद्या और अनुभव से ईश्वर के स्वरूप को तो जानते नहीं केवल अन्य मनुष्यों से सुन लेते हैं कि ईश्वर निराकार है। आज तो ईश्वर के निराकार होने का कलंक आर्यसमाज ने वेदों के मत्थे मढ़ दिया, मार पीट करें बुद्धू और सजा में जावे मुल्लू, ईश्वर को निराकार मानें आर्यसमाजी और निराकार मानने की बेवकूफी मत्थे मढ़ी जाय वेदों के। वेद ईश्वर को कैसा मानते हैं इस विषय में शतपथ लिखता है कि

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च
परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य
निरुक्तं परिमितथ्ंरूपं तदस्य तेन संस्करोत्यथ
यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितथ्ंरूपं
तदस्य तेन संस्करोतीति ब्राह्मणम्।

श० का० १४ अ० १ ब्रा०२ श्रु० १८

प्रजापति (ईश्वर) दो प्रकार का है रूपवान और अरूप। वह निरुक्त है रूपवान ईश्वर के गुणों को वर्णन कर सकते हैं, अरूप ईश्वर अनिरुक्त अनिर्वचनीय है। रूपवान परिमित परिच्छिन्न प्रमाण वाला महदूद है 'अरूप अपरिमित अपरिच्छिन्न अनन्त प्रमाण रहित लामहदूद है जिसकी यज्ञों द्वारा यजन उपासना की जाती है वह ईश्वर का गुण वर्णन करने योग्य परिमित परिच्छिन्न

महदूद रूपवाला शरीर है और जहां जाकर मौन होजाना पड़ता है, जहां पर मन वाणी काम नहीं देते वह अपरिमित अनिर्वचनीय रूप है।

आप कहेंगे कि ईश्वर तो एक और उसके रूप दो हमारी समझ मे नहीं आता, हमारी तो क्या किसी के भी समझ में नहीं आसकता, यह तो सर्वथा असंभव है कि एक के दो शरीर हो।

यह बात वेद भी जानता है कि साधारण मनुष्य "उभयंवा" इस श्रुति के गहन अभिप्राय को नहीं समझ सकता इस कारण इस गूढ़ भाव का स्पष्टीकरण भी वेद कर देगा, उस स्पष्टीकरण को समझने के लिये प्रथम कुछ श्रुतिस्मृति-वर्णित सहायक प्रकरण के समझने की आवश्यकता है और वह प्रकरण यह है।

यह ब्रह्माण्ड जिसमें आप की जमीन, चांद, सूर्य और अनेक तारे हैं यह कितना बड़ा है? शास्त्रों के लेख से इसका प्रमाण पंचाशतकोटि योजन विस्तार है। दक्षिण दिशा से उत्तर तक और पूर्व से पश्चिम तक, नीचे से ऊपर तक सब तरफ पचास कोटि योजन प्रमाण रखने वाला मटर या गेंद की शकल का ब्रह्माण्ड है। अब प्रश्न यह उठता है कि इस ब्रह्माण्ड में ईश्वर कहां रहता है? इस प्रश्न पर सभी मनुष्य यह कहेंगे कि ईश्वर तो समस्त ब्रह्माण्ड भर में व्यापक होरहा है, ब्रह्माण्ड भर में ऐसा स्थान कहीं नहीं मिलेगा जहां ईश्वर की व्यापकता न हो। अच्छा हमने मान लिया कि ब्रह्माण्ड में तो ईश्वर व्यापक है, इस ब्रह्माण्ड के बाहर ईश्वर है या नहीं? एक प्रश्न यह उठा। आप को मानना पड़ेगा कि ईश्वर बाहर भी है क्योंकि ब्रह्माण्ड परिच्छिन्न (महदूद) है और "उभयं वा" इस श्रुति ने ईश्वर को अपरिच्छिन्न (लामहदूद) बतलाया है इस-कारण ब्रह्माण्ड के बाहर भी ईश्वर का होना सिद्ध होजाता है तो ईश्वर दुनियां (ब्रह्माण्ड) से बहुत बड़ा है। अब निर्णय यह करना है कि ईश्वर के कितने भाग में यह दुनियां रची गई? इस का विवेचन करता हुआ वेद लिखता है कि—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

यजु० अ० ३१ मं० ३

इस ब्रह्म के एक पाद में समस्त ब्रह्माण्डों की रचना है और इसी ब्रह्म के तीन पाद दिव में अमृत (सृष्टि रहित) हैं।

वेद ने हम को यह समझा दिया कि ईश्वर के एक हिस्से में तो दुनियां बनी है और ईश्वर के तीन हिस्से ऐसे हैं जहां पर दुनियां नहीं बनी । ईश्वर के जिन तीन हिस्सों में संसार नहीं बना या यों कहिये कि तत्वों की रचना नहीं हुई वहां पर ईश्वर निराकार है । वेद में जितने मंत्र ईश्वर को निराकार बतलाते हैं वे सब उसी रूप का वर्णन करते हैं जो ईश्वर तीन भागों में आकार शून्य है । ईश्वर के इस रूप को श्रुतियां अविज्ञेय,अनिर्वचनीय,अपरिच्छिन्न कहती हैं किंतु ईश्वर के जितने अंश में अनेक ब्रह्माण्ड बन गये उतने अंश में वेद ईश्वर को साकार बतलाते हैं । वेद ईश्वर की साकारता को सूक्ष्म रूप से नहीं बतलाते वरन् साकारता को तीन भागों में विभक्त करके विस्तृत रूप से ईश्वर की साकारता का वर्णन वेदों में आता है इसी को हम नीचे दिखलाते हैं ।

व्याप्य व्यापक

ईश्वर व्याप्य व्यापकत्व, सर्वस्वरूपत्व, अवतारत्व इन तीन प्रकारों से साकार है उस की साकारता को आप क्रम से अवलोकन करें ।

एक पं० मोहनलाल नामक सज्जन हैं, ये सज्जन साढ़े तीन हाथ के हैं, ये तो साढ़े तीन हाथ के क्या हैं साढ़े तीन हाथ का तो इनका शरीर है । इन महात्मा का तो पता ही नहीं कि कितने लम्बे चौड़े हैं । इनके नाम का भी पता नहीं, और पं० मोहनलाल जो इनका नाम कहा जाता है यह नाम तो इनके माता पिता ने कल्पित कर लिया है,अपने मन से ही गढ़कर जबर्दस्ती का सांड नियत किया है, वास्तव में तो ये फर्जी पं० मोहनलाल नाम शून्य, रूप शून्य, निराकार जीव हैं, निराकार होने पर भी अब ये साढ़े तीन हाथ के शरीर में व्यापक हो गये हैं । ये व्यापक हैं शरीर व्याप्य है इसी कारण इनका यह शरीर है क्योंकि यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि व्यापक का व्याप्य शरीर होता है । यह शरीर इनका है घसीटू धोबी का नहीं है क्योंकि जिसका कल्पित नाम घसीटू धोबी है वह आत्मा इस शरीर में व्यापक नहीं है दूसरे शरीर में व्यापक है, जिस शरीर में घसीटू धोबी नामक आत्मा व्यापक है वह शरीर घसीटू धोबी का है, इसी प्रकार देवदत्त, यज्ञदत्त, कृष्णदत्त आदि नाम वाले आत्मा जिस जिस शरीर में व्यापक हैं वह वह उनका शरीर है । अब उत्तमरीति से सिद्ध हो गया कि व्याप्य व्यापक का शरीर होता है । तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और पृथ्वी व्याप्य है इस कारण पृथ्वी उसका शरीर है,तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और जल व्याप्य है इस कारण जल उसका शरीर है, तुम्हारा ईश्वर व्यापक

है अग्नि व्याप्य है इस कारण अग्नि उसका शरीर है, तुम्हारा ईश्वर व्यापक है वायु व्याप्य है इस कारण वायु उसका शरीर है, तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और आकाश व्याप्य है इस कारण आकाश उसका शरीर है।

जब समस्त संसार ईश्वर का शरीर हो गया तो फिर ईश्वर निराकार कैसे रहा? निराकार सिद्ध करने वाला कोई वीर भारत जननी ने पैदा किया है कि वैसे ही जबर्दस्ती से निराकार निराकार चिल्लाओगे? कई एक सज्जन यह कहेंगे कि यह जो साकार बतलाने वाली युक्ति है यह पंडित जी के मस्तिष्क से निकली है यह वेद सिद्ध नहीं है। ऐसा कहने वालों को हम यही कह सकते हैं कि तुमने कभी स्वप्न में भी वेद नहीं देखा। जो हमने युक्ति दी है उसी युक्ति को वेद ज्यों का त्यों लिखता है पढ़िये—

यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं। यः पृथिवीमन्तरो यमयति स तऽआत्मान्तर्याम्यमृतः ॥७॥

योऽप्सु तिष्ठन् अद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं। योऽपोऽन्तरो यमयति स तऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥८॥

योऽग्नौ तिष्ठन् अग्नेरन्तरो यमग्निर्न वेद यस्याग्निः शरीरं। योग्निमन्तरो यमयति स तऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥९॥

य अकाशे तिष्ठन् आकाशादन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं। य आकाशमन्तरो यमयति स तऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥१०॥

यो वायौ तिष्ठन्वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुःशरीरं। यो वायुमन्तरो यमयति स तऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥११॥

श० कां० १४

जो पृथिवी में ठहरा हुआ पृथिवी के मध्य में जिसको पृथिवी नहीं जानती पृथिवी जिसका शरीर है जो पृथिवी को अपनी अनन्तशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।७। जो जल में ठहरा हुआ जल के मध्य में जिसको जल नहीं जानता जल जिसका शरीर है जो जल को अपनी अनन्तशक्ति से थामे

हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ।८। जो अग्नि में ठहरा हुआ अग्नि के मध्य में जिसको अग्नि नहीं जानता अग्नि जिसका शरीर है जो अग्नि को अपनी अनन्तशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ।६। जो आकाश में ठहरा हुआ आकाश के मध्य में जिसको आकाश नहीं जानता आकाश जिसका शरीर है जो आकाश को अपनी अनन्तशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ।१०। जो वायु में ठहरा हुआ वायु के मध्य में जिसको वायु नहीं जानता वायु जिसका शरीर है जो वायु को अपनी अनन्तशक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है ।११।

श्रुतियों के प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया कि सृष्टि में ईश्वर व्यापक है अतएव वह साकार है।

सर्वस्वरूप ।

व्यापकत्वेन ईश्वर को साकार कह दिया अब यह दिखलावेंगे कि सृष्टि में जितने आकार हैं वे सब ब्रह्म के स्वरूप हैं। समस्त रूप ब्रह्म के रूप से बने हैं और अन्त में समस्त ही रूप ईश्वर में लय होंगे। ब्रह्म को छोड़कर अन्य कोई रूप ही संसार में नहीं है। जितने रूप दृष्टि गोचर होते हैं ये समस्त रूप ईश्वर के निज रूप हैं इसके विवेचन को आप पढ़ने की कृपा करें।

हमको सब से पहिले यह जानना चाहिये कि पृथ्वी किस चीज से बनी है। जब हम पृथ्वी के बनने की खोज को उठाते हैं तो पता चलता है कि पृथ्वी जल से बनी। इसमें प्राचीन और नवीन किसी को भी विरोध नहीं। अब हमको इतना ज्ञान हुआ कि वास्तव में पृथ्वी कोई चीज नहीं है किन्तु जब जल में संचलन शक्ति उत्पन्न होती है, संचलन शक्ति के प्रभाव से जल कठोर होजाता है और वही पृथ्वीरूप धारण कर जाता है। पृथ्वी की सत्ता कोई भिन्नसत्ता नहीं है किन्तु जलसत्ता का कठिन रूप पृथ्वी कहलाती है।

अब जल का विवेचन करिये, जल क्या चीज है ? अग्नि में संचलन उत्पन्न होने से जल बन जाता है, अग्नि का रूपान्तर ही जल है। पाश्चात्य विद्वानों का सिद्धान्त है कि पृथ्वी प्रथम आग का गोला थी, उस अग्नि से जल बना, जल कठोर होकर पृथ्वी बनी, जल कोई वस्तु नहीं है किन्तु अग्नि का रूपान्तर ही जल है, जल का कारण अग्नि हुआ। अब अग्नि के निर्णय करने में हम इस फल पर पहुँचते हैं कि दो विरुद्ध धर्मवाले वायु के मिलने से अग्नि उत्पन्न हो

जाता है, अग्नि कोई पृथक् चीज नहीं है वायु का दूसरा रूप ही अग्नि है। अब यह विचार करना है कि वायु क्या चीज है? इस निर्णय में हम यह जानते हैं कि आकाश के जो सूक्ष्म परमाणु हैं उनमें जब संचलनशक्ति (हरकत) उत्पन्न होती है तो आकाश के सूक्ष्म परमाणु कुछ कठोर हो जाते हैं और वे धक्का देने लगते हैं इसी का नाम वायु है। प्रत्यक्ष में आप हाथ में पंखा ले लीजिये और उसको हिलाइये, पंखे के हिलने से आकाश के परमाणुओं में संचलनशक्ति उत्पन्न हो जावेगी, वे परमाणु धक्का देंगे वही वायु कहलावेगा। सिद्ध हुआ कि वायु कोई भिन्न सत्ता वाला पदार्थ नहीं है किन्तु आकाश का रूपान्तर है। बस फल निकला कि पृथ्वी जल से उत्पन्न हुई, जल अग्नि से बना, अग्नि वायु का कार्य है, वायु आकाश से बन जाता है। अब निर्णय यह करना है कि आकाश किस चीज से बनता है? इसके ऊपर फ्लासफरों की और साइंस वेत्ताओं की बुद्धि विचार छोड़ देती है। यहां पर वेद से काम लेना होगा कारण इसका यह है कि जहां पर संसार की फ्लासफियां चीं बोल समाप्त हो जाती हैं वहां से वैदिक विज्ञान का आरम्भ होता है। सर्वोपरि विज्ञान वैदिक ज्ञान बतलाता है कि वह जो निराकार ब्रह्म है, जहां पर सृष्टि नहीं हैं, जिसको अमृत कहा है उससे और यह जो दृश्य ब्रह्माण्ड रूप ईश्वर है इससे आकाश उत्पन्न होता है। अब सिद्ध हो गया कि संसार में जितने रूप (शकलें) हैं वे सब ब्रह्म के रूप से उत्पन्न हुये हैं।

इस विषय में वेद का यह कथन है कि—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः।
आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी।

तैत्ति० १ ब्रह्मा० बल्ली अनु० १

उस अदृश्य ब्रह्म से तथा इस दृश्य ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई।

समस्त संसार ही ब्रह्मस्वरूप है, इस विषय को वर्णन करते हुये पुष्पदन्त लिखते हैं कि—

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।

परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥

भगवन्! आप सूर्य हैं, आप ही चन्द्रमा हैं, पवन आप हैं,अग्नि भी आप ही हैं, जल समूह आप हैं, आकाश भी आप ही हैं, पृथ्वी आप हैं, आत्मा आप हैं,हम एक भी तत्व ब्रह्माण्ड में ऐसा नहीं पाते जो आप न हों। जो बात पुष्पदन्त ने कही है उसी को वेद कहता है कि

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

यजु० अ० ३२ मं० १

वही अग्नि, वही आदित्य, वही वायु, वही चन्द्रमा, वही पराक्रम, वही ब्रह्म, वही जल और वही प्रजापति है।

जब वेद संसार के समस्त रूपों को ब्रह्म के रूप कह रहा है फिर निराकार कहना मूर्खता नहीं तो और क्या है। विचारशील मनुष्य समझ गये होंगे कि यह समस्त संसार ईश्वर से उत्पन्न हुआ है और इस संसार का 'अभिन्ननिमित्तो पादानकारण' ईश्वर है अतएव संसार में छोटे बड़े जितने रूप हैं वे सब ईश्वर के रूप हैं।

तत्वात्मक जगत् ब्रह्म का रूप है इसके विषय में श्रुति कहती है कि—

द्वावेव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च।
तदेतन्मूर्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षात्।
अथामूर्तं वायुश्चान्तरिक्षम्।

बृह० अ० ४ ब्रा० ३ कं० १।२।३

ब्रह्म के दो रूप हैं एक मूर्त (साकर) दूसरा अमूर्त (रूपरहित) वायु और अन्तरिक्ष से भिन्न पृथ्वी, जल, तेजात्मक ब्रह्म का मूर्त रूप है, आकाश वायु ये अमूर्त हैं।

जिस प्रकार बृहदारण्यक की श्रुतियां पंचतत्वात्मक जगत् को ब्रह्म का रूप बतलाती हैं इसी प्रकार यजुर्वेद कहता है कि—

पुरुष एवेद ꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।

यजु० अ० ३१ मं० २

यह जो दृश्यमान सब जगत् है तथा पूर्व कल्प में जो जगत् रचा गया था और आगे के कल्प में जो रचा जावेगा यह सब पुरुष (ईश्वर) ही है।

वेद की दृष्टि में जितने रूप संसार में हैं वे सब ईश्वर के रूप हैं, ईश्वर से भिन्न कोई रूप ही नहीं। इस वेद सिद्धांत के विरुद्ध जो ईश्वर को निराकार मानते हैं वे वेद विज्ञान से कोसों दूर हैं या यों कहिये कि जान बूझ कर वेद ज्ञान को संसार से उड़ा देना चाहते हैं।

अवतारत्व

हमने पहिले व्यापकत्व के कारण ईश्वर को शरीरधारी सिद्ध किया, फिर यह भी दिखलाया कि संसार में जितने रूप हैं वे सब ब्रह्म के रूप हैं इस कारण वेद ने ईश्वर को साकार बतलाया। अब आगे यह दिखलावेंगे कि ईश्वर का अवतार धारण करना वेद ने बड़े विस्तृत रूप से लिखा है। देखिये—

एषोह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
पूर्वोह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥

यजु० अ० ३२ मंत्र ४

यह दृश्यमान् जो देव ईश्वर है यह समस्त दिशाओं में व्यापक है, यह पूर्व प्रकट हुआ था और गर्भ में आया था वही प्रकट हुआ और आगे को प्रकट होगा यह सर्वतोमुख होकर प्रत्येक जन के सन्मुख स्थित है।

इसमें ईश्वर का गर्भ में आना और जन्म लेना उत्तमरीति से कहा है जिसको इस पर सन्तोष न हो वह नीचे लिखे मंत्र को पढ़े।

प्रजापतिश्चरति गर्भे
अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा-
स्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

यजु० अ० ३१ मं० १९

प्रजापति ईश्वर गर्भ में आता है, है तो अजन्मा किन्तु अजन्मा होकर भी वह बहुत प्रकार से जन्म धारण करता है, उसके स्वरूप को धीर पुरुष देखते हैं, वह कौन ईश्वर है जिसमें ये समस्त ब्रह्माण्ड ठहरे हैं।

इन दोनों मंत्रों से ईश्वर का गर्भ में आना और जन्म धारण करना सिद्ध है किन्तु इन दो प्रमाणों की पुष्टि के लिये हम एक तीसरा मंत्र देते हैं ।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥

ऋ० म० ६ अ० ४ सू० ४७ मं० १८

ईश्वर अपने रूप को अपने प्रेमी भक्त के दिखाने के लिये अपनी माया का आश्रय लेकर असंख्य रूपों को धारण करता है । यों तो उसके सैकड़ों रूप हैं किन्तु उन सब में दश मुख्य हैं ।

इसी मंत्र को लेकर जगद्गुरु शंकराचार्य ने निराकारवादियों का पराजय कर दिया । शास्त्रार्थ में निराकारवादियों ने यह दावा किया था कि ईश्वर सर्वथा ही निराकार है अतएव उसके मानने से कोई भी लाभ नहीं, जब कोई भो लाभ नहीं तो विना प्रयोजन का ईश्वर क्यों माना जावे ? इस पूर्वपक्ष को सुनकर जगद्गुरु शंकराचार्य बोले कि—

मायाभिरिन्द्रः पुरुरूप ईयत
इत्येव तस्य बहुरूपता श्रुता ।
तस्माच्चिदात्मा प्रकृतेः परः प्रभु-
र्ज्ञेयोस्ति मोक्षाय मुमुक्षुभिर्मुदा ॥

शंकर दिग्विजय

"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" वेद के केवल इस एक मन्त्र से ही ईश्वर के बहुत अवतार सिद्ध होजाते हैं । ईश्वर चैतन्य है वह अवतार धारण करके भक्तों की रक्षा करता है, प्रकृति से परे है अतएव मोक्ष पाने वालों को मोक्ष पाने के लिये उस परमात्मा का ज्ञान करना परमावश्यकीय है ।

इस उत्तर पर निराकारवादियों का पक्ष गिर गया और शंकर का विजय हो गया । अब कोई कैसे कह सकता है कि वेद में ईश्वर के अवतार का लेख नहीं है ।

इन तीन मन्त्रों में सामान्यता से ईश्वर का गर्भ में आना और जन्म लेना बतलाया गया । अब विशेष अवतारों का वर्णन वेद बतलाता है पाठक देखें ।

यक्षावतार

तलवकारोपनिषद् लिखता है कि—

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये
देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं
विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥१४
तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव
तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥१५
तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि
किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥१६
तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीत्यग्निर्वा
अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥१७
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदᳪंसर्वं
दहेयम् । यदिदं पृथिव्यामिति ॥१८॥
तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय
सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव
निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥१९
अथ वायुमब्रुवन्वायवे तद्विजानीहि
किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥२०॥
तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा
अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥२१
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदᳪं
सर्वमाददीयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥२२

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय
सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव
निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥२३
अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति
तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ २४

एक समय ब्रह्म ने देवताओं पर विजय पाया। गाथा यों है कि एक दिन समस्त देवता इकट्ठे हुये और प्रत्येक देवता कहने लगा कि इस युद्ध में हमारा विजय हुआ, देखो हमारे महत्व को। जब प्रत्येक देवता यह कहने लगा कि यह हमारा ही विजय है, हमारा ही महत्व है, उस समय ईश्वर एक यक्ष के रूप में प्रकट हुये। इस को देख कर देवता बोले यह कौन है? अग्नि से देवताओं ने कहा अग्ने! तू जात वेदा है इस के पास जाकर पता लगा यह कौन है। अग्नि यक्ष के पास पहुंचा, यक्ष ने पूछा तू कौन है? अग्नि ने कहा कि मैं जातवेदा अग्नि हूं। यक्ष बोला तुझ में क्या पराक्रम है? अग्नि ने कहा मेरे बल की कुछ न पूछिये यदि मैं चाहूं तो समस्त ब्रह्माण्ड को फूंक कर खाक बनादूं। यह सुन कर यक्ष ने एक "तृण" रक्खा कि इसको जलाओ। अग्नि बड़े वेग से उस तृण पर टूटा किंतु तृण को न जला सका, लौट कर देवताओं के पास आया, देवताओं से कहा कि यह यक्ष कौन है इतना जानना मेरी शक्ति से बाहर है। फिर देवताओं ने वायु से कहा कि तुम जाओ और पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है। इतना सुन कर वायु यक्ष के पास गया। यक्ष ने पूछा कि तुम कौन हो? इस ने उत्तर दिया कि मैं मातरिश्वा वायु हूं, यक्ष बोला तुम में क्या बल है? वायु ने कहा यदि मैं चाहूं तो अपने वेग से इस ब्रह्माण्ड को उड़ा इस के टुकड़े बना दूं। यक्ष ने एक 'तृण' रक्खा और वायु से कहा इस को उड़ाओ। वायु ने बड़े वेग से उस तृण पर धावा मारा किंतु वायु से वह तृण न उड़ सका, हार कर वायु देवताओं के पास आया और बोला कि मैं नहीं जान सकता यह यक्ष कौन है। फिर देवताओं ने इन्द्र से कहा आप जावें आप पता लगा सकेंगे कि यह यक्ष कौन है। इन्द्र पता लगाने के लिये उस यक्ष के पास गया इतने ही में यक्ष का तिरोभाव होगया।

मत्स्यावतार

इसी प्रकार आर्यसमाज के वैदिक प्रेस अजमेर के छपे हुये शतपथ पृष्ठ ५८

में मत्स्यावतार का उल्लेख है । उस समस्त प्रकरण को हम नीचे लिखते हैं ।

मनवे ह वै प्रातः । अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवने जनायाहरन्त्येवं तस्यावने निजानस्य मत्स्यः पाणीऽआपेदे ॥१॥ सहास्मै वाचमुवाद । बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः सर्वाः प्रजानिर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति कथं ते भृतिरिति ॥२॥ सहोवाच । यावद्वै क्षुल्लका भवामो वह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुम्भ्यां माग्रे बिभरासि स यदा तामतिवर्धाऽअथ कर्षूं खात्वा तस्यां मा बिभरासि स यदा तामतिवर्धाऽअथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वाऽअतिनाष्ट्रो भवितास्मीति॥ ३॥ शश्वद्ध झष आस । सहि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेति समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघऽउत्थिते नावमापद्यासैथौ ततस्त्वा पारयितास्मीति ॥४॥ तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार । स यतिथीं तत्समां परिदिदेश ततिथी समां नावमुपकल्प्योपासां चक्रे स औघऽउत्थिते नावमापेदे तं स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव ॥५॥ स हो वाच । अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकं समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति स ह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो ह ताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे।६।

शत० १ । ८ । १४ । ६

स्वायम्भुव राजा मनु के लिये प्रातःकाल हाथ मुखादि के शोधनार्थ सेवक लोग जल लाये जैसे कि सर्वत्र राजा रईसों के सेवक लोग दोनों हाथों से अपने २ स्वामियों के समीप हाथ मुखादि धोने के लिये जल लाया करते हैं यहां 'पाणिभ्याम्' इस लिये कहा है कि मान्य पुरुषों के लिये एक हाथ से जल लाना अस-

ग्यता है । उन हाथ मुख की शुद्धि करते हुये मनु जी के हाथों में लिये जल में मछली प्राप्त हुई ॥१॥ वह मत्स्य इस राजा मनु जी से यह बोला कि हे राजन् ! तुम मेरा पोषण करो मैं तुम्हारा पालन करूंगा । राजा मनु जी बोले तुम किससे मेरी रक्षा वा पालन करोगे ? तब मत्स्य बोला कि बड़ा जल का समूह (बूड़ा) आवेगा वह इस द्वीप के सब मनुष्यादि प्रजाओं को बहा ले जावेगा वा डुबा देगा, उस जल में बह जाने से तेरी रक्षा करूंगा तब राजा बोला कि हे मत्स्य ! तुम्हारा पोषण कैसे हो सो बतलाओ ॥ २ ॥ वह मत्स्य बोला कि जब तक हम छोटे हैं तब तक हमारा नाश करने वाली जल जंतुओं की बहुत जातियां हैं अथवा बड़ी २ मछलियां ही छोटी मछली को खा लेती हैं, इससे पहिले मुझको घड़े में रखकर पोषण कीजिये, मैं जब घड़े में इतना अधिक बढ़ूं कि घड़े में न समा सकूं तब पृथ्वी में कोई बनावटी जलाशय खोदकर उसमें मेरा पोषण कीजिये । मैं उस जलाशय में भी जब इतना अधिक बढ़ूं कि उसमें न समा सकूं तब मुझको समुद्र में पहुंचा दीजिये मैं निश्चय करके अपने नाशक शत्रुओं का अतिक्रमण करके सब को दबा ले जाने वाला हो जाऊंगा ॥ ३ ॥ तदनंतर वह शीघ्र ही बड़ा मच्छ होगया जिस कारण वह मत्स्य बहुत अधिक बढ़ता था इस से शीघ्र ही झष होगया । इस के अनन्तर फिर वह मत्स्य बोला कि इतने दिन में वह डूबा अर्थात् सब को डुबा देने वाला जलसमुदाय आवेगा । अभिप्राय यह है कि मत्स्य भगवान् ने राजा से कहा कि इसी वर्ष में इतने दिन बाद डूबा आवेगा । मत्स्य भगवान् राजा मनुजी से कहते हैं कि डूबा आने केसमय पहिले से नौका बनवा कर हमारी उपासना करना अर्थात् हमारा सहारा लेना और डूबा आने पर उस नौका में चढ़ जाना मैं तुम को पार करूंगा ॥४॥ राजा मनु ने मत्स्य भगवान् का ,तालाब आदि से भली भांति रक्षण भरण पोषण करके पीछे समुद्र में पहुँचा दिया । उन मत्स्य भगवान् ने जितने काल में डूबा आने का विचार कहा था उतने ही काल में नाव बनाकर वा नौका मिलने पर मत्स्य भगवान् की उपासना राजा ने की । वह राजा मनु औघ उठने पर नौका में चढ़ गया । उस राजा मनु को मैं अपने समीप खींच लूंगा ऐसे विचार से मत्स्य भगवान् नौका के समीप आये । उस मत्स्य के सींग में राजा ने नाव को बांध दिया । उस नाव की रस्सी को लेकर वह मत्स्य उत्तर हिमालय पहाड़ की ओर नौका को लेगया ॥५॥ मत्स्य रूप भगवान् बोले कि मैंने तुम्हारी रक्षा कर दी तुम डूबने से बच गये,अब वृक्ष में नौका को बांध दो,पहाड़ में विद्यमान रहते

हुये तुम को जल पहाड़ से पृथक् न कर देवे इस लिये जितना २ जल बढ़ता जावे उतना २ तुम भी ऊंचे पहाड़ की ओर बढ़ते जाना, वे मनु उतने ही आगे बढ़ गये जिसमार्ग से उत्तरीय पर्वत में मनु जी ने बूड़ा के समय नौका द्वारा गमन किया था वही वही स्थान आगे आगे मनु का अवसर्पण कहाने लगा। यह जल का बूड़ा सब प्रजा को बहा लेगया अर्थात् सब प्रजा जल में डूब कर नष्ट होगई तदनन्तर इस जगत् में एक मनु ही शेष रह गये, अन्य सब का प्रलय होगया ।

धर्मवीरो ! यह मत्स्यावतार जो आप को सुनाया गया है यह वेद में मौजूद है । इसी आख्यायिका को ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाइबिल में "नूह की नाव" के नाम से लिखा गया है ।

ब्रह्मावतार

जिस प्रकार ब्राह्मण-उपनिषद् ग्रन्थों में अवतारों का उल्लेख है उसी प्रकार मन्त्र भाग में भी अवतारों का वर्णन आता है । उन्हीं में से हम ब्रह्मावतार को नीचे लिखते हैं ।

ब्रह्म ज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि
ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे
तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥

अथर्व० १९ । २३ । ३०

ब्रह्म ने बड़े बल धारण किये हैं, ब्रह्म ने ही सृष्टि के आरंभ में बड़े द्युलोक का विस्तार किया है, सब प्राणियों में पहिले वही ब्रह्मारूप से प्रकट हुआ, उस ब्रह्म से स्पर्धा करने को कौन समर्थ है ।

यह श्रुति मन्त्रभाग की है और इसमें स्पष्ट ब्रह्मा का अवतार बतलाया गया है । इसकी पुष्टि में मनु जी लिखते हैं कि—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥

मनु० अ० १ । ६

वह जो सुवर्ण की कान्तिवाला सूर्य के समान तेजधारी अण्ड था उस अण्ड

में सर्वलोक का पिता ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुआ।

मनु ने ब्रह्माण्ड के सूक्ष्मरूप विराट से 'ब्रह्मा की उत्पत्ति लिख कर वेद मंत्र की पुष्टि कर दी। जो कुछ वेद मन्त्र ने लिखा था उसकी पुष्टि करता हुआ मुण्डकोपनिषद् लिखता है कि—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता॥

ब्रह्मा जो सब देवताओं से प्रथम उत्पन्न हुये जो संसर के रक्षक और विश्व के बनाने वाले हैं।

मुण्डकोपनिषद् के मंत्र में यह स्पष्ट कह दिया गया कि संसार के बनाने वाले और संसार की रक्षा करने वाले ब्रह्मा समस्त देवताओं से पहिले प्रकट हुये।

संसार का बनाना और संसार की रक्षा करना ईश्वर के सिवाय अन्य में घट नहीं सकता अतएव मानना पड़ेगा कि ब्रह्मा ईश्वरावतार है।

वराहावतार

ब्रह्मावतार को हम दिखला आये, अब वेद से वराहावतार दिखलाते हैं पढ़िये--

वराहेण पृथिवी संविदाना
सूकराय विजिहीते मृगाय॥४८॥

अथर्व० कां० १२ अनु० १

वराह सूकर रूपधारी प्रजापति ने यह पृथ्वी उद्धार की है।

इसकी पुष्टि में तैत्तिरीयारण्यक लिखता है कि—

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।

तैत्ति० अ० प्र० १ अनु० १ मं० ३०

हे भूमि! तुमको असंख्य भुजावाले कृष्ण वराह ने उद्धार किया है।

जिस वराह का अथर्व वेद ने वर्णन किया और तैत्तिरीयारण्यक ने जिसकी पुष्टि की उसी के ऊपर शतपथ लिखता है कि--

इयतीह वाऽइयमग्रे पृथिव्या स प्रादेशमात्री तामेमूष

...ति वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिः प्रजापतिरिति ॥

शत० १४ । १ । २ । ११

...पहिले भूमि प्रादेशमात्र प्रकट हुई, उसका वराह ने उद्धार किया सो इसका ...ति यही प्रजापति है ।

... वराहावतार को आगे रख कर नास्तिक लोग बड़ी उछल कूद मचाया ...रते हैं, ये कहते हैं कि जिन पुराणों में ईश्वर को ही वराह मान लिया हो वे ...राण वेद निन्दक नहीं हैं तो क्या हैं। वराहावतार की मसखरी करने के लिये ...देशकाचार्य रुद्रदत्त बरुआ ने "स्वर्ग में सबजेक्टकुमेटी" नामक पुस्तक लिखी। ...स कुमेटी में समस्त अवतार और देवता बिठलाये, सब के आगे भोजन परोसा ...या। वराह का भोजन भिष्टा बना कर वराहावतार और पुराणों की खूब मिट्टी ...दी, किंतु अब यह वराहावतार वेद में से निकला। क्या वराहावतार की ...मसखरी करके आर्यसमाज ने वेदों को पैरों के नीचे नहीं कुचला ?

वामनावतार

वराहावतार के पश्चात् अब पाठकों के आगे हम भगवान् वामन का अवतार रखते हैं।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।

समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥

यजु० अ० ५ मं० १५

विष्णु ने इस दृश्यमान ब्रह्माण्ड को नापा और तीन प्रकार से पद रक्खा, ...सके पद में समस्त संसार स्थित है।

इसकी पुष्टि में कठोपनिषद् लिखता है कि—

मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ।

कठ० वल्ली ५ श्रु० ३

मध्य में बैठे हुये वामन की विश्वेदेव उपासना करते हैं।

इसकी पुष्टि में शतपथ लिखता है कि—

वामनो ह विष्णुरास ।

शत० १ । २ । ५ । ५

विष्णु ही वामन थे।

इसी प्रकार वेद में समस्त अवतारों का वर्णन है, हमने यहां पर कुछ भगवदवतार दिखला दिये, अधिक दिखलाने से पुस्तक बहुत बड़ी हो जावेगी।

निराकार

मंत्र और ब्राह्मण तथा उपनिषद् तीनों भागों में ईश्वर को निराकार भी बतलाया गया है किन्तु जो ग्रन्थ ईश्वर को निराकार बतलाता है वह साथ ही साकार रूप का भी वर्णन कर देता है। कोई भी ग्रन्थ ईश्वर को केवल निराकार नहीं कहता। वेद में एक मन्त्र ऐसा है जो ईश्वर को निराकार बतलाता है किन्तु वह भी निराकार बतला कर साकार बतला देता है। मन्त्र यह है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण—
मस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू—
र्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

यजु० ४०। ८

वह ईश्वर सर्वव्यापक, पराक्रमी, अकाय फोड़ाफुंसीवर्जित, नसनाड़ी के बन्धन से शून्य, शुद्ध, पापरहित, कवि, बुद्धिमान, चारोंतरफ से प्रकट होने वाला, अपने आप शरीर धारण करने वाला वह हमको सैकड़ों वर्ष तक इच्छित अर्थों को दे।

इस मन्त्र के "अकायम्" पद को आगे रख कुछ लोग उछल कूद मचा कह चलते हैं कि देखो वेद ईश्वर को सर्वथा निराकार बतला रहा है किन्तु यह कल्पना सर्वथा मिथ्या है। जब ईश्वर के शरीर ही नहीं तो फिर यह क्यों कहा कि ईश्वर व्रणशून्य, नश नाड़ी के बन्धन से रहित, शुद्ध पापशून्य है। जब शरीर का निषेध कर दिया तब तो व्रण, नश नाड़ी और पाप तीनों का ही निषेध हो गया। शरीर धारियों के ही फोड़ा फुन्सी नश नाड़ी और पापानुष्ठान होता है जब शरीर ही नहीं तो फिर व्रणादि का निषेध कैसा?

किसी पुरुष ने अपने मित्र से पूछा कि आपके कोई लड़का है उसने उत्तर दिया कि मेरे कोई लड़का नहीं और उस लड़के के एक आंख तथा एक

नहीं-इसका क्या मतलब ? मतलब यही निकलेगा कि इस पुरुष के निज का लड़का नहीं है, गोद लिया है और वह काना टोंटा है। यही दशा इस अर्थ में है (चिञ्-चयने) धातु से 'कायम्' पद बनता है, अर्थ यह है कि 'चिनोति सुखदुःखादिकं पापपुण्यात्मकं यस्मिंस्तत्कायम्' इकट्ठे किये जाते हैं सुखदुःख और पापपुण्य जिसमें उसका नाम काय है और ईश्वर कैसा है? वह 'अकाय' है, उसके शरीर में सुख-दुःख, पाप पुण्यात्मक कर्मबन्धन नहीं होता, वह स्वेच्छातनु है, अपनी इच्छा से शरीर धारण करता है। यह अर्थ 'अकायम्' पद का होता है। इसी के ऊपर वेदान्तदर्शन लिखता है कि 'नटवल्लीला कैवल्यम्' ईश्वर का शरीर नट की भांति लीला के लिये है, लीला को छोड़ कर ईश्वर के शरीर धारण करने में दूसरा कोई हेतु नहीं, मन्त्र का भाव तो यह है किन्तु इससे अवतार सिद्ध हो जाता है, अवतार सिद्ध न हो इस भय से कई एक मनुष्य 'सपर्यगात्' इस मंत्र के अर्थ की मिट्टी पलीत कर देते हैं।

इस मंत्र के उत्तरार्द्ध में "परिभूः" शब्द है, 'परिभूः' शब्द का अर्थ चारों तरफ से प्रकट होने वाला है। जब ईश्वर परिभू है और वह चारों तरफ से प्रकट होता है, शरीर धारण कर लेता है फिर वह केवल निराकार कैसा ? परिभू के पश्चात् ईश्वर को 'स्वयम्भू' लिखा है, इसका अर्थ है 'स्वयं भवतीति स्वयम्भू' जो अपने आप शरीर धारण करे। जब वह अपने आप शरीर धारण करता है तो फिर उस को निराकार कौन कहेगा।

स्वयम्भूः शब्द के ऊपर मनुजी लिखते हैं कि

तत: स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तोव्यंजयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥

मनु० अ० १

प्रलय काल के अनन्तर स्वयंभू भगवान् इस अव्यक्त संसार को प्रकट करने के निमित्त इस पंच महाभूत और महत्तत्व अहंकार को रचते हुये प्रकट हुये।

अब स्वयम्भू शब्द का अर्थ अपने आप शरीर धारण करना होता है, अब ईश्वर स्वयम्भू है फिर उस को निराकार बतलाना संसार पर अपनी बेवकूफी सिद्ध कर देने को छोड़ कर अन्य कुछ भी मतलब नहीं निकलता। इस एक मंत्र को छोड़ कर चारों वेदों में कोई दूसरा ऐसा मंत्र नहीं है जो ईश्वर

निराकार कहता हो ,इस से तुम को मानना पड़ेगा कि मूर्ख मनुष्य ही ईश्वर को केवल निराकार कहते हैं । दुर्जन तोष न्याय से हम यह भी मानलें कि इस मंत्र में ईश्वर को निराकार कहा है, इतने से भी तो ईश्वर केवल निराकार सिद्ध नहीं होता क्योंकि 'तदेवाग्निः' 'पुरुष एवेदम्' 'ब्रह्म ह देवेभ्यः' 'मनवे ह वै''एषो-हदेवः''प्रजापतिश्चरति' 'ब्रह्मज्येष्ठा' 'ब्रह्मादेवानाम्' "वराहेण पृथ्वी""उद्धृतासि वराहेण''इषतीह वा' 'इदं विष्णुः' 'मध्ये वामनम्''वामनोह विष्णुः'प्रभृति प्रमाणों से जो वेद ने ईश्वर को साकार बतलाया है क्या इन वेद के प्रमाणों को कोई मनुष्य दबा लेगा ? चोर हमेशा चोरी करता है किंतु किसी न किसी दिन पकड़ा ही जाता है । वेद के प्रमाण चुरा कर जो चोरटे साकार प्रतिपादक वेद के प्रमाणों को चुरा लिया करते थे आज वे पकड़े गये,अब नहीं मालूम यमराज के यहां उन को कितने दिन का वेटिंग रूम मिलेगा ।

उपनिषदों में ईश्वर को निराकार प्रतिपादन किया है । साथ ही साथ परमात्मा को साकार भी बतला दिया है । चालबाज लोग निराकार की श्रुति मनुष्यों के आगे रख देते हैं और समझा देते हैं कि देखो ईश्वर निराकार है या नहीं ? ये साधारण लोग इन बढ़िया चोरों की चोरी को क्या परखें, वे मान जाते हैं कि वास्तव में ईश्वर निराकार है । धोखा देने की श्रुतियों का नमूना देखिये ।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं-सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं वृहत् ।१७॥

श्वेताश्वतर ० अ० ३

सब इन्द्रियों के विषयों को प्रकाश देने वाला , समस्त इन्द्रिय रहित, सब का प्रभु स्वामी, सब का रक्षक , सब से बड़ा ईश्वर है ।

इस श्रुति को निराकार की सिद्धि में देते हैं और देनी भी चाहिये क्योंकि इसमें ईश्वर को निराकार बतलाया गया है । दूसरी श्रुति जो देते हैं वह यह है ।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्तिवेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥१६॥

श्वेताश्वतर० अ० ३

ईश्वर के हाथ और पैर नहीं किंतु विना पैर के चलता है और विना हाथ के पकड़ता है, ईश्वर के नेत्र नहीं किंतु वह देखता है,कान नहीं सुनता है, वह समस्त जानने योग्य पदार्थ को जानता है किंतु उस ईश्वर का जानने वाला कोई नहीं, उस को अग्र सब से प्रथम वर्तमान पुराण पुरुष कहते हैं ।

इन श्रुतियों से निराकार सिद्ध करना कुछ बहुत बड़ी बुराई नहीं है। बुराई तो यह है कि इसी श्वेताश्वतरोपनिषद् में "एषो हदेवः २ । १६" की श्रुति जो ईश्वर का अवतार होना सिद्ध करती थी उसको छिपा लिया गया, यह श्रुति यजुर्वेद में भी आई है श्रुति और इसका अर्थ हम पहिले लिख आये हैं इस-कारण हम इसको यहां नहीं लिखते । इस श्रुति और इसके अर्थ को पाठक पीछे देखलें । यह अच्छा न्याय है कि जो श्रुति ईश्वर को निराकार बतलावे वह तो पबलिक् के आगे रखदी जावे और जो साकार बतलावे वह छिपाली जावे ? जो लोग यह कहते हैं कि हम वेद को स्वतः प्रमाण और उपनिषदों को वेदानुकूल होने पर प्रमाण मानते हैं वे ही वेद में आई हुई "एषो ह देवः" श्रुति को छिपाते हैं और जो "सर्वेन्द्रियगुणाभासम्" तथा 'अपाणिपाद.' श्रुतियां वेद में नहीं आई उनको स्वतः प्रमाण मानते हैं, इस चालबाजी पर पाठकों को ध्यान देना चाहिये ।

निराकार की सिद्धि में जो मुण्डक की श्रुति दी जाती है वह यह है ।

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमचक्षुः
श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं
सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं
तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥

जो ईश्वर अदृश्य है, अग्राह्य है, अगोत्र है, वर्णरहित है, जिसके चक्षु नहीं, जिसके कान नहीं, हाथ नहीं, पैर नहीं, नित्य है, विभु है, सर्वव्यापक है, जो सूक्ष्म है, जो अव्यय है, समस्त भूतों का योनि है उसको धीर पुरुष देखते हैं ।

ठीक, यह श्रुति निराकार ईश्वर का वर्णन करती है, निराकार विषय में इसका प्रमाण देना न्याय है किन्तु अन्याय यह है कि "ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्ब-भूव" यह मुण्डक की श्रुति जो ईश्वर को साकार बतलाती है इसको छिपा लिया जाता है । समस्त उपनिषदों में ईश्वर को निराकार और साकार बतलाया है ।

चालबाज लोग निराकार प्रतिपादक श्रुतियां पबलिक् को सुनाते हैं और साकार प्रतिपादक छिपा देते हैं, ये नवीन चोरटे इस प्रकार की चोरी से ईश्वर को निराकार सिद्ध करते हैं; हमें विश्वास है कि इस प्रकरण को पढ़ने वाले इनकी चोरी का भंडाफोड़ कर इनको चालबाजियों को संसार के आगे रख देंगे।

भाव।

ईश्वर के विषय में वेद का अभिप्राय यह है कि वह प्रलय काल में अरूप रहता है, वह अरूप ब्रह्म इच्छाशून्य, अविज्ञेय, अनिर्वचनीय है किन्तु उस ब्रह्म का एक अंश मायिक ब्रह्म कहलाता है, उसमें इच्छा होती है, वही संसार को अपने शरीर से उत्पन्न करता है, जिस प्रकार मिट्टी से घट और लोहे से कुल्हाड़ी, सुवर्ण से कटक, अंगूठी बनती हैं उसी प्रकार यह समस्त संसार ब्रह्म से बनता है। जैसे घट मिट्टी से और कुल्हाड़ी लोहे से तथा कड़े-अंगूठी सोने से भिन्न नहीं हैं ऐसे ही यह संसार ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जितनी शक्लें छोटी-बड़ी, लम्बी-चौड़ी संसार में दीख रही हैं ये सब ब्रह्म की शक्लें हैं इस अभिप्राय को लेकर वेद ने व्यापकत्व और सर्वस्वरूपत्व दो भेदों से प्रजापति को साकार बतलाया। संसार में ईश्वर अनेक रूप धारण करके आता है इसी को अवतार कहते हैं, वेद ने इस प्रकरण को "एषोहदेवः" 'प्रजापतिश्चरति' 'ब्रह्मह देवेभ्य' 'मनवे ह वै' "ब्रह्म ज्येष्ठा" 'ब्रह्मा देवानाम्' 'इदं विष्णुः' 'वामनो ह विष्णुः' 'वराहेण पृथिवी' 'उद्धृतासि वराहेण' प्रभृति अनेक प्रमाणों से ईश्वर के अवतार धारण करने की पुष्टि की है किन्तु ब्रह्माण्डों से बाहर जो ब्रह्म है वह अब भी अरूप है इस कारण से वेद ने प्रजापति को रूपरहित और रूपवान दो प्रकार का बतलाया-यह वेद का तत्व है। हमें आशा है कि पाठक इस प्रकरण को परिश्रम लगाकर समझने की कृपा करेंगे।

आर्यसमाज।

वेद जो कुछ ईश्वर के स्वरूप में लिखता है वह हमने पाठकों के आगे रख दिया। अब यह बतलाना है कि इस विषय में आर्यसमाज का क्या सिद्धान्त है।

सत्यार्थप्रकाश समु० ७ पृ० १६० में लिखा है कि—

(प्रश्न) ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं? (उत्तर) नहीं क्योंकि 'अज एक पात् ३४। ५३' 'सपर्यगाच्छुक्रमकायम् ४०। ८' ये यजुर्वेद के वचन हैं,

इत्यादि बचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता। (प्रश्न)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
भ० गी० अ० ४ श्लो० ७

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जब २ धर्म का लोप होता है तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ। (उत्तर) यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूं तो कुछ दोष नहीं क्योंकि 'परोपकाराय सतां विभूतयः' परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है। तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते। (प्रश्न) जो ऐसा है तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार होते हैं और इनको अवतार क्यों मानते हैं? (उत्तर) वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहकाने और अपने आप अविद्वान होने से भ्रम जाल में फंस के ऐसी २ अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं। (प्रश्न) जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके? (उत्तर) प्रथम जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है, जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये विना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनंत गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिये जन्म मरण युक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है? और जो कोई कहे कि भक्तजनों के उद्धार करने के लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् का बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस रावणादि का वध और गोवर्धनादि पर्वतों का उठाना बड़े कर्म हैं? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो 'न भूतो न भविष्यति' ईश्वर के सदृश्य कोई न है, न होगा। और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया वा मूठी में धर लिया,

ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है। इसलिये न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहां होसकता है जहां न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मनना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा। इस लिये परमेश्वर का जाना आना जन्म मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता'।

अवतार के विषय में जो आर्यसमाज का सिद्धांत है वह हमने ऊपर लिख दिया। अब 'ईश्वर का स्वरूप कैसा है" इस विषय का विवेचन दिखलाते हुये स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश समु० ७ पृ० १८१ में लिखते हैं कि—

'(प्रश्न) ईश्वर साकार है या निराकार? (उत्तर) निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न होता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते क्योंकि परिमित वस्तु में गुण कर्म स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नहीं होसकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आंख आदि अवयवों का बनाने हारा दूसरा होना चाहिये। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करनेवाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहां ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था। इस लिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।

विवेचन

अवतार विषय में स्वा० दयानन्द जी ने संसार को धोखे में फांसा है वेद के दो मंत्रों से अवतार का निषेध दिखलाया, एक तो 'सपर्यगात्, मंत्र देकर ईश्वर को शरीर रहित बतला दिया, इस मंत्र का अर्थ जो स्वा० दयानन्द जी ने लिखा है वह सोलह आने बनावटी और जाली है इस का भंडा फोड़ हम ऊपर कर चुके। आपने दूसरा मंत्र 'अज एकपाद्' लिख दिया, इस से डरा दिया कि

ईश्वर अजन्मा है जब अजन्मा है तो जन्म कैसे ले लेगा किन्तु यह न सोचा कि 'प्रजापतिश्चरतिगर्भे' यह मन्त्र अजन्मा ईश्वर का जन्म बतला रहा है और इस मंत्र के भाष्य में खास दयानन्द जी ने ही अजन्मा ईश्वर का जन्म लिख दिया, कहीं ऊंट और कहीं भेड़िया-यह महर्षि की बुद्धि का नमूना है। आप ही लिखें और आप ही भूल जायं, इस महर्षि की अक्ल का कौन ठिकाना? स्वामी जी ने यहां इतना ही धोखा नहीं दिया किन्तु अवतार प्रतिपादक समस्त मन्त्रों को चुरा लिया, उनमें से एक भी मन्त्र संसार के सामने न आने दिया। घबरा गये कि यदि एक भी मन्त्र संसार के सामने आगया तो मेरे बनावटी जाल का भण्डाफोड़ हो जायगा? यह कथा तो रही अवतार की। अब ईश्वर स्वरूप की कथा सुनिये, स्वा० दयानन्द जी ईश्वर को सर्वथा निराकार बतलाते हैं और उसके निराकार होने में एक भी वेद का मन्त्र नहीं देते केवल हुज्जतबाजी से निराकार लिखते हैं। स्वामी जी अपने दिमाग से निकली हुई हुज्जतों को ईश्वरीय ज्ञान वेद से प्रबल मानते हैं। हमारी समझ में तो स्वा० दयानन्द जी की दृष्टि में हुज्जतबाजियों का नाम ही वेद है तभी तो स्वामी जी ने यहां वेद को नहीं छुआ? यदि हम "रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव" इस एकली श्रुति को ही यहां लिखदें तो यह श्रुति स्वा० दयानन्द जी की हुज्जतों को ऐसे फूंकडालती है जैसे एक दियासलाई हजारों मन रूई को फूंक देती है। कहो आर्यसमाजियो दयानंद का मत वैदिक है या अवैदिक?

शास्त्रार्थ में बड़ा मजा आता है। आर्यसमाज के प्रसिद्ध पण्डित गणपति जी शर्मा, पं० भीमसेन जी आगरा, स्वामी नित्यानन्द जी प्रभृति जितने भी विद्वान् थे वे शास्त्रार्थ से नौ कोश भागते थे। वर्तमान समय में वेदतीर्थ पं० नरदेव शास्त्री, पं० नन्दकिशोर जी देव और कुछ दिन से पं० राजाराम जी शास्त्री ये सब शास्त्रार्थ से दूर रहते हैं, शास्त्रार्थ के समय वेदशास्त्र-शून्य बुद्धू, कबाड़ू, कचरू शास्त्रार्थ करने आते हैं, वे पहिले 'सपर्यगात्' मन्त्र से ईश्वर को निराकार सिद्ध करते हैं, जब इसका ठीक अर्थ कर दिया जाता है तब उनकी बुद्धि काम नहीं देती। उपनिषदों में निराकार और साकार बतलाने वाली श्रुतियां लिखी हैं, साकार विधायक श्रुतियों को तो छोड़ देते हैं निराकार विधायक कह चलते हैं कि देखो इस श्रुति में निराकार है। जब सनातनधर्मी पंडित यह कह बैठता है कि इस श्रुति की वेदानुकूलता सिद्ध करो और इसी उपनिषद् में यह दूसरी

श्रुति ईश्वर को साकार बतलाती है इसकारण ईश्वर के साकार निराकार दो रूप हैं, इसको सुन कर आर्यसमाजी पंडित उस उपनिषद् को छोड़ देता है दूसरी को उठाता है। दूसरी में जब यही अड़ंगा लगता है तब तीसरी उपनिषद् में दौड़ लगाता है, जब समस्त उपनिषद् समाप्त हो जाती हैं तब आर्यसमाजी पुराणों से निराकार सिद्ध करते हैं। जब सनातनधर्मी पंडित यह कह देता है कि पुराणों में तो चौबीस अवतार लिखे हैं तब आर्यसमाजी पंडित तुलसीकृत रामायण पर दौड़ लगाकर 'बिनु पद चले सुने बिनु काना' इस चौपाई को पकड़ लेता है, उस समय सनातनधर्मी पंडित 'जेहि इमि गावहिं वेद बुध' इस दोहे को पढ़ देता है। गर्ज यह है कि आर्यसमाजी इस शास्त्रार्थ में वेद को तो तिलांजलि दे देते हैं किन्तु दूसरे ग्रन्थों में खूब दौड़ लगाते हैं; ये इतनी फूटी तकदीर के हैं कि किसी ग्रन्थ में भी ईश्वर केवल निराकार नहीं मिलता।

यदि सनातनधर्मी पंडित यह कह दे कि 'यथेमां वाचम्' और 'प्रजापतिश्चरति' तथा 'अश्वस्य वृक्षण'इन तीन मन्त्रों में दयानन्द जी ने ईश्वर को साकार लिखा है, इतना सुनते ही आर्यसमाजी स्वामी जी पर टूट पड़ते हैं कह उठते हैं कि हम दयानन्द की बात नहीं मानते वह भी एक आदमी था भूल गया? जब हम यह कहते हैं कि स्वामी जी परिव्राजक, योगी, वेदज्ञाता, महर्षि थे और आर्यसमाज उनको आचार्य एवं प्रवर्तक मानता है तब तुम स्वामी जी को किस हिसाब से मामूली मनुष्य कह कर उनके लेख से इन्कार करते हो? जब यह गले में घंट अटकता है तब बेहोश होकर स्वामी दयानन्द जी पर बिगड़ बैठते हैं, उस समय जैसे जैसे अनुचित शब्द ये स्वामी दयानन्द जी को कह डालते हैं वैसे अनुचित शब्द स्वामी जी के लिये कोई ईसाई-मुसलमान भी नहीं कह सकता, और जो कहीं सनातनधर्मी पंडित 'उभयं वा' से लेकर 'वामनो ह विष्णुरास' यहां तक के मन्त्रों में से कोई मन्त्र पेश करदे तब ये सनातनधर्मी पंडित को गालियां देने लगते हैं और अंत में आर्यसमाजी पंडित शास्त्रार्थ हार जाते हैं एवं कोई दिन के लिये उस शहर में आर्यसमाजियों का शिर नीचा हो जाता है। जहां २ ईश्वर स्वरूप पर शास्त्रार्थ हुआ वहां वहां पर आर्यसमाज ने कच्ची खाई और वेदमन्त्रों से ऐसे डर कर भागे जैसे जलती लकड़ी से कुत्ता भागा करता है। अब पाठक समझ लें कि आर्यसमाज वैदिक है या अवैदिक?

मूर्तिपूजा

वेद

वेद में ब्रह्म,सूर्य,शक्ति,गणेश,शंकर,विष्णु तथा देवताओं का पूजन स्पष्ट-रूप से लिखा है। सब से प्रथम वेद पूजन की आज्ञा देता हुआ लिखता है कि---

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उतपुरं न धृष्णवर्चत ॥

ऋ० अष्ट० ६ अ० ४ सू० ५८ मं० ८

हे अध्वर्यादि ! तुम परमात्मा इन्द्र का पूजन करो,स्तुति विशेष से पूजन करो,प्रियमेधस सम्बन्धी व प्रिय मेधा के गोत्र वाले तुम पूजन करो और पुत्र भी विशेष कर इन्द्र (ईश्वर) को पूजें,जैसे धर्षण शील पुरुष को पूजते हैं वैसे तुम पूजो ।

पूजन की आज्ञा पाठक देख चुके,अब पूजन विधायक मंत्रों को हम उठाते हैं। वेद ने ब्रह्म और संसार का अभेद माना है इस कारण वेद ने संसारी पदार्थों का पूजना और उस पूजन से ब्रह्म की प्रसन्नता होना मान वेद के अनेक स्थलों में संसारी पदार्थों का पूजन लिखा है उन में से एक प्रमाण हम यहां उद्धृत करते हैं।

नमस्तेऽस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्तेऽस्त्वश्मने येनादूडाशे अस्यसि ॥

अथर्व० कां० १ अ० ३ मं० १

बिजली को प्रणाम है,गर्जना को प्रणाम है। पाषाण को प्रणाम है जिस से चोट लगती है।

सूर्य

सूर्य के पूजन के मंत्र ये हैं।

यो देवेभ्यः आतपति यो देवानां पुरोहितः

पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥

यजु० अ० ३१ मं० २०

जो आदित्य देवताओं के लिये प्रकाशमान है,जो देवताओं के स[illegible] कार्यों में आगे रहता है,जो समस्त देवताओं से पहिले उत्पन्न हुआ है उस दीप्य मान ब्रह्म के अवयव भूत सूर्य को मैं प्रणाम करता हूँ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥

यजु० ४०। १७

ज्योतिर्मय पात्र में सत्य ब्रह्म का शरीर छिपा हुआ है, जो आदित्य में पुरुष है वह मैं हूँ।

इस मंत्र में आदित्य को ईश्वर रूप बतलाया है।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि।

धियो योनः प्रचोदयात् ॥

यजु० अ० ३ मं० ३५

उस देव अन्तर्यामी रूप से प्रेरक हिरण्यगर्भरूप या आदित्य के अन्तर्गत जो पुरुष है उस का जो वरण करने के योग्य तेज है उस का हम ध्यान करते हैं वह हमारी बुद्धियों को शुभ कार्य में लगावे।

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।

विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२

अस्तंयते नमोस्तमेष्यते नमोस्तमिताय नमः

विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३

अथर्व० कां० १७। १। १।

उदय होते हुये,उदय होने वाले और उदित सूर्य को प्रणाम है,तीनों अवस्थाओं में विराट्,स्वराट् सम्राट इन तीन नामवाले सूर्य को प्रणाम है।२२। अस्त होते हुये ,अस्त होने वाले और अस्त सूर्य को प्रणाम है,तीनों अवस्थाओं में विराट्,स्वराट्,सम्राट इन तीन नाम वाले सूर्य को प्रणाम है। २३।

'यो देवेभ्यः'इस मंत्र में सूर्य की प्रशंसा कर उस को प्रणाम करना बतलाया,

'हिरण्मयेन,इस मंत्र में सूर्य मण्डल में व्याप्य अधिष्ठातृ देव को ईश्वर कहा, गायत्री मंत्र में सूर्य से यह प्रार्थना की गई कि वह हमारी बुद्धियों को शुभ काम में लगावे और ,उद्यतेनमः ,इत्यादि दो मंत्रों से उदय होते और अस्त होते सूर्य को दोनों समय प्रणाम करना लिखा। अब पाठक समझलें कि वेदों में सूर्य को ईश्वर रूप मान उस का पूजन करना लिखा या नहीं ?

शक्ति

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यह-
मादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभ—
र्म्यहमिन्द्राग्नी अहमाश्वनोभा ॥१
अहं सोममाहनसं बिभ-
र्म्यहंत्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते
सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति
श्रुधि श्रुतं श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवाऊं ।
अहं जनाय समदं कृणो-
म्यहं द्यावा पृथिवी आविवेश ॥६॥

ऋ० अष्ट० ८ मं० १० अ० १० सू० १२५

मैं रुद्रदेव और आठ वसुओं के साथ विचरती हूँ, मैं ही बारह आदित्यों और विश्वेदेवताओं के साथ भी विचरती हूँ। मैं मित्र वरुण, अग्निदेवता और अश्विनी कुमारों को धारण करती हूँ ॥ १ ॥ मैं सब तरफ से मारनेवाले सोम-देवता का पोषण करती हूँ, मैं ही त्वष्टा,पूषा और भग देवता को धारण करती हूँ। धन और हविष वाले सुन्दर प्राप्त करते हुये यजमान तथा सोम निकालते हुये का ॥२॥ मैं ईश्वरीय ज्ञान मिलने अर्थात् मुख्य यजनीय देवताओं में अनेक तरह से स्थित होने वाली और सब ओर से प्रवेश कराती हूँ, तिस मुझको देव लोग अनेक जगह विधान करते हैं ॥ ३ ॥ मैं ही आप यह कहती हूँ कि सेवित है देवताओं और मनुष्यों से, जिसको मैं चाहती हूँ उस उसको उत्तम बनाती हूँ, उसको ब्रह्मा, उसको ऋषि, उसको मेधावी बनाती हूँ ॥४॥ मेरी सहायता से वह अन्न को खाता है, जो देखता, जो श्वास लेता और सुनता है कथन किये को नहीं मानते हुये मुझको वे नष्ट हो जाते या मेरी दी हुई शक्तियों से रहित हो जाते हैं, सुन सखे श्रद्धा और यत्न से प्राप्त होने वाले वचन को तुझ से कहती हूँ ॥ ५ ॥ मैं रुद्र के धनुष को विस्तृत करती हूँ, ब्राह्मण के बैरी या हिंसक जन के लिये मदयुक्त करती हूँ, मैं आकाश पाताल में व्याप्त हो रही हूं ॥ ६ ॥

इन मन्त्रों में ईश्वरशक्ति दुर्गा का वर्णन है उसके महत्व को वेद ने जैसा बतलाया है उसको ऊपर देख लें। ईश्वर और शक्ति में वेद अभेद मानता है और यह बलवती पूज्या है अतएव इन मन्त्रों के अभिप्राय तथा अन्य बहुत से मन्त्रों के भाव को लेकर वैदिक लोग शक्ति की पूजा करते हैं।

जैसे वेद में शक्ति पूज्या है इसी प्रकार गणपति भी पूज्य हैं,इस विषय में वेद लिखता है कि—

गणानां त्वा गणपति ᳭ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ᳭

हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिᳯं हवामहे वसो मम। आहम- जानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥

यजु० अ० २३ मं० १९

गणों के अधिपति गणपति जो आप हैं हम आपका आह्वान करते हैं। प्रेमियों में प्रेमियों के पति आप हैं, हम आपका आह्वान करते हैं। निधियों में निधिपति आप हैं हम आपका आह्वान करते हैं। सो आप हमारे पति हो, आप गर्भधारण करवाने वाले हो, आप पराक्रम को गुरुरूप से देते हो।

इस मन्त्र में गणपति का आह्वान है,आह्वान पूजा के समय ही होता है अत- एव आह्वान से गणपति का पूजन सिद्ध है। कई एक मनुष्य यह कहेंगे कि यह मन्त्र तो भाष्यकारों ने अश्वमेध के अश्वपरक लगाया है? इसका उत्तर यह है कि शतपथ और कात्यायन सूत्र ने अश्वमेध प्रकरण में अश्व में इसका विनियोग लगाया है। मरे हुये अश्व में ईश्वर का आह्वान होता है अतएव यहां पर भी ईश्वर का ही आह्वान है अश्व का आह्वान नहीं? इस मन्त्र का देवता 'गणपति' है, जो गणपति है वही ईश्वर है इस इसकारण अश्वमेध यज्ञ में किसी अन्य का आह्वान पूजन नहीं है किन्तु गणपति का है।

जिस प्रकार वेदों में गणपति का पूजन है उसी प्रकार विष्णु की भी पूजा वेद ने लिखी है।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥

यजु० अ० ३१ मं० ६

सृष्टि के आरम्भ में सब से प्रथम उत्पन्न हुये यज्ञ पुरुष (विष्णु) सृष्टि रचयिता प्रजापति और मंत्रदृष्टा ऋषियों ने मानसिक यज्ञ में पूजन किया।

इसके आगे जगन्नाथ जी के विषय में वेद लिखता है कि —

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥३०॥

ऋ० ८। १३। १०। १२। १५५

विप्रकृष्ट देश में वर्तमान पुरुष निर्माण रहित जो दारुमय पुरुषोत्तम शरीर

समुद्र के तट में वर्तमान है उस शरीर का अवलम्बन वा उपासना करो जो किसी से भी हनन नहीं होता उस दारु मय देव की उपासना करने से अतिशय उत्कृष्ट वैष्णव लोक को प्राप्त हो।

उन मंत्रों में विष्णु की पूजा है। जिस प्रकार वेद ने विष्णुको पूज्य कहा है उसी प्रकार शंकर का भी पूजन वेद में पाया जाता है देखिये-

शंकर

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

यजु० अ०३ मं० ६०

निरुक—त्र्यम्ब को रुद्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं। सुगन्धं सुष्ठुगन्धिं पुष्टि वर्धनं पुष्टिकारकमिवोर्वारुकमिव फलं बन्धनादारोधनान्मृत्योः सकाशा-न्मुञ्चस्व मां कस्मादित्येषापरा भवति।

हम तीन नेत्र वाले रुद्रपरमात्मा को पूजते हैं जो पुण्य गन्ध से युक्त और धन धान्यादि की पुष्टि का बढ़ानेवाला है जिस से कि उस की कृपा से खरबूजे के तुल्य हम बन्धन से छूटें,अमृत से न छूटें।

पहिले हम रुद्र के पूजन में यही मंत्र पेश किया करते थे,सहारनपुर में प० लेखराम जी मुसाफिर ने आर्यसमाज की तरफ से शास्त्रार्थ करने वाले :पं०-मुरारीलाल से यह कहलाया कि यह मंत्र तो वेद का नहीं है,महादेव पूजने वालों ने वेद में मिला दिया? इस के उत्तर में हमने कहा कि अब तुम मूर्तिपूजा में घिर गये,तुम्हारे गले में फांसी लग गई,पिण्ड छुड़ाने के लिये मंत्र को बना-वटी कहते हो? इस मंत्र पर स्वा० दयानन्द जी ने भाष्य किया है उन को यह मंत्र बनावटी न सूझा और तुम को सूझा? तुम दयानन्द की इज्जत को भी धूल में मिलाओगे? मंत्र के बनावटी होने का सबूत दीजिये और मूर्तिपूजा में नीचे लिखे मंत्र सुनिये?

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं
भूतपती पशुपती नमो वाम्
प्रतिहितामायताम् मा विस्रा...
स्मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा...
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि क...

...स्कृ० ॥१॥ ...अथर्व...

गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥२
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३
पुरस्तात्ते नमः कृण्मः उत्तरादधरादुत।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥४
मुखायते पशुपते यानि चक्षूंसि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥५
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥६
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥७
स नो भवः परि वृणक्तु विश्वतः
आप इवाग्निः परिवृणक्तु नो भवः।
मा नोभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥८
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय
दशकृत्वः पशुपते नमस्ते।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता
गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौ—
स्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम्।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत्प्राणत्पृथिवीमनु ॥१०
उरुः कोशो वसुधानस्तवायं
यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो
अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥११

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं
सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेति—
स्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ।१२
योभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनु प्रयुङ्क्ते तं विद्धस्य पदनीरिव ॥१३
भवारुद्रौ सयुजा संविदाना—
वुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१४
नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥१५
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१६

अथर्व० कां० ११ अ० १ सू० २

हे भव ! हे शर्व ! मुझको सुखी करो, हे भूतों के पतियो ! मेरे पास सब ओर से आओ अर्थात् रक्षार्थ हे पशुओं के पतियो ! आप दोनों को नमस्कार है तुम दोनों धनुषों में धरे विस्तृत बाण को मेरे ऊपर मत छोड़ो और आप हमारे द्विपद मनुष्यों एवं चतुष्पद पशुओं को मत मारो ॥१॥ हे पशुपते ! हमारे शरीर को कुत्तों और गीदड़ों के लिये मत करो अर्थात् आपकी कृपा से बावले कुत्ते और गीदड़ हमको न काटें तथा मरणान्तर हमारे शरीरों को गीदड़ और कुत्ते न खावें किन्तु हमारी सत्क्रिया हो जावे एवं आमिष की इच्छा करने वाले जो कृष्ण काक और मक्खी हैं वे अपने भोजन के लिये हमें न पावें ॥२॥ हे भव तुम्हारे शब्द तथा प्राण को नमस्कार है और जो तुम्हारी मोहन करने वाली मूर्तियें हैं उन सबको हम नमस्कार करते हैं । हे अमर रुद्र ! सहस्राक्ष जो आप हैं आपको हम नमस्कार करते हैं ॥३॥ हे रुद्र ? तुमको पूर्व से और उत्तर दक्षिण से भी हम नमस्कार करते हैं या पूर्व-दक्षिण और उत्तर सब ओर तुम हो स

लिये सब ओर रहने वाले आपको प्रणाम है। अधर शब्द नीचे का भी वाचक है नीचे से और सब ओर अवकाश देने वाला जो आकाश है उसके भी ऊपर जो स्थित आप हैं सूर्य रूप या व्यापक रूप से तुमको नमस्कार है ॥ ४ ॥ हे पशुओं के पति शंकर! तुम्हारे मुख को नमस्कार है, हे भव! तुम्हारे चक्षु जो हैं उनको भी नमस्कार है। तुम्हारी त्वचा और रूप तथा सम्यग्दर्शी एवं प्रत्यग्-दर्शी और सब ओर से व्यापक जो आप हैं ऐसे आपको नमस्कार है॥५॥ हे पशु-पते! आपके अंगों को नमस्कार है, आपके उदर, जिह्वा, मुख, दांत और नासिका को भी नमस्कार है ॥६॥ जो अस्त्र चलाने वाले नील शिखण्ड, सहस्राक्ष अश्व और आघाघात करने वाले रुद्र हैं उनके साथ हम विरोध न करें ॥७॥ वह भव हमको सब ओर से दुश्चरितों से रोकें, जैसे जल अग्नि को सब ओर से रोकते हैं ऐसे भव हमको सब ओर से रोकें किन्तु हमारा हनन न करें इस लिये हमारा उस भव को नमस्कार होवे ॥८॥ भव नामक शिव को चार और आठ बार नमस्कार हो, हे पशुपते! आपको दश बार नमस्कार होवे, तुम्हारे ये पांच पशु विभक्त हैं गाय, घोड़े, पुरुष और बकरी तथा भेड़ ॥९॥ हे उग्र! चारों दिशा आपकी हैं स्वर्ग आपका, पृथ्वी आपकी, बड़ा आकाश भी आपका है और क्या कहें इस पृथ्वी पर जो कुछ प्राण तथा शरीर वाले हैं वे सब आपके ही हैं ॥१०॥ हे पशुओं के पति शंकर! जिस ब्रह्माण्ड कटाह के अन्दर ये सब भुवन हैं और जिसमें पाप पुण्य का खजाना स्थित है वह समस्त ब्रह्माण्ड आपका है सो आप जो सबसे उत्कृष्ट हैं, आपको नमस्कार है, आप हमको सुखी करो और शृगाल तथा मांस खाने वाले कुत्ते, रोने और खुले केश वाली पिशाचिनी हमसे दूर-जावें यह हमारी प्रार्थना है ॥११॥ हे शिखण्ड रखने वाले रुद्र! तुम हजारों को जखमी करने और सैकड़ों को मारने वाले सुवर्णमय हरित धनुष को धारण करते हो तथा हमारा तो उस दिशा को भी नमस्कार है जिस दिशा में रुद्र का बाण और शक्ति घूमती होवे ॥१२॥ हे रुद्र! जो पुरुष लड़ने की इच्छा से आपके पास आता और प्रहार करके भगाना चाहता है उसके प्रहार करने के बाद आप प्रहार करते हो, फिर उस शस्त्राहत को आपके पाद प्राप्त करते हैं अर्थात् वह शस्त्राहत होकर आपके चरणों में गिरता है ॥१३॥ भव और रुद्र दोनों ही उग्र और मिले हुये तथा सम्यग् ज्ञाता हैं, जिस दिशा में आप पराक्रम करते हुये विद्यमान हैं आप दोनों को नमस्कार है ॥१४॥ हे रुद्र! आते, जाते, खड़े और बैठे हुये तुमको नमस्कार होवे ॥१५॥ हे रुद्र! तुमको सायंकाल नमस्कार तथा

रात और दिन में भी नमस्कार है, मैं भवदेव और शर्व देव दोनों को नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

हमने जो ये मंत्र पेश किये तब माना कि हां वेद में मूर्तिपूजा है। जैसे शंकर के पूजन का वेद में विस्तार पूर्वक वर्णन है उसी प्रकार सूर्य,शक्ति,गणेश, विष्णु के पूजन का भी विस्तृत वर्णन वेद में पाया जाता है जो विस्तार के भय से नहीं लिखा।

महावीर।

यज्ञ में महावीर नामक प्रजापति की प्रतिमायें बनती हैं उनको क्रम से पढ़ने का कष्ट उठावें।

देवी द्यावापृथिवी मखस्य त्वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥

यजु० अ० ३७ मं० ३

हे मृद् जल रूप देवियो! मैं देवयजन स्थान में तुम दोनों को लेकर महावीर की मूर्ति बनाऊंगा अतएव मैं यज्ञ के लिये तुम दोनों को ग्रहण करता हूँ, महावीर के बनाने के हेतु यह तुम्हारा ग्रहण है।

यह मंत्र का अर्थ है, इस मंत्र पर कात्यायन श्रौत सूत्र लिखता है कि "मृदमादत्ते पिण्डवद्देवी द्यावा पृथिवीति का० २६।१।४" 'देवीद्यावा पृथिवी' इस मंत्र से जल मिश्रित मृत्पिण्ड को उठावे। इसी के ऊपर शतपथ लिखता है कि—

अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति। अभ्र्या च दक्षिणतो हस्तेन च हस्तेनैवोत्तरतो देवीद्यावा पृथिवीऽइति यज्ञस्य शीर्षच्छिन्नस्य रसो व्यक्षरत्स इमे द्यावापृथिवीऽआगच्छद्यन्मृदियंतद्यदापोऽसौ तन्मृदश्चापां च महावीराः कृता भवन्ति तेनैवैनमेतद्रसेन समर्धयति कृत्स्नं करोति तस्मादाह देवीद्यावापृथिवीऽ इति मखस्य वामद्य शिरो राध्यासमिति यज्ञो वै मखो यज्ञस्य वामद्य शिरो राध्यासमित्येवैतदाह देवयजने पृथिव्या इतिदेवयजनेहि पृथिव्यै सम्भ-

रति मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णऽइति यज्ञोवै मखो यज्ञाय त्वा यज्ञस्य त्वा शीर्ष्णऽइत्येवैतदाह ॥

शत० १४। १। २। ६

अब मिट्टी के पिण्ड को ग्रहण करते हैं दक्षिण हस्त से 'देवीद्यावापृथिवी' इस मन्त्र से मृत्पिण्ड लेकर कृष्ण मृगचर्म पर उत्तर दिशा में रख दे। यज्ञ विष्णु का वैष्णवी तेज माथा में गिरा उस समय कुछ दीप्तिरूपी रस पृथ्वी स्वर्ग में व्याप्त हुआ जिसको जल और मिट्टी कहते हैं और इन्हीं दोनों वस्तुओं से महावीर की मूर्ति बनाते हैं इसकारण मूर्ति बनाने के लिये मृत्पिण्ड को ग्रहण करता है मानो उस पूर्वोक्त ज्योतिरस से ही इसको समृद्धियुक्त और पूर्ण करता है। इसकारण देवीद्यावा पृथिवी इस मन्त्र में कहा कि यज्ञ में आज मैं तुम्हारे शिर रूप महावीर प्रजापति का निर्माण करूंगा। यज्ञ मख को कहते हैं उस मख में शिर महावीर का निर्माण करूंगा, इसी को लेकर "देवयजने पृथिव्याः" यह कहा गया है।

"देवीद्यावा" इस मन्त्र के आगे 'देव्यो वम्र्यो' मन्त्र यह है।

देव्योवम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥

यजु० अ० ३७ मन्त्र ४

हे प्राणियों से उत्पन्न उपजिह्वकाओ ! तुमको लेकर देवयजन स्थान में अब महावीर की मूर्ति को सम्पादन करूं, मैं यज्ञ के लिये तुझे ग्रहण करता हूँ, महावीर के हेतु तुझे ग्रहण करता हूँ।

इसके ऊपर कात्यायन श्रौतसूत्र लिखता है कि' उत्तरतो देव्योवम्र्य इति वल्मीकवपाम् का०२६। १। ५-६' बांबी से मिट्टी लेकर मौन धारण कर मृत्पिण्ड से उत्तर की तरफ रख दें।

इसके ऊपर शतपथ लिखता है कि—

अथ वल्मीकवपाम्। देव्यो वम्र्य इत्येतवाऽएतदकुर्वंत यथायथै तद्यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यत ताभिरेवैनमेतत्समर्धयत कृत्स्नं करोतीति।

शत० १४। १। २। १०

यज्ञ पुरुष का तेज पतित होने से बांबी की मिट्टी हुई इस कारण उसको

लेता है और उससे महावीर की मूर्ति को परिपूर्ण करता है।

आगे देखिये—

इयत्यग्र आसीन्मखस्य तेद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥

यजु० अ० ३७ मं० ५

हे पृथिवि! जिस समय वराह ने तेरा उद्धरण किया था तब तू प्रादेश-मात्र थी उस तुझको लेकर आज मैं देवयजन में तेरा यज्ञ शिर महावीर बनाता हूं।

इसके ऊपर कात्यायन श्रौतसूत्र लिखता है कि 'इयत्यग्र इति वराहविहितम् का० २६।१।७' 'इयत्यग्र' इस मन्त्र से जंगली वराह की खोदी हुई मिट्टी को लेकर मौन होकर वल्मीक की मिट्टी के उत्तर की तरफ मृगचर्म पर रख दे।

इसीके ऊपर शतपथ लिखता है कि—

अथ वराहविहितम्। इयतीह वाऽइयमग्रे पृथिव्या स प्रादेश-मात्री तामेमूष इति वराह उज्जघान सोऽस्याःपतिः प्रजापतिस्ते-नैवैनमेतन्मिथुनेनाप्रियेण धाम्ना समर्धयति कृत्स्नं करोतीति ॥

शत० १४।१।२।११

सृष्टि के आरंभकाल में यह पृथ्वी प्रादेशमात्र थी उसको वराह ने ऊंचा उठाया, ये वराह इस पृथ्वी के पति और प्रजा के स्वामी हैं इस कारण उस प्रियधाम मिथुन के द्वारा महावीर को समृद्ध और परिपूर्ण करता है अर्थात् मूर्ति बनाने को वराहविहित मृत्तिका लेता है।

इसके आगे के 'इन्द्रस्य' इस मन्त्र से महावीर बनाने के लिये रोहिष तृण (घास) का ग्रहण लिखा है। मन्त्र में घास को विष्णु तेज कह कर महावीर बनाने के लिये ग्रहण किया है। कात्यायन श्रौतसूत्र कहता है कि इस घास को लेकर मौन धारण कर वराह की मिट्टी के उत्तर की तरफ मृगचर्म पर रखदे। शतपथ 'अथ यत्पूयन् १४।१।२।१२' कहता है कि यह घास विष्णुतेज से उत्पन्न हुआ है इस कारण यज्ञ के मुख्य महावीर निर्माण में इसको लिया जाता है।

ऋग्वेद के 'चत्वारि शृंगा' इस मन्त्र में यज्ञ को "त्रिधाबद्धः" लिखा है,

इसका भाषा यह है कि यज्ञ मन्त्र, ब्राह्मण और कल्पवद्ध है। यज्ञप्रकरण में जो अर्थ मन्त्र का होता है उसी अर्थ को ब्राह्मण कहता है और क्रिया बतलाता हुआ उसी अर्थ को कल्पसूत्र कहता है यज्ञ प्रकरण होने के कारण इस प्रकरण में मंत्र ब्राह्मण, कल्प तीनों ही मिल कर चलते हैं।

आगे "प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः" मंत्र है इसका अर्थ है कि वेद के रक्षक परमात्मा महावीर रूप में हमारे यज्ञ में आवें। इसके ऊपर कात्यायन सूत्र लिखता है कि "कृष्णाजिनं परिगृह्योत्तरतः परिवृतं गच्छन्ति प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरिति का० २६। १। १२" 'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः' इस मंत्र को बोलकर उस समस्त सामग्री वाले कृष्ण मृग चर्म को यज्ञस्थल के अन्दर ले जावे और तीन महावीर बनावे।

फिर 'मखस्य शिरोऽसि' इस मंत्र से अपने बायें हाथ में रक्खे हुये महावीर को दहिने हाथ से छुवे और इसी मंत्र को पढ़कर इससे महावीर की स्तुति करे। फिर 'अश्वस्य त्वा वृष्णः'इस मंत्र से घोड़े की लीद से महावीर को पकावे बाद में 'ऋजवे त्वा' इस मंत्र से पके हुये महावीरों को पकने के स्थान से निकाले। फिर'यमाय त्वा' इस मंत्र से महावीर का तीन बार प्रोक्षण करे। फिर 'अनाधृष्टा' इस मंत्र से महावीर के ऊपर अंगूठा और अंगुली रख कर महावीर की स्तुति करे। इस प्रकार इस प्रकरण में महावीर की परिक्रमा आदि पूजन की सब क्रियायें लिखी हैं,इसको देखकर संदेह हुआ कि महावीर ईश्वर नहीं है, हमारी बनाई एक मूर्ति है। इस संदेह को दूर करने के लिये शतपथ बोला कि-

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमितᳬं रूपं तदस्य तेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितᳬं रूपं तदस्य तेन संस्करोतीति ब्राह्मणम् ॥

शत० १४। १। २। १८

परमेश्वर दो प्रकार का है परिमित अपरिमित, निरुक्त और अनिरुक्त। इस कारण जो यज्ञ उपासनादि कर्म यजुर्वेद के मंत्रों से करता है उसके द्वारा परमेश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो निरुक्त और परिमित है और जो तूष्णींभाव सम्पन्न है अर्थात् जहां मौन हो जाना पड़ता है उससे परमेश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो अनिरुक्त और अपरिमित नाम है।

जैसे माता पिता का पूजन पंचतत्वात्मक शरीर के द्वारा होता है इसी प्रकार ईश्वर का पूजन भी उसके शरीर पंचतत्वों के द्वारा होता है अतएव यह शरीर परिच्छिन्न पूज्य है और सृष्टि के बाहर जो ब्रह्म अरूप है वह अविज्ञेय, अनिर्वचनीय है ।

शतपथ ने इस प्रकार समझा कर महावीर के पूजन में उठी हुई शंका को दूर कर दिया ।

बनावट ।

मूर्तिपूजा वेद से सिद्ध न हो जावे इसके लिये धर्म कर्म को तिलांजलि देकर मनुष्य बड़ी २ चालबाजियां करते हैं इनका कथन है कि वेद मूर्तिपूजन का स्वतः ही निषेध करता है, वेद में लिखा है कि—

न तस्य प्रतिमा अस्ति ।

यजु० ३२ । ३

जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है ।

हमने देखा है कि ठग लोग पीतल के अंगूठी छल्ला आदि आभूषण लेकर उनको बहुत साफ करते हैं फिर कुंकुम आदि घिस कर उन पर सुर्खी की चमक ले आते हैं ऐसा करके उस जेवर के ऊपर कागज लपेटते हैं फिर उत्तम रेशमी कपड़े में बांध कर शहर से मील डेढ़मील के फासले पर जाकर सड़क पर डाल देते हैं और उसके आस पास घूमते रहते हैं, जब किसी अक्ल के बुद्धू को जांच लेते हैं तब उसके साथ २ बातें करते चल देते हैं, चलते २ जब जेवर के पास आते हैं तब ये उस दूसरे मनुष्य से कहते हैं कि यह क्या पड़ा है ? इतना कह कर उठा लेते हैं, उसको समझाते हैं कि किसी से कहना नहीं वरना यहां हथकड़ी पड़ जायंगी और हम तुम आधा २ बांट लेंगे। इतना समझा कर ये बांटने के लिये उस सड़क से कुछ दूर पर ले जाते हैं वहां ले जाकर उसको अंदाजते हैं कि डेढ़ तोला का है तीस रुपये का हुआ, लाचारी यह है कि हमारे पास रुपया नहीं,नहीं तो हम आपको पन्द्रह रुपये दे देते। अब आप हमें रुपये दे दें और जेवर ले लें। अनेक बातें बना कर वह छल्ला उसको दे देते हैं और रुपये ठग कर रफूचक्कर होते हैं। वह साधारण मनुष्य जब अपने गांव में जाता है और जेवर को अन्य मनुष्यों को दिखलाता है जब वे पीतल का बतला

... सुनार की जाँच होने पर सिद्ध हुई पीतल को देख कर वह रोने लगता ... ऐसे ही अनेक मार्गों से चालाक लोग साधारण मनुष्यों को अपने धोखे में ... लेते हैं।

ये धोखेबाज माल लेने के लिये धोखा देते हैं किन्तु कई एक धूर्त चालाक ... धर्म को संसार से उखाड़ फैंकने के लिये साधारण मनुष्यों को धोखे में ... धर्म से गिरा रहे हैं। इन लोगों ने संसार को एक ही धोखा नहीं दिया ... धोखों के जंकशन रूप जाल में फांसा है पाठक ध्यान से पढ़ें।

प्रकरण विच्छेद

यहां पर वेद प्रकरण बांध कर ईश्वर का ज्ञान करा रहा है किन्तु इन लोगों के इस अनोखे अर्थ से प्रकरण का मतलब ही गायब हो जाता है आप प्रथम प्रकरण को पढ़ें।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥१॥
सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यंच न मध्ये परिजग्रभत् ॥२॥

यजु० अ० ३२।

जिस ईश्वर का वर्णन पूर्वाध्याय में किया है, जिस ईश्वर की 'लक्ष्मी' और 'श्री' ये दो स्त्रियां बतलाई हैं वही ईश्वर अग्नि, वही आदित्य, वही वायु, वही चन्द्रमा, वही पराक्रम, वही ब्रह्म, वही जल और वही प्रजापति है।१। उसी पुरुष से समस्त मुहूर्तादि काल विभाग और बिजली उत्पन्न हुई हैं अतः उस ईश्वर को ऊपर नीचे बराबरी में पकड़ने वाला कोई नहीं है।२।

पुरुषसूक्त के अंतिम मन्त्र 'श्रीश्चते' इसमें 'श्री' और 'लक्ष्मी' ईश्वर की स्त्रियां बतलाई है। अब 'तदेवाग्निः' इस मन्त्र से ईश्वर के व्यापकत्व और सर्वस्वरूपत्व से यह दिखलाया है कि अग्नि आदि जितनी साकार मूर्तियां हैं वे सब ब्रह्म की मूर्तियां हैं। 'सर्वे निमेषा' इस मन्त्र में यह दिखलाया है कि काल विभाग और बिजलियां जो पैदा हुई हैं वे सब ब्रह्म से पैदा हुई हैं अर्थात् ब्रह्म सब जगत् का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' है। अब 'न तस्य' इस मन्त्र में यह कहना है कि ब्रह्म के तुल्य महत्त्व रखने वाली कोई वस्तु संसार में नहीं, वाल-

वाज धूर्त मनुष्यों के अर्थ से यह सब प्रकरण बिगड़ गया, ईश्वर की साकारता
उड़ी और ईश्वर के जो 'श्री-लक्ष्मी' ये दो स्त्रियां थीं वे गायब हो गईं, वेद ने
अग्नि आदित्यादि मूर्तियों को ब्रह्म बतलाया था अर्थात् इस मन्त्र में ब्रह्म का
स्वरूप मूर्तिमान लिखा था उसका कचूमर निकल गया। इसके पश्चात् 'सर्वे
निमेषाः' इस मन्त्र में काल विभाग और बिजलियों का ईश्वर को 'अभिन्ननिमित्त
पादानकारण' बतलाया था उसका मटियामेट होगया। इस प्रकार पूर्व के तीन
मन्त्रों के अर्थ का जब स्वाहा हो गया तब यह अर्थ निकला कि 'ईश्वर के मूर्ति
नहीं है'। यहां पर हम यह कह सकते हैं कि यह कार्य इन लोगों की गलती से नहीं
हुआ किंतु जान बूझ कर किया गया। हमको तो इन धूर्तों का यह अभिप्राय
जान पड़ा कि चाहे समस्त वेद का सत्यानाश हो जावे किंतु किसी प्रकार मूर्ति
पूजा का खण्डन हो, इस प्रकरण विच्छेद को कभी किसी मूर्तिपूजन का निषेध
करने वाले ने जाना ? जाने तो वह जो वेद पढ़े, इनको तो बिना पढ़े ही यह कहना
है कि वेद में मूर्तिपूजा नहीं है !

मिथ्यार्थ

इन धूर्तों का किया हुआ अर्थ सर्वथा मिथ्या है, इस मंत्र में 'प्रतिमा' शब्द का
अर्थ मूर्ति होता ही नहीं, यहां तो प्रतिमा का अर्थ तुल्य होता है। संसार के
आरम्भ से आज तक जितने भी वेदज्ञाता हुये उन सब ने 'प्रतिमा' का अर्थ
'तुल्य' किया। इस पर उव्वट लिखते हैं कि 'न तस्य पुरुषस्य प्रति
प्रतिमानभूतं किञ्चिद्विद्यते' उस ईश्वर की प्रतिमान भूत तुल्यता र
वाला कोई नहीं है। महीधर 'प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किञ्चिद्वस्तु नास्ति
उस ईश्वर की प्रतिमा प्रतिमान तुल्यता वाली कोई वस्तु नहीं है। शंकर
तस्य प्रतिमा अस्तीति ब्रह्मणोऽनुपमानत्वं दर्शयति' 'न तस्य' इस मंत्र में ब्रह्म
तुल्यता का अभाव दिखलाया है। गिरिधर ने भाषा में 'प्रतिमा-समान' लि
है। इसी प्रकार मिश्र भाष्य में 'प्रतिमा-तुल्यता न' लिखी है, ये प्रतिमा शब्द
तुल्य अर्थ की पुष्टियां हैं।

धोखेबाजों ने जो यहां पर 'प्रतिमा' शब्द का अर्थ 'मूर्ति' किया है वह म
असंभव है जैसे कि कोट का अर्थ ककड़ी और हैट का संतरा। इस असम
में एक भी पुष्टि नहीं मिलती, शास्त्रार्थ में इसके विवाद पर इन लोगों के
में प्राण आजाते हैं और अन्त में इनका पराजय हो जाता है। यजुर्वेद के

सूक्त १५ । ६५' में जब 'प्रतिमासि' आया और इन को मालूम हुआ कि यहां पर मूर्ति अर्थ हो जाने से मूर्तिपूजा सिद्ध हो जावेगी तब घबराये कि यहां पर तो स्वामी दयानन्द जी ने भी 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका' के मासि प्रमासि प्रतिमासि के भाष्य में लिख दिया कि "वेदेषु प्रतिमाशब्देन मूर्तयो न गृह्यन्ते" वेदों में प्रतिमा शब्द से मूर्ति का ग्रहण नहीं होता, फिर 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मन्त्र में प्रतिमा शब्द से मूर्ति का ग्रहण कैसे हो जावेगा ?

'न तस्य' जिस मन्त्र पर यह विवाद चल रहा है सत्यार्थप्रकाश में उसी मन्त्र के अर्थ में यह लिखा है कि 'जो सब जगत् में व्यापक है'। यह अर्थ वेद मन्त्र के किसी भी पद का हो नहीं सकता, लोगों ने वेद के बहाने से अपने मन का गढ़ा हुआ 'जो सब जगत् में व्यापक है' इतना लेख जबर्दस्ती से लिख दिया। मन्त्र के अर्थ में अपनी तरफ से इबारत मिला कर ठूंस देना वेद मन्त्र का गला घोटना है, ऐसे कार्य को वैदिक लोग सर्वदा घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यह वेद मन्त्र का अर्थ है या वेद के बहानें से मन मानी इबारत झोंकी गई है, इस अनधिकारचेष्टा पर विचार की दृष्टि से इनको एक दृष्टि डालनी चाहिये।

फिर इस में लिखा है कि 'उस निराकार परमात्मा की'। 'न तस्य' इस मन्त्र में "निराकार" इस इतने अर्थ को कहने वाला कोई पद नहीं-यह भी मन-गढ़न्त है। यह वेदों का अर्थ किया जाता है या वेदमंत्र को आगे रखकर मन माना जाल बनाया जाता है; इस अन्याय का भी कुछ ठिकाना है ? धार्मिकनिर्णय में इतना स्वार्थ ?

फिर इस मन्त्र के अर्थ में 'प्रतिमा' शब्द के तीन अर्थ किये गये परिमाण, सादृश्य और मूर्ति। परिमाण ईश्वर का नहीं इसमें ईश्वर की उत्कर्षता है और सादृश्य में भी उत्कर्षता है, ये दोनों अर्थ ठीक हैं क्योंकि इनमें प्रमाण मिलते हैं किन्तु मूर्ति अर्थ में कोई प्रमाण नहीं, यह मूर्ति अर्थ सर्वथा ही चण्डूखाने की गप्प है, इस अर्थ को ये लोग कैसे सच मानते हैं। इसके लिये हम सन् १६१० से प्रमाण मांग रहे हैं किन्तु सर्वथा मिथ्या होने के कारण इनकी जबान और कलम दोनों रुक गईं फिर ऐसे अनर्गल अर्थ को कोई विचारशील कैसे सत्य माने ?

हेतुवाद

"न तस्य" इस मन्त्र में हेतु भी है, मन्त्र का सीधा सीधा अर्थ यह है कि जो महत् यशवाला ईश्वर है उसके तुल्य कोई पदार्थ नहीं । जब यह विरुद्ध हेतु पड़ते देखा तो 'सत्यार्थप्रकाश' में 'यस्य नाम महद्यशः' यह पाठ ही नहीं लिखा । यदि हम इसको मिला लें तो सत्यार्थप्रकाश लिखित मन्त्रोक्त हेतु विरुद्ध हेतु हो जाता है क्योंकि अर्थ यह होगा कि 'जो ईश्वर महत् यशवाला है उसकी मूर्ति नहीं होती'। संसार में यशवालों की ही अधिक मूर्तियां देखने में आती हैं, रईसों के कमरों में हम यशवालों की ही मूर्तियां पाते हैं, कंगलों की मूर्तियां कम देखने में आती हैं । आज संसार में प्रभु पंचमजार्ज सब से अधिक यशवाले हैं अतएव नोट, रुपया, अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी, इकन्नी, पैसे और पाई तक पर इनकी मूर्ति पाई जाती है फिर यह कहना कि ईश्वर बड़े यशवाला है इसकारण उसकी मूर्ति नहीं--यह हेतु विरुद्ध-हेतु हो गया इसका इन लोगों के पास क्या जबाब है ?

सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने 'न तस्य' इस मंत्र के उत्तरार्ध को बिल्कुल छिपा लिया पबलिक् के आगे नहीं आने दिया इसका कारण कोई बतला सकता है ? लेखक जानता है कि इस मंत्र के उत्तरार्ध में वेद ने मूर्तिपूजा का मण्डन किया है वह मण्डन पबलिक् के आगे न चला जावे इस कारण उत्तरार्ध को छिपा लिया । मन्त्र इतना है ।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
हिरण्यगर्भ इत्येषमामाहिꣳसीदित्येषा
यस्मान्न जात इत्येषः ॥३

यजु० अ० ३२

उस ईश्वर के तुल्य कोई नहीं जो महत् यशवाला है और जिसका 'हिरण्यगर्भः-मामाहिꣳसी-यस्मान्न जातः' इन मन्त्रों में वर्णन है ।

इस मन्त्र में तीन मन्त्रों की प्रतीक हैं, मन्त्र के आरम्भ के कुछ अक्षर लिख कर पूरे मन्त्र और उसके भाव को याद करवाना उसको प्रतीक कहते हैं । उत्तरार्ध में सब से पहिले 'हिरण्यगर्भ इत्येषः' लिखा है । 'हिरण्यगर्भः' यह मंत्र की प्रतीक है और इस प्रतीक का पूरा मन्त्र यह है ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेकआसीत् ।

सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० १३ । ४

हिरण्यगर्भ ईश्वर सृष्टि से पहिले वर्तमान थे वह प्रकट होकर समस्तभूत समूह के एक पति हुये । वह हिरण्यगर्भ द्युलोक और पृथ्वी को धारण किये है उस देव के लिये हम हवि देते हैं ।

'न तस्य' इस मंत्र में कहा था कि वह कौन ईश्वर है ? तो उत्तरार्ध ने बतलाया कि जिसका वर्णन 'हिरण्यगर्भः' मंत्र में है । अब हमने 'हिरण्यगर्भः' यह मंत्र टटोला, इस मंत्र में ईश्वर का शरीर धारण करना और मनुष्यों का उसको हवि देकर पूजन करना बतलाया फिर हम कैसे मान लें कि उसके मूर्ति नहीं ? "हिरण्यगर्भः" मंत्र तो ईश्वर की मूर्ति और पूजा दोनों का वर्णन कर रहा है । इतना ही नहीं किन्तु "हिरण्यगर्भः" इस मंत्र से मूर्ति निर्माण होकर उसका पूजन होता है । इस विषय में कात्यायन कल्पसूत्र लिखता है कि—

अथ पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिः सोऽग्निः स यजमानः स हिरण्मयो भवति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृतꣳ हिरण्यम-मृतमग्निः पुरुषो भवति पुरुषो हि प्रजापतिः ॥१॥ उत्तानस्प्रा-श्वाꣳ हिरण्यपुरुषं तस्मिन् हिरण्यगर्भ इति ।

कात्यायन कल्प सूत्र १७ । ४ । १३

'हिरण्यगर्भः' इस मंत्र के ऊपर शतपथ भी है उसको भी सुनिये-

अथ साम गायति एतद्वै देवा एतं पुरुषमुपधाय तमेतादृशमे-वापश्यन्यथैतच्छुष्कं फलकम् ॥२२॥ ते अब्रुवन् उपतज्जानीत यथा-स्मिन्पुरुषे वीर्यं दधामेति ते अब्रुवंश्चेतयध्वमिति चितिमिच्छतेति वा व तदब्रुवंस्तदिच्छत यथास्मिन्पुरुषे वीर्यं दधामेति ॥२३॥ ते चेतयमाना एतत्सामापश्यंस्तदगायंस्तस्मिन्वीर्यमधुस्तथैवा-स्मिन्नयमेतद्दधाति पुरुषे गायति पुरुषे तद्वीर्यं दधाति चित्रे गायति सर्वाणि हि चित्राण्यग्निस्तमुपधाय न पुरस्तात्परीयान्नेन

मायमग्निर्हि न सदिति ॥२४॥ अथ सर्पनामैरुपतिष्ठतइमे वै लोकाः सर्पाः ।

शत० ७ । ४ । १

सब देवताओं ने हिरण्मय पुरुष को सुवर्ण फलक के ऊपर स्थापन किया तब यह परामर्श किया कि वह सुवर्ण पुरुष चेतना से रहित शुष्क फलक की समान है । तब फिर सब बोले कि इस हिरण्मय पुरुष में शक्ति प्रादुर्भाव के निमित्त परामर्श करो । सब देवताओं ने इस बात का अनुमोदन किया कि इसमें वीर्य स्थापन करें, वह देवता मीमांसा करते हुये तब (नमोस्तु सर्पेभ्यो० या इषवो यातु० ये वामो रोचने०) इन तीन मंत्र रूप साम की उपलब्धि को प्राप्त हुये और इस तीन मंत्र रूप साम को गाया तब उस हिरण्मय पुरुष में वीर्य अर्थात् फलप्रदायक शक्ति को स्थापन किया । इसी प्रकार यह यजमान भी इसी साम के बल से इस पुरुष में सामर्थ्य विधान करता है ।

पाठको ! अब आप ही बतलावें 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मंत्र में ईश्वर की मूर्ति का खण्डन है या मूर्तिपूजा का विधान । इन धोखेबाजों से तुम यह आशा न करो कि ये कभी विचार पर आवेंगे । इनका मतलब तो यह है कि कल्पसूत्र और शतपथ ब्राह्मण एवं समस्त भाष्य तथा वेद ये सब झूठे और ईसाई धर्म सही । इसी से ये वेद के परमशत्रु हैं । वेद वेद चिल्लाकर वेद से पीछा छुड़ाना चाहते हैं,जो चाहे सो करें क्योंकि इन्होंने लज्जा और धर्म को एक-दम तिलांजलि दे दी किन्तु विचारशील मनुष्य ऐसा नहीं कर सकते कि कात्यायन कल्प सूत्र और शतपथ ब्राह्मण को मिथ्या मान इनके बनावटी अर्थ को सत्य मान लें ।

'नतस्य' इस मंत्र में दूसरी प्रतीक "मामाहि ॅं सी" है, इस प्रतीक का पूरा मंत्र यह है ।

मामाहि ॅं सीज्जनितायः पृथिव्या
यो वा दिव ॅं सत्यधर्मा व्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० १२ । १०२

जो प्रजापति पृथ्वी का उत्पन्न करने, सत्यधारण करने वाला द्युलोक को सृजन कर व्याप्त है और जो आदि पुरुष प्रथम शरीर जगत् का आल्हाद और तृप्ति साधक जल को उत्पन्न करता हुआ वा मनुष्यों का रचने वाला है वह प्रजापति मुझे मत मारे उस प्रजापति के निमित्त मैं हवि देता हूँ।

इस मंत्र में ईश्वर को "प्रथम शरीरी" कहा है। शरीर मूर्ति ही होता है फिर इसी मंत्र में ईश्वर को हवि देना लिखा, फिर हम कैसे मान लें कि 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मंत्र में मूर्तिपूजा का खण्डन है? जो लोग "न तस्य" मंत्र में मूर्तिपूजा का खण्डन बतलाते हैं वे संसार की आंख में धूल झौंक रहे हैं।

"न तस्य" इस मंत्र में तीसरी प्रतीक "यस्मान्नजात" यह है इसका मंत्र भी सुन लें।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति
य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳ रराण-
स्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥

यजु० ८। ३६

जिस पुरुष से दूसरा कोई उत्कृष्ट नहीं प्रादुर्भूत हुआ, जो सम्पूर्ण लोकों में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट है वह षोडश कलात्मक सब भूतों का आश्रय जगत् का स्वामी प्रजा रूप से सम्यक् रमण करता हुआ प्रजा पालन के निमित्त अग्नि, वायु, सूर्य लक्षण वाली तीन ज्योतियों को अपने तेज से उज्जीवन करता है।

इस मंत्र में ईश्वर को प्रजारूप कहा। प्रजा में बिना रूप के कोई पदार्थ रहता नहीं, समस्त रूप उसी से निकले हैं इससे वह मूर्तिमान् है, फिर मूर्ति का निषेध करना हठ नहीं तो और क्या है।

चालबाज लोग जानते हैं कि वेद का विवेचन बहुत कठिन है वह सभी मनुष्यों की समझ में नहीं आता ऐसे गंभीर विषय का कौन विचार करेगा। हमारी साधारण मोटी मोटी बातें मनुष्यों की समझ में आजावेंगी, हमारी इस चाल से मनुष्य मूर्तिपूजा और उसके कहने वाले वेद को तिलांजलि देकर हमारी सोसाइटी में नाम लिखवा लेंगे एवं हमारे चलाये हुये मजहब की जन संख्या बढ़ जावेगी किन्तु जब से यह उपरोक्त विवेचन इनके आगे पहुँचा है तब से अनेक विचार शील मनुष्य मूर्तिपूजा करने लग गये और जो लोग वेद

को बच्चों का खेल समझते हैं जिनका मतलब वेद वेद चिल्लाकर संसार को नास्तिक बनाना है उनका दिल इतना कमजोर होगया है कि प्रथम तो वे शास्त्रार्थ में नहीं आते, यदि किसी कारण आ भी जावें तो इस विवेचन को सुनते ही ऐसे बैठ जाते हैं कि जैसे अत्यन्त बूढ़ी भैंस बैठ जाती हो। अब हम पाठकों से पूछते हैं कि आप ही बतलाइये 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मन्त्र में मूर्तिपूजा का खण्डन है या मण्डन ? धूर्त लोग संसार को ईसाई बनाने के लिये वेद का कतल करना चाहते हैं इस कारण वेद मंत्रों को चुरा कर, वेद में धोखा दे अपने धर्म और ईमान को बेच जबर्दस्ती से वेद में से मूर्तिपूजा का खण्डन निकालते हैं, इनके इस कर्तव्य पर प्रत्येक मनुष्य की आंख से रुधिर के आंसू बह निकलते हैं।

वेद वेद चिल्लाकर हिन्दुओं को ईसाई बनाने वाले प्रत्येक स्थल पर झूठ बोल, चालाकी कर, धोखा दे अपने धर्म कर्म का कचूमर निकाल जबर्दस्ती से वेद से ईसाई धर्म सिद्ध कर रहे हैं ऐसे चालबाजों की चालबाजियों और धोखे से बचना प्रत्येक मनुष्य का काम है। जब इन्होंने देखा संभव है किसी समय में संसार 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस मंत्र के अर्थ का विवेचन कर बैठे और हमारे समस्त जाल का मटिया मेट हो जावे तब तो हमारे पास मूर्तिपूजन के खण्डन में कोई जाल ही न रहेगा यह विचार कर इन्होंने एक दूसरा बनावटी जाल बनाकर तैयार किया जरा उसकी भी बानगी देखनी होगी।

बहुत दिनों की बात है हम भागलपुर जा रहे थे रास्ते में एक स्टेशन से दो मनुष्य हमारी गाड़ी में आबैठे, उनके साथ में हारमोनियम और तबला भी था, बैठने पर बातचीत होने लगी; मालूम हुआ कि एक मनुष्य तबला बजाता है और दूसरे मनुष्य किसी धार्मिक सोसाइटी के भजनोपदेशक हैं। जब बातें हो चुकीं तब उन्होंने तबलची से कहा कि तबला ठीक करो पंडित जी को एक भजन सुनावें। तबला और हारमोनियम मिलाये गये, गाना आरंभ किया गया और एक भजन गाया जिसका आरम्भ यह है कि—

तुम्हीं हो मूर्ति में व्यापक तुम्हीं व्यापक हो फूलों में।
कहो भगवान पर भगवान भला क्योंकर चढ़ाऊं मैं ॥

भजन बहुत बड़ा है पूरा हुआ, पूर्ण होने पर भजनोपदेशक ने हम से पूछा कि कहिये पंडित जी भजन कैसा है ? हमने कहा अच्छा है। उन्होंने फिर पूछा कि भजन में कोई गलती हो तो बतला दीजिये ? इसके उत्तर में हमने कहा

कि गलती तो अवश्य है,पहिली कड़ी को सुधार दीजिये,उसने कहा कैसा बनादें ? हमने उत्तर दिया कि—

तुम्हीं हो पेट में व्यापक तुम्हीं व्यापक हो भोजन में।
कहो भगवान में भगवान भला क्योंकर धंसाऊं मैं ॥

यह बना दो। भजनोपदेशक बोले इससे क्या होगा ? हमने बतलाया कि जो कुछ होना होगा आठ दश दिन में हो जायगा। रामनाम सत्य को छोड़ कर और क्या होगा ? अच्छी फिलास्फी निकाली, दुनियां की प्रलय ही कर डाली, अब दुनियां जियेगी कैसे ? काम तो सब बन्द ही हो जायंगे। दुनियां चलेगी तो पैर के ईश्वर से पृथ्वी का ईश्वर दब जायगा, बैठेगी तो आदमी के ईश्वर से चारपाई का ईश्वर दबा धरा है,पाखाना फिरेगी तो ईश्वर में से ईश्वर निकल भागेगा, पेशाब करेगी तो पेशाब का व्यापक ईश्वर लुढ़क चलेगा। चूल्हे में आग सुलगा नहीं सकते, नहीं तो चूल्हे में व्यापक ईश्वर के भीतर लड़कीवाला ईश्वर जल जाय। श्वांस ले नहीं सकते, ऐसा करने पर वायु व्यापक ईश्वर पेट व्यापक ईश्वर में जाकर ठोकर लगा देगा। बस आज से सब काम बन्द करो और सीधे टिकट कटा कर यमराज के वेटिंग रूमों में पहुँचो। भजन बनाने वाले ने चाहा था कि हम मूर्तिपूजा को छुड़वा दें किंतु यहां दुनियां ही छूट चली। भला जब ये ऐसी २ चालाकियों से संसार की आंख में धूल झौंक कर वेद को उड़ाना चाहते हैं तो फिर वेद में धोखा क्यों न देंगे ? जालसाजी को छोड़ कर और तो इनके पास कुछ है ही नहीं ? मूर्तिपूजन के उड़ाने के लिये जो इन्होंने वेद से दूसरा जाल बनाया है वह यह है।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय इवते तमो य उ सम्भूत्याᳬंरताः ॥

यजु० ४०। ६

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुये कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिर के महाक्लेश भोगते हैं

इस अर्थ को वेद मंत्र ही बनावटी सिद्ध कर देता है। इस अर्थ में संभूति और असंभूति इन दो पदों के अर्थों में घपला मचा कर वेद से मूर्तिपूजा का खण्डन निकाला गया है।

इस मन्त्र का देवता आत्मा है। जाली अर्थ में आत्मा परक अर्थ ही नहीं बनता। वेद मंत्र का जो देवता होता है वही मन्त्र का वर्णनीय विषय होता है, नये अर्थ में वेद के साथ यह अन्याय किया गया है कि जो आत्मा के वर्णन को उड़ा कर प्रकृति और लकड़ी पत्थर का वर्णन कर दिया। बोलो इस अन्याय से दुःखी होकर वेद किसके आगे रोवे ? इस मन्त्र के अर्थ से जबर्दस्ती से मूर्ति-पूजा का खण्डन निकाला, इसमें तो नास्तिक और शुष्क वेदान्तियों का खण्डन है। अर्थ देखिये—

'जो असंभूति शरीर की उपासना करते हैं जिनका सिद्धान्त यह है कि शरीर से भिन्न और कोई जीवात्मा नहीं है इस कारण शरीर की ही पुष्टि करो वे नरक को जाते हैं' यह तो नास्तिकों का खण्डन हुआ। अब उत्तरार्द्ध का अर्थ सुनिये 'जो संभूति केवल आत्मज्ञान में रत हैं, अपने आपको ब्रह्म मानते हैं और कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड को सर्वथा छोड़ देते हैं वे उनसे भी अधिक भयंकर नरक में जाते हैं'।

मंत्र का अर्थ यह है, इस मन्त्रार्थ में पूर्वार्द्ध में भी आत्मा का वर्णन और उत्तरार्द्ध में भी आत्मा का वर्णन। वर्तमान काल में उव्वट, महीधर, जगद्गुरु शंकराचार्य,सायण, गिरिधर और मिश्र भाष्य उपलब्ध होते हैं उन सब में यही अर्थ है फिर इनकी जबर्दस्ती कैसे चलेगी ? वेद स्वतः कहता है कि—

संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदो भयꣳ सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते ॥

यजु० ४०। ११

जो योगी आत्मा, विनाशी शरीर इन दोनों को मिले हुये जानता है वह शरीर से मृत्यु को जीत कर आत्मा में मोक्ष को पाता है !

इस मन्त्र में 'संभूति' शब्द का अर्थ 'आत्मा' और 'असंभूति' शब्द का अर्थ 'शरीर' स्पष्ट है फिर किसी का बनाया बनावटी अर्थ कैसे सत्य सिद्ध होगा ? जब वेद ही इस मन्त्र में 'अन्धन्तमः प्रविशन्ति' मन्त्र के दूषणों को दूर कर देने

के लिये कल्याणकारी मार्ग बतलाता हुआ मन्त्रोक्त शब्दों पर स्पष्टी करण की दृष्टि डाल रहा है।

जब 'अन्धन्तमः' मन्त्र पर बनाये हुये जाल का भण्डाफोड़ हो जाता है तब लाचार होकर वेद के दुश्मन यह कहने लगते हैं कि ईश्वर तो निराकार है, निराकार की मूर्ति कैसे बनेगी ? पाठकवर्ग ! यह इनकी तीसरी चालाकी है इसकी कलई खोलने के लिये ईश्वर स्वरूप ही तोष दायक है उसके पढ़ने से पता लगेगा कि ईश्वर निराकार है या साकार ? उसके पढ़ने से यह भी पता लग जायगा कि चालबाज लोग वेद के अभिप्राय को छिपाने और हिन्दुओं को नकली ईसाई बनाने के लिये कैसे २ घृणित मार्गों का अवलम्बन करते हैं। वेद में मूर्तिपूजा का वर्णन है इसको आप ऊपर पढ़ चुके अब शिवलिङ्ग विवेचन को पढ़ें।

शिवलिंगपूजा

वेद ब्रह्म को संसार का "अभिन्ननिमित्तोपादानकारण" मानता है। इस विषय को हमने अवतार, मूर्तिपूजा, सृष्टयुत्पत्ति और "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" इन विषयों के लेखों में स्पष्ट कर दिया है। यजुर्वेद अध्याय १६ और अथर्व वेद काण्ड ११ में शङ्कर को ब्रह्म तथा सर्वस्वरूप कहा है। वेद और पुराणों में शङ्कर को अष्टमूर्ति लिखा है। शङ्कर की वे अष्ट मूर्तियां प्रकृति, महतत्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी हैं। इन्हीं अष्ट मूर्तियों में शङ्कर का पूजन होता है, चाहे शङ्कर का पूजन प्रकृति में करो या महतत्व में अथवा अहंकार या आकाश में, वायु यद्वा अग्नि में, स्थूल पदार्थों में करना चाहो तो जल और पृथ्वी में करो किन्तु जो मनुष्य अष्टधा प्रकृति में इकट्ठा ही शंकर का पूजन करे उसके लिये ब्रह्माण्ड का पूजन है क्योंकि ब्रह्माण्ड इन अष्ट प्रकृतियों से बना है। ब्रह्माण्ड का पूजन कैसे हो यह बहुत बड़ा है, इसका छोटा रूप ऋषियों ने शिवलिङ्ग बनाया। शिवलिङ्ग ब्रह्माण्ड का नकशा है, जैसे यह ब्रह्माण्ड ऊपर से नीचे तक और चारों तरफ कुछ गोल होता है, इसी प्रकार शिव के लिङ्ग की आकृति का वर्णन है। बस सिद्ध हुआ कि लिङ्ग क्या है ब्रह्माण्ड का नकशा है और ब्रह्माण्ड में अष्ट प्रकृति विद्यमान रहती हैं, एक शंकर के लिङ्ग पूजन से एक दम आठ प्रकृतियों का पूजन हो जाता है। इस अभिप्राय से संस्कृत साहित्य में शिवलिङ्ग पूजन लिखा है। लौकिक ग्रन्थों

में योनि और लिङ्ग इन शब्दों से स्त्री पुरुष की मूत्रेन्द्रिय का भी बोध होता है किन्तु वेद पुराण और दर्शन इनमें इन अर्थों का बोध नहीं होता। शिवपुराण ने शिवलिङ्ग कितने हैं इसका भी विवरण लिख दिया है।

लिंगानां च क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुत द्विजाः।
तदेवालिंगं प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम् ॥२७
सूक्ष्मप्रणवरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्कलम्।
स्थूललिङ्गं हि सकलं तत्पंचाक्षरमुच्यते ॥२८
तयोः पूजा तपः प्रोक्तं साक्षान्मोक्षप्रदे उभे।
पौरुषप्रकृतिभूतानि लिंगानि सुबहूनि च ॥२९
तानि विस्तरतो वक्तुं शिवो वेत्ति न चापरः।
भूविकाराणि लिङ्गानि ज्ञातानि प्रब्रवीमि वः ॥३०
स्वयंभूलिंगं प्रथमं बिन्दुलिङ्गं द्वितीयकम्।
प्रतिष्ठितं चरं चैव गुरुलिंगं तु पंचमम् ॥३१
देवर्षितपसा तुष्टः सान्निध्यार्थं तु तत्र वै।
पृथिव्यन्तर्गतः शर्वो बीजं वै नादरूपतः ॥३२
स्थावरांकुरवद्भूमिमुद्भिद्यव्यक्त एव सः।
स्वयं भूतं जातमिति स्वयंभूरिति तं विदुः ॥३३
तल्लिंगपूजया ज्ञानं स्वयमेव प्रवर्द्धते।
सुवर्णरजतादौ वा पृथिव्यां स्थंडिलेऽपि वा ॥३४
स्वहस्ताल्लिखितं लिङ्गं शुद्धप्रणवमंत्रकम्।
यंत्रलिंगं समालिख्य प्रतिष्ठावाहनं चरेत् ॥३५
बिन्दुनादमयं लिंगं स्थावरं जंगमं च यत्।
भावनामयमेतद्धि शिवदृष्टं न संशयः ॥३६

शिवपुराण विद्येश्वर सं० अ० १८

शंकर का प्रथम लिंग प्रणव (ओंकार) है, गीता, उपनिषद् और पुराणों

में भूरि भूरि इस लिंग का महत्व वर्णन किया गया है। शंकर का यह लिंग आर्यसमाजियों को बड़ा प्रिय है, जो कोई आर्यसमाजी किताब, विज्ञापन, चिट्ठी लिखता है इन सब लेखों में सब से ऊपर इस लिंग की स्थापना करता है, यह इतना प्रिय है कि प्रत्येक आर्यसमाजी पीतल का बनवा कर शंकर के इस लिंग को मस्तक पर टोपी में लगा कर अपना गौरव समझता है। कहिये, अब तो लिंग को बुरा बतलाने वालों के मस्तक में ही शिवलिंग चढ़ बैठा, क्या इसको शिव की मूत्रेन्द्रिय समझ कर आर्यसमाजी मस्तक पर धारण करते हैं? यह लिंग केवल आर्यसमाजियों की कामनाओं का परिपूर्ण करने वाला नहीं है वरन् चाहे कोई मनुष्य किसी मत का हो जो भक्ति द्वारा इसका पूजन करेगा यह उसकी कामनाओं को परिपूर्ण कर देगा ॥ २७ ॥ प्रणवरूप जो शंकर का लिंग है वह अतिसूक्ष्म है अतएव निष्कल है और शंकर का स्थूल लिंग यह समस्त ब्रह्माण्ड है, इसी को पंचाक्षर लिंग कहते हैं ॥ २८ ॥ सूक्ष्म और स्थूल इन दोनों लिंगों की जो पूजा है ये दोनों ही पूजा तप हैं एवं साक्षात् मोक्ष की देने वाली हैं। पौरुष (विराट् रूप) प्रकृति तथा 'भूतानि' आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सादा और पाषाणरूप ये शंकर के अनेक लिंग हैं ॥२९॥ इन लिंगों के वर्णन में इतनी आधिक्यता है कि उनका वर्णन शिव ही कर सकते हैं दूसरा कोई नहीं परन्तु पृथ्वी विकार के लिंग में मति अनुसार तुम से कहता हूँ ॥३०॥ स्वयंभू लिंग १, विन्दु लिंग २, प्रतिष्ठा किये लिंग ३, चर लिंग ४, गुरु लिंग ५ ॥३१॥ देवता और ऋषियों के तप से सन्तुष्ट होकर उनके निकट प्राप्त होने को पृथ्वी के अन्तर्गत वीज और नादरूप से रहने हारे शिव जी ॥३२॥ जिस प्रकार अंकुर पृथ्वी को भेद कर निकलते हैं इसी प्रकार पृथ्वी के अन्तर से निकले हुये लिंग को स्वयम्भू लिंग कहते हैं ॥३३॥ उस लिंग की पूजा करने से स्वयं ज्ञान की वृद्धि होती है, सुवर्ण, चांदी, पृथ्वी अथवा वेदिका में ॥३४॥ अपने हाथ से लिखे हुये, शुद्ध प्रणव युक्त मंत्र और लिंग को यंत्र पर लिख कर उसकी प्रतिष्ठा तथा आवाहन करे ॥३५॥ यही विन्दुनादमय लिंग स्थावर और जंगम रूप है भावना से ही इसमें निःसन्देह शिव का दर्शन होता है ॥३६॥

बस इतने ही लिंगों के पूजने की विधि है तथा इतने ही लिंग पूजे जाते हैं। शंकर लिंग के चारों तरफ जलहरी होती है, यह जल को बाहर नहीं जाने देती इससे इसका नाम जल हरी है। जल हरी का अपभ्रंश जलहरी है। यह

सप्तावरण का नकशा है, ब्रह्माण्ड के चारों तरफ सात आवरण रहते हैं वे ब्रह्माण्ड की चीज को आवरण से बाहर नहीं जाने देते, उनका ही नकशा यह जलहरी है-यह वेद-शास्त्रों का अभिप्राय है। इससे भिन्न लिंग-जलहरी का जो कोई मनमाना अर्थ करता है वह मिथ्या और अमान्य है।

आर्यसमाज।

मूर्तिपूजा के विषय में आर्यसमाज का सिद्धान्त नीचे दिखलाता हूँ। देखिये—

(प्रश्न) मूर्तिपूजा कहां से चली ? (उत्तर) जैनियों से (प्रश्न) जैनियों ने कहां से चलाई ? (उत्तर) अपनी मूर्खता से। (प्रश्न) जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति देख के अपने जीवका भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है (उत्तर) जीव चेतन और मूर्ति जड़। क्या मूर्ति के सदृश जीव भी जड़ हो जायगा ? यह मूर्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है, जैनियों ने चलाई है। इसलिये इनका खण्डन १२ वें समुल्लास में करेंगे। (प्रश्न) शाक्त आदि ने मूर्तियों में जैनियों का अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैनियों की मूर्ति के सदृश वैष्णवादि की मूर्तियां नहीं हैं। (उत्तर) हां यह ठीक है। जो जैनियों के तुल्य बनाते तो जैनमत में मिल जाते। इसलिये जैनों की मूर्तियों से विरुद्ध बनाई क्योंकि जैनों से विरोध करना इनका काम और इनसे विरोध करना मुख्य उनका काम था। जैसे जैनों ने मूर्तियां नंगी, ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्य के समान बनाई हैं उनसे विरुद्ध वैष्णवादि ने यथेष्ट शृङ्गारित स्त्री के सहित रंग राग भोग विषयाशक्ति सहिताकार खड़ी और बैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शंख घंटा घरियार आदि बाजे नहीं बजाते। ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि सम्प्रदायी पोपों के चेले जैनियों के जाल से बच के इनकी लीला में आ फंसे और बहुत से व्यासादि महर्षियों के नाम से मनमाने असंभव गाथायुक्त ग्रन्थ बनाये। उनका नाम 'पुराण' रख कर कथा भी सुनाने लगे। और फिर ऐसी २ विचित्रमाया रचने लगे कि पाषाण की मूर्तियां बना कर गुप्त कहीं पहाड़ वा जंगलादि में धर आये वा भूमि में गाड़ दीं। पश्चात् अपने चेलों में प्रसिद्ध किया कि मुझको रात्रि को स्वप्न में महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मीनारायण और भैरव हनुमान आदि ने कहा है कि हम अमुक २ ठिकाने हैं। हमको वहां से ला, मन्दिर में स्थापना

कर और तू ही हमारा पुजारी होवे तो हम मनवांछित फल देवें । जब आंख के अन्धे और गांठ के पूरे लोगों ने पोप जी की लीला सुनी तब तो सच ही मान ली और उनसे पूछा कि ऐसी वह मूर्ति कहां पर है ? तब तो पोप जी बोले कि अमुक पहाड़ वा जंगल में है चलो मेरे साथ दिखला दूं । तब तो वे अन्धे उस धूर्त के साथ चलके वहां पहुँच कर देखा । आश्चर्य होकर उस पोप के पग में गिर कर कहा कि आपके ऊपर इस देवता की बड़ी ही कृपा है, अब आप ले चलिये और हम मन्दिर बनवा देंगे । उसमें इस देवता की स्थापना कर आप ही पूजा करना । और हम भी इस प्रतापी देवता के दर्शन पर्सन करके मनोवांछित फल पावेंगे । इसी प्रकार जब एक ने लीला रची तब तो उसको देख सब पोप लोगों ने अपनी जीविकार्थ छल कपट से मूर्तियां स्थापन कीं (प्रश्न) परमेश्वर निराकार है वह ध्यान में नहीं आ सकता इसलिये अवश्य मूर्ति होनी चाहिये । भला जो कुछ भी नहीं करे तो मूर्ति के सन्मुख जा, हाथ जोड़ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम लेते हैं । इसमें क्या हानि है ? (उत्तर) जब परमेश्वर निराकार, सर्व व्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और बनस्पति आदि अनेक पदार्थ जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचना की है क्या ऐसी रचना युक्त पृथिवी पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियां कि जिन पहाड़ आदि से मनुष्यकृत मूर्तियाँ बनती हैं उनको देख कर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता ? जो तुम कहते हो कि मूर्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है और जब वह मूर्ति सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहां मुझे कोई नहीं देखता । इसलिये वह अनर्थ करे बिना नहीं चूकता । इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्तिपूजा करने से सिद्ध होते हैं । अब देखिये ! जो पाषाणादि मूर्तियों को न मान कर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को सब के बुरे भले कर्मों का द्रष्टा जान कर एक क्षण मात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक् न जानके कुकर्म करना तो कहां रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ बुरा काम करूंगा तो इस

अन्तर्यामी के न्याय से बिना दण्ड पाये कदापि न बचूंगा । और नामस्मरणमात्र से कुछ भी फल नहीं होता । जैसा कि मिशरी २ कहने से मुंह मीठा और नींब २ कहने से कड़ुवा नहीं होता किन्तु जीभ से चखने ही से मीठा वा कड़ुवापन जाना जाता है (प्रश्न) क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है जो सर्वत्र पुराणों में नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है ? (उत्तर) नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं । जिस प्रकार तुम नाम स्मरण करते हो वह रीति झूठी है । (प्रश्न) हमारी कैसी रीति है ? (उत्तर) वेद विरुद्ध । (प्रश्न) भला अब आप हमको वेदोक्त नाम स्मरण की रीति बतलाइये ? (उत्तर) नाम स्मरण इस प्रकार करना चाहिये । जैसे "न्यायकारी" ईश्वर का एक नाम इस नाम से इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सबका यथावत् न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना अन्याय कभी न करना । इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है ।

(प्रश्न) हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम कृष्णादि अवतार लिये । इससे उसकी मूर्ति बनती है । क्या यह भी बात झूठी है ? (उत्तर) हां २ झूठी । क्योंकि "अज एकपात्" "अकायम्" इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म मरण और शरीर धारण रहित वेदों में कहा है तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता । क्योंकि जो आकाशवत् सर्वव्यापक, अनन्त और सुख, दुःख, इत्यादि गुण रहित है वह एक छोटे से वीर्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आसकता है ? आता जाता वह है जो एकदेशीय हो और जो अचल, अदृश्य, जिसके बिना एक परमाणु भी खाली नहीं है उसका अवतार कहना जानो बन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है । (प्रश्न) जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्ति में भी है । पुनः चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं ? देखो

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये ।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पाषाण, न मृत्तिका से बनाये पदार्थों में है किंतु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है । जहां भाव करें वहां ही परमेश्वर सिद्ध होता है । (उत्तर) जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में

परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना [देखो ! यह] कितना बड़ा अपमान है ? वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्प पत्र तोड़ के क्यों चढ़ाते ? चन्दन घिसके क्यों लगाते ? धूप को जला के क्यों देते ? घंटा, घरियाल, झांज, पखाजों को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते हो ? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते ? शिर में है; क्यों शिर नमाते ? अन्न, जलादि में है क्यों नैवेद्य धरते ? जल में है, स्नान क्यों कराते ? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करते हो या व्याप्य की ? जो व्यापक की करते हो तो पाषाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और जो व्याप्य को करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ? हम पाषाणादि के पुजारी हैं ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते ?

अब कहिये 'भाव' सच्चा है वा झूठा ? जो कहो सच्चा है तो तुम्हारे भाव के आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायगा और तुम मृत्तिका में सुवर्ण रजतादि, पाषाण में हीरा पन्ना आदि, समुद्रफेन में मोती, जल में घृत दुग्ध-दधि आदि और धूलि में मैदा शक्कर आदि की भावना करके उनको वैसे क्यों नहीं बनाते हो ? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं करते, वह क्यों होता ? और सुख की भावना सदैव करते हो वह क्यों नहीं प्राप्त होता ? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता ? मरने की भावना नहीं करते, क्यों मरजाते हो ? इस लिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि जैसे में वैसा करने का नाम भावना कहते हैं। जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है। क्योंकि जैसे को वैसे समझना ज्ञान और अन्यथा जानना अज्ञान है। इसलिये तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना कहते हो (प्रश्न) अजी जब तक वेद मन्त्रों से आवाहन नहीं करते तब तक देवता नहीं आता और आवाहन करने से झट आता और विसर्जन करने से चला जाता है (उत्तर) जो मन्त्र को पढ़ कर आवाहन करने से देवता आजाता है तो मूर्ति चेतन क्यों नहीं होजाती ? और विसर्जन करने से चला क्यों नहीं जाता ? और वह कहां से आता और कहां जाता है ? सुनो अन्धो !

पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है। जो तुम मन्त्र बल से परमेश्वर को बुला लेते हो तो उन्हीं मन्त्रों से अपने मरे हुये पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते? और शत्रु के शरीर में जीवात्मा का विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते। सुनो भाई भोले भाले लोगो! ये पोप जी तुमको ठग कर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वेदों में पाषाणादि मूर्तिपूजा और परमेश्वर के आवाहन विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है। (प्रश्न)

प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।
आत्मेहागच्छतु सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा।
इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

इत्यादि वेद मन्त्र हैं क्यों कहते हो नहीं हैं? (उत्तर) अरे भाई! बुद्धि को थोड़ी सी तो अपने काम में लाओ! ये सब कपोल कल्पित वाममार्गियों की वेद विरुद्ध तन्त्र ग्रन्थों की पोपरचित पंक्तियां हैं। वेद वचन नहीं। (प्रश्न) क्या तन्त्र झूठा? (उत्तर) हां सर्वथा झूठा है। जैसे आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि पाषाणादि मूर्ति विषयक वेदों में एक मन्त्र भी नहीं वैसे "स्नानं समर्पयामि" इत्यादि वचन भी नहीं। अर्थात् इतना भी नहीं है कि "पाषाणादिमूर्तिं रचयित्वा मन्दिरेषु संस्थाप्य गन्धादिभिरर्चयेत्" अर्थात् पाषाण की मूर्ति बना, मन्दिरों में स्थापन कर, चन्दन अक्षतादि से पूजे। ऐसा लेशमात्र भी नहीं। (प्रश्न) जो वेदों में विधि नहीं तो खण्डन भी नहीं है। और जो खण्डन है तो "प्राप्तौ सत्यां निषेधः" मूर्ति के होने ही से खण्डन हो सकता है। (उत्तर) विधि तो नहीं परन्तु परमेश्वर के स्थान में किसी अन्य पदार्थ को पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध किया है। क्या अपूर्वविधि नहीं होता? सुनो यह है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इवते तमो य उ सम्भूत्याꣳ रताः ॥१

यजुः अ० ४० मं० ६

न तस्य प्रतिमा अस्ति ॥ २ ॥

यजुः अ० ३२ मं० ३

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥१

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥२

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति ।
यदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥३

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदꣳ श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५

केनोपनि०

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण को ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं। और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुये कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःख रूप नरक में गिर के महाक्लेश भोगते हैं ॥१॥ जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है ॥२॥ जो वाणी की इयत्ता अर्थात् यह जल है लीजिये, वैसा विषय नहीं। और जिसके धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है उसी को ब्रह्म जान और उपासना कर और जो उससे भिन्न है वह उपासनीय नहीं ॥१॥ जो मन से इयत्ता करके मनन में नहीं आता, जो मन को जानता है उसी को ब्रह्म तू जान और उसी की उपासना कर, जो उससे भिन्न जीव और अन्तःकरण है उसकी उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर ॥२॥ जो आंख से नहीं दीख पड़ता और जिससे सब आंखें देखती हैं उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और जो उससे भिन्न सूर्य, विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उनकी उपासना मत कर ॥३॥ जो श्रोत्र से नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और उससे भिन्न शब्दादि की उपासना उसके स्थान में मत कर ॥४॥ जो प्राणों से चलायमान नहीं होता, जिससे प्राण गमन को प्राप्त होता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो यह उससे भिन्न वायु है

उसकी उपासना मत कर ॥५॥ इत्यादि बहुत से निषेध हैं। निषेध प्राप्त और अप्राप्त का भी होता है। 'प्राप्त' का जैसे कोई कहीं बैठा हो उसको वहां से उठा देना। 'अप्राप्त' का जैसे हे पुत्र! तू चोरी कभी मत करना, कुवे में मत गिरना। दुष्टों का संग मत करना, विद्याहीन मत रहना इत्यादि अप्राप्त का भी निषेध होता है। सो मनुष्यों के ज्ञान में अप्राप्त, परमेश्वर के ज्ञान में प्राप्त का निषेध किया है इसलिये पाषाणादि मूर्तिपूजा अत्यन्त निषिद्ध है। (प्रश्न) मूर्तिपूजा में पुण्य नहीं तो पाप तो नहीं है? (उत्तर) कर्म दो ही प्रकार के होते हैं विहित-जो कर्तव्यता से वेद में सत्य भाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरे निषिद्ध-जो अकर्तव्यता से मिथ्या भाषणादि वेद में निषिद्ध हैं। जैसे विहित का अनुष्ठान करना वह धर्म, उसका न करना अधर्म है वैसे ही निषिद्ध कर्म का करना अधर्म और न करना धर्म है। जब वेदों से निषिद्ध मूर्तिपूजादि कर्मों को तुम करते हो तो पापी क्यों नहीं? (प्रश्न) देखो? वेद अनादि हैं, उस समय मूर्ति का क्या काम था? क्योंकि पहिले देवता प्रत्यक्ष थे। यह रीति तो पीछे से तन्त्र और पुराणों से चली है। जब मनुष्यों का ज्ञान और सामर्थ्य न्यून हो गया तो परमेश्वर को ध्यान में नहीं लासके, और मूर्ति का ध्यान तो कर सकते हैं इसकारण अज्ञानियों के लिये मूर्तिपूजा है क्योंकि सीढ़ी २ से चढ़े तो भवन पर पहुंच जाय। पहली सीढ़ी छोड़ कर ऊपर जाना चाहे तो नहीं जासकता इसलिये मूर्ति प्रथम सीढ़ी है इसको पूजते २ जब ज्ञान होगा और अन्तःकरण पवित्र होगा तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा :जैसे लक्ष्य का मारने वाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली वा गोला आदि मारता २ पश्चात् सूक्ष्म में भी निशाना मार सकता है वैसे स्थूल मूर्ति की पूजा करता २ पुनः सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियां गुड़ियों का खेल तब तक करती हैं कि जब तक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं इत्यादि प्रकार से मूर्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं (उत्तर) जब वेदविहित धर्म और वेद विरुद्धाचरण में अधर्म है तो पुनः तुम्हारे कहने से भी मूर्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो २ ग्रन्थ वेद से विरुद्ध हैं उन २ का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो—

नास्तिको वेद निन्दकः ।१।

मनु० २ । ११

या वेदबाह्यः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।

सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः।२।
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च।३।

मनु० अ० १२ [९५ । ९६]

मनु जी कहते हैं कि जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान,त्याग,विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है।१। जो ग्रन्थ वेदबाह्य कुत्सित पुरुषों के बनाये संसार को दुःख सागर में डुबाने वाले हैं वे सब निष्फल,असत्य,अन्धकार रूप इसलोक और परलोक में दुखदायक हैं ॥२॥ जो इन वेदों से विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। उनका मानना निष्फल और झूठा है ॥३॥ इसी प्रकार ब्रह्मासे लेकर जैमिनि महर्षि पर्यन्त का मत है कि वेद विरुद्ध को न मानना किन्तु वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है। क्यों ? वेद सत्य अर्थ का प्रतिपादक है। इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं वेद विरुद्ध होने से झूठे हैं जो कि वेद से विरुद्ध पुस्तकें हैं उनमें कही हुई मूर्तिपूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट हो जाता है इसलिये ज्ञानियों की सेवा संग से ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी ला सकता है ? नहीं २ मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है। पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है। हां छोटे धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या और सत्य भाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियां हैं। जैसे ऊपर घर में जाने की निःश्रेणी होती है किन्तु मूर्तिपूजा करते २ ज्ञानी तो कोई न हुआ प्रत्युत सब मूर्तिपूजक अज्ञानी रह कर मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके बहुत २ से मर गये और जो अब हैं वा होंगे वे भी मनुष्य जन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर निरर्थक नष्ट हो जायंगे। मूर्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्ष्यवत् नहीं किन्तु धार्मिक विद्वान् और सृष्टि विद्या है। इसको बढ़ाता २ ब्रह्म को भी पाता है और मूर्ति गुड़ियों के खेलवत् नहीं किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षा का होना गुड़ियों के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिये ! जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायगा। (प्रश्न) साकार में मन स्थिर होता

और निराकार में स्थिर होना कठिन है इसलिये मूर्तिपूजा रहना चाहिये। (उत्तर) साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक २ अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण कर्म स्वभाव का विचार करता २ आनन्द में मग्न होकर स्थिर होजाता है और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगावे क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है इसलिये मूर्तिपूजन करना अधर्म है। दूसरा-उसमें क्रोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है। तीसरा-स्त्री पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई, बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं। चौथा-उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मान के पुरुषार्थ रहित होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गमाता है। पांचवां-नाना प्रकार की विरुद्ध स्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्ध मत में चलकर आपस में फूट बढ़ाके देश का नाश करते हैं। छठा-उसी के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय होकर राज्य स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेकविध दुःख पाते हैं। सातवां जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान देता है वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्तियां धरते हैं उन दुष्ट बुद्धि वालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे। आठवां-भ्रान्त होकर मन्दिर २ देश देशान्तर में घूमते २ दुःख पाते, धर्म संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं। नववां-दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं वे उस धन को वेश्या, पर स्त्री गमन, मद्य, मांसाहार, लड़ाई बखेड़ों में व्यय करते हैं जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है। दशवां-माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं। ग्यारहवां-उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है तब

हा हा करते रोते रहते हैं। बारहवां-पूजारी परस्त्रियों के संग और पूजारिन पर पुरुषों के संग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं। तेरहवां-स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्ध भाव होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। चौदहवां-जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़बुद्धि हो जाता है क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है। पन्द्रहवां-परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिये बनाये हैं उनको पुजारी जी तोड़ताड़ कर न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़कर वायु जल की शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल कर सड़कर उलटा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिये पुष्पादि सुगन्धि युक्त पदार्थ रचे हैं? सोलहवां-पत्थर पर चढ़े हुये पुष्प चन्दन और अक्षत आदि सब का जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड़के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का और सहस्रों जीव उसमें पड़ते उसी में मरते और सड़ते हैं ऐसे २ अनेक मूर्तिपूजा के करने में दोष आते हैं इस लिये सर्वथा पाषाणादि मूर्तिपूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है और जिन्होंने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे। (प्रश्न) किसी प्रकार की मूर्तिपूजा करनी करानी नहीं और जो अपने आर्यावर्त में पंचदेव पूजा शब्द प्राचीन परम्परा से चला आता है उसका यही पंचायतन पूजा जो कि शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश और सूर्य की मूर्ति बनाकर पूजते हैं यह पंचायतन पूजा है वा नहीं? (उत्तर) किसी प्रकार की मूर्तिपूजा न करना किन्तु मूर्तिमान् जो नीचे कहेंगे उनकी पूजा अर्थात् सत्कार करना चाहिये। वह पंचदेवपूजा, पंचायतनपूजा शब्द बहुत अच्छा अर्थ वाला है परन्तु विद्याहीन मूढ़ों ने उसके उत्तम अर्थ को छोड़कर निकृष्ट अर्थ पकड़ लिया। जो आजकल शिवादि पांचों की मूर्तियां बनाकर पूजते हैं उनका खण्डन तो अभी कर चुके हैं। यह जो सच्ची पंचायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा और मूर्तिपूजा है, सुनो—

मानो वधीः पितरं मोत मातरम् ॥१॥

यजु० अ० १६ मं० १५

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥२॥

अथर्व० कां० ११ व० ५ मं० १७

अतिथिर्गृहानागच्छेत ॥३॥

अथर्व० कां० १५ व० १३ मं० ६

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ॥४॥

ऋग्वेदे

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ।५।

तैत्तिरीयोपनि० वल्ली० १ अनु० १।

कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥६॥

शतपथ० कां० १४ प्रपाठ० ६ ब्राह्म० ७ कंडिका १०

मातृदेवो भव पितृदेवो भव
आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव ॥७॥

तैत्तिरीयो० व० १ अनु० ११

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता: पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभि: ॥८॥

मनु० अ० ३ । ५५

पूज्यो देववत्पति: ॥९॥

मनुस्मृतौ

प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता अर्थात् सन्तानों को तन मन धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना। दूसरा पिता सत्कर्तव्यदेव उसकी भी माता के समान सेवा करनी ॥१॥ तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है उसकी तन मन धन से सेवा करनी ॥२॥ चौथा अतिथि जो विद्वान्,धार्मिक,निष्कपटी,सब की उन्नति चाहने वाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सब को सुखी करता है उसकी सेवा करें ॥३॥ पांचवां स्त्री के लिये पति और पुरुष के लिये पत्नी पूजनीय है ॥८॥ ये पांच मूर्तिमान देव जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर को प्राप्ति होने की सीढ़ियां

हैं। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं वे अतीव पामर नरक गामी हैं। (प्रश्न) माता पिता आदि की सेवा करें और मूर्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं ? (उत्तर) पाषाणादि मूर्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्तिमानों की सेवा करने ही में कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है किसी साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुख दायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में शिर मारना मूढ़ों ने इसीलिये स्वीकार किया है कि जो माता पितादि के सामने नैवेद्य वा भेट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खालेंगे और भेट पूजा लेंगे तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा। इससे पाषाणादि की मूर्ति बना, उसके आगे नैवेद्य धर, घंटा नाद टं टं पूं पूं शंख बजा, कोलाहल कर, अंगूठा दिखला अर्थात् "त्वमंगुष्ठं गृहाण भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि" जैसे कोई किसी को छले वा चिड़ावे कि तू घंटा ले और अंगूठा दिखलावे उसके आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे वैसी ही लीला इन पूजारियों अर्थात् पूजा नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है। मूढ़ों को चटक मटक, चलक झलक, मूर्तियों को बना ठना, आप वेश्या वा भंड़ुआ के तुल्य बन ठन के विचारे निर्बुद्धि अनाथों का माल मारके मौज करते हैं। जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाणप्रियों को पत्थर तोड़ने बनाने और घर रचने आदि कामों में लगा के खाने पीने को देता, निर्वाह कराता। (प्रश्न) जैसे स्त्री आदि की पाषाणादि मूर्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है वैसे वीतराग शान्त की मूर्ति देखने से वैराग्य और शान्ति की प्राप्ति क्यों न होगी ? (उत्तर)नहींहो सकती क्योंकि वह मूर्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचार-शक्ति घट जाती है विवेक के विना न वैराग्य और वैराग्य के विना विज्ञान, विज्ञान के विना शान्ति नहीं होती और जो कुछ होता है सो उनके संग उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है क्योंकि जिसका गुण दोष न जानके उसकी मूर्तिमात्र देखने से प्रीति नहीं होती, प्रीतिहोने का कारण गुणज्ञान है, ऐसे मूर्तिपूजा आदि बुरे कारणों ही से आर्यावर्त में निकम्मे पूजारी भिक्षुक आलसी पुरुषार्थ रहित क्रोड़ों मनुष्य हुये हैं, वे मूढ़ होने से सब संसार में मूढ़ता उन्हींने फैलाई है। झूठ छल भी बहुत सा फैला है। (प्रश्न) देखो काशी में 'औरंगजेब' बादशाह को 'लाटभैरव' आदि ने बड़े २ चमत्कार दिखलाये थे, तब मुसलमान उनको तोड़ने गये और उन्होंने जब उनपर तोप गोला आदि मारे तब बड़े २ भमरे निकल कर सब फौज को व्याकुल कर भगा दिया। (उत्तर)

यह पाषाण का चमत्कार नहीं किन्तु वहां भमरें के छत्ते लग रहे होंगे, उनका स्वभाव ही क्रूर है, जब कोई उनको छेड़े तो वे काटने को दौड़ते हैं और जो दूध की धारा का चमत्कार होता था वह पूजारी जी की लीला थी। (प्रश्न) देखो महादेव म्लेच्छ को दर्शन न देने के लिये कूप में और वेणीमाधव एक ब्राह्मण के घर में जा छिपे, क्या यह भी चमत्कार नहीं है? (उत्तर) भला जिसका कोटपाल काल भैरव, लाटभैरव आदि भूतप्रेत और गरुड़ आदि गण उन्होंने मुसलमानों को लड़के क्यों न हटाये? जब महादेव और विष्णु की पुराणों में कथा है कि अनेक त्रिपुरासुर आदि बड़े भयंकर दुष्टों को भस्म कर दिया तो मुसलमानों को भस्म क्यों न किया? इससे यह सिद्ध होता है कि वे विचारे पाषाण क्या लड़ते लड़ाते? जब मुसलमान मन्दिर और मूर्तियों को तोड़ते फोड़ते हुये काशी के पास आये तब पूजारियों ने उस पाषाण के लिंग को कूप में डाल और वेणीमाधव को ब्राह्मण के घर में छिपा दिया। जब काशी में काल भैरव के डर के मारे यमदूत नहीं जाते और प्रलय समय में भी काशी का नाश होने नहीं देते, तो म्लेच्छों के दूत क्यों न डराये? और अपने राजा के मंदिर का क्यों नाश होने दिया? यह सब पोपमाया है।

(सत्यार्थ० समु० ११ पृष्ठ ३१३ से ३२४ तक)

विवेचन

यहां पर स्वामी जी ने "न तस्य प्रतिमा अस्ति" और "अन्धन्तमः प्रविशन्ति" इन दो वेद मंत्रों से मूर्तिपूजा का खण्डन दिखलाया है। इस विषय में हम ऊपर लिख आये हैं कि "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इस मंत्र में ही मूर्तिपूजा का विधान है और 'अन्धन्तमः प्रविशन्ति' इस मन्त्र का देवता आत्मा है इस कारण इसमें काष्ठ-पत्थर के पूजने का निषेध हो नहीं सकता। मंत्र में तो आत्मा का ही वर्णन रहेगा किंतु स्वा० दयानन्द जी ने देखा कि वेदों के जानने वाले तो बहुत कम हैं, मूर्ख मनुष्य हमारे जाल को समझेंगे नहीं, मूर्तिपूजा का निषेध देखते ही आर्यसमाजी बन जावेंगे-बस इस करामात को आगे रख स्वामीजी ने आर्यसमाजियों की आंख में धूल झोंकी है।

यहां पर स्वामी जी ने "अजएकपात्" और "अकायम्" इन दो मंत्रों का भी इशारा कर ईश्वर को अजन्मा और शरीर रहित सिद्ध किया है। हम यह अवतार प्रकरण में लिख आये हैं कि "अजएकपात्" यह मंत्र ईश्वर को अजन्मा

कहता है किन्तु वह अजन्मा ईश्वर शरीर धारण करता है इस को "प्रजापतिश्च-रति गर्भे" मंत्र कह रहा है। रही बात "अकायम्" की हमने अवतार प्रकरण में यह उत्तम रीति से दिखला दिया कि इसी मंत्र में "परिभूः" "स्वयम्भूः" शब्दों से ईश्वर को साकार बतलाया है। इस से भिन्न जो सैकड़ों मन्त्र ईश्वर को साकार बतला रहे हैं वे भी हमने अवतार प्रकरण में दिखला दिये, उनका जवाब भी आर्यसमाज के पास कुछ नहीं है, उन मन्त्रों को स्वामी जी पबलिक् के सामने नहीं आने देते, चुरा लेते हैं, बस चोरी के अवलम्ब पर ही स्वा० दयानन्द जी ईश्वर को निराकार सिद्ध करते हैं-यह आर्यसमाज के लिये अत्यन्त लज्जा की बात है। कहीं चोरी करने से भी कोई धर्म चल सकता है? क्या चोर लोग संसार की दृष्टि में कुछ इज्जत पा सकते हैं? क्या इन बातों को आर्यस-माजी नहीं समझते? समझते सब हैं किन्तु करें क्या मूर्खतावश स्वामी जी के जाल में फंस गये, अब आफंसे सो:आफंसे। सच्ची बात ग्रहण करने में स्वामी जी तथा आर्यसमाजियों की इज्जत की कौड़ियां नहीं मिलतीं इस कारण कुछ न कुछ हुज्जतबाजी आगे रख, जाल बना, चालाकी का अवलम्बन कर, झूठ बोल धर्म को तिलांजलि दे स्वामी के चलाये नकली ईसाई धर्म को वैदिक ही कहते रहते हैं।

स्वामी जी ने "मानोवधीः" "आचार्यो ब्रह्मचर्येण" "अतिथिर्गृहानागच्छेत्" "अर्चत प्रार्चत" इत्यादि: मन्त्र देकर यह सिद्ध किया है कि माता-पिता-आचार्य-अतिथि और पांचवें स्त्री के लिये पति और पुरुष के लिये पत्नी पूज्या है, इन्हीं को पूजना, मूर्ति कभी न पूजना। इन मन्त्रों में माता-पिता-आचार्य-अतिथि और पति वेद ने पूज्य बतलाये हैं। वेद ने मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं किया, मूर्तिपूजा का खण्डन स्वा० दयानन्द जी वेद का धोखा देकर अपनी तरफ से लिख रहे हैं, ऐसी धोखेबाजी न करें तो आर्यसमाजियों से महर्षि की पदवी कैसे पावें? वेद मूर्ति और माता पिता दोनों का पूजन बतलाते हैं, मूर्ति का पूजन किस अवलम्ब पर छोड़ा जावे इसका कोई भी कारण न बतला कर स्वामी जी मूर्ति-पूजा का छोड़ देना लिखते हैं, इस लिखने का खास प्रयोजन यह है कि आर्य-समाजी धीरे धीरे वेदों के कट्टर दुश्मन बन जावें।

यहां पर स्वामी जी ने यह मजा किया कि पति के लिये उसकी स्त्री को पूज्या लिख दिया। कहो स्वामी जी कितने धर्मात्मा हैं जो कल्याण देने वाले

ईश्वर के पूजन को तो धता बुलाते हैं और अपने प्यारे आर्यसमाजी शिष्यों को स्त्री के पूजने का उपदेश लिखते हैं। यह बात हमको आज ही मालूम हुई कि आर्यसमाजी चारपाई से उठते ही अपनी पत्नी के पैरों में शिर रखते हैं, उसको अर्घ्य-पाद्य देते हैं, फिर साबुन लगा कर स्नान करवाते हैं, चन्दन लगा आंख में अंजन आंजते हैं, कपड़े पहिनाते हैं बाद में भोग रखते हैं पश्चात् धूप-दीप देकर पुष्पांजलि और उसके बाद परिक्रमा कर आरती गाते हैं कि "जय औरत माता माई जय औरत माता। वेद की आरति गाऊं तुम मुक्ती दाता"।

धन्य है स्वामी जी महाराज तुमको, तुमने इन आर्यसमाजियों को ऐसा ठिकाने बिठलाया कि ये भी तुमको जन्म भर भूल नहीं सकते। औरत के पुजारी आर्यसमाजियो! दयानन्दोक्त पत्नीपूजन तुम क्यों नहीं करते? याद रक्खो यह तुम्हारे लिये स्वामी जी ने धर्म बतलाया है, धर्म को जो तुम छोड़ दोगे तो नरक को जाओगे? कृपा कर नरक से बचो और दोनों वक्त अपनी स्त्री का पूजन करो इसी में तुम्हारा कल्याण होगा? आर्यसमाजी भी इतने भक्त हैं कि स्त्री की कौन कहे यदि स्वामी जी गधे का पूजन लिख जाते तो आर्यसमाजी उसको वैदिक ही बतलाते? कुछ भी हो मूर्तिपूजन तो स्वामी दयानन्द जी का भी उड़ाया न उड़ा, ईश्वर का पूजन नहीं तो औरत का ही पूजन सही, पूजन तो रहा? कई एक मनुष्य यह कहेंगे कि स्त्री के पूजन में लाभ है क्योंकि वह चेतन है खाकर प्रसन्न होगी और वरदान देगी, उसके वरदान से मुक्ति मिलेगी, जड़ मूर्तियों के पूजने में क्या रक्खा है? इसका उत्तर यह है कि औरत के जिस शरीर का पूजन किया जाता है वह भी जड़ है, जड़ का पूजन तो बना ही रहा। कई एक आर्यसमाजी कह देंगे कि स्त्री के जड़ शरीर में चेतन आत्मा है, यदि ऐसा है तब तो मूर्ति का पूजन भी ठीक है क्योंकि जड़ मूर्ति में ईश्वर व्यापक है और उस व्यापक ईश्वर को सभी ने चेतन माना है। पूजन के स्थान दोनों ही जड़ हैं, जड़ शरीर के ज़रिये से जैसे औरत का व्यापक आत्मा प्रसन्न होकर आर्य-समाजियों को मोक्ष देता है वैसे ही जड़ मूर्ति के ज़रिये से उसमें व्यापक ईश्वर प्रसन्न होकर वैदिक लोगों को मोक्ष देता है।

स्वामी जी ने "यद्वाचानभ्युदितम्" इत्यादि केनोपनिषद् की पांच श्रुतियां देकर ब्रह्म को इन्द्रिय ज्ञान में नहीं आने वाला बतलाया है और इसी को लेकर

र्तिपूजा का खण्डन कर दिया है इसमें हमारी कुछ शंकायें हैं उनको हम नीचे लिखते हैं।

(१) स्वा० दयानन्द जी केवल चारसंहिताओं को स्वतः प्रमाण मानते हैं उपनिषदों को नहीं ? उपनिषद् वेदानुकूल होने पर प्रमाण हैं। वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं जो ईश्वर को निराकार कहे ऐसी दशा में केन की श्रुतियों का वेदानुकूलत्व क्या लट्ठ के जोर से सिद्ध होगा ? यह स्वामी दयानन्द जी की चालबाजी है कि जिस वेद में सैकड़ों मंत्र अवतारों के रहते हुये निराकार प्रतिपादक केन की श्रुतियों को वेदानुकूल मानलें।

(२) इन्हीं श्रुतियों के आगे मूल में यक्षावतार का वर्णन आता है। यक्षावतार के वर्णन करने वाली श्रुतियों को वेवकूफ ईश्वर की वेवकूफी समझ छोड़ दिया और निराकार प्रतिपादक श्रुतियों को ले लिया, स्वामी जी की इस चालबाजी पर आर्यसमाजियों को लज्जा आनी चाहिये।

(३) जब वेद ब्रह्म को रूप और अरूप कह रहा है तब उसके रूप प्रतिपादक मंत्र पबलिक् के आगे नहीं आने पाते, स्वामी दयानन्द जी का यह धोखा देना क्या पाप नहीं है ?

(४) यदि ब्रह्म हमेशा न आंख से दीखता है, न कान से सुनाई देता है न वाणी उसको कह सकती है और न वह किसी के मन में आता है तो फिर ऐसे ब्रह्म का ध्यान पूजन कोई कैसे कर सकेगा ? निराकार का ध्यान आज तक कभी हुआ नहीं और आगे को कभी हो नहीं सकता फिर स्वा० दयानंद जी निराकार का ध्यान पूजन लिखते कैसे हैं।

ध्यान विधायक सर्वोत्तम ग्रन्थ पातञ्जलियोगदर्शन है उसमें लिखा है कि—

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥३९॥

योग० पा० १

अत्यन्त प्रिय पदार्थ के ध्यान से मन स्थिर होता है।

इसके आगे योगदर्शन रूप रहितपदार्थ के ध्यान का निषेध करता हुआ लिखता है कि—

परमाणुपरममहत्वान्तोऽस्यवशीकारः॥४०॥

योग० पा० १

परम अणु से लेकर और परम महत् तक इस चित्त का वशीकार होता है। भाव यह है कि ध्यान साकार का ही होता है निराकार का नहीं? जब हम ईश्वर को सर्वथा निराकार मानेंगे तब तो ध्यान ही न होगा, फिर ध्यान करना कैसा?

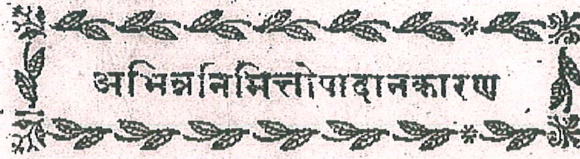
यहां पर निर्णय यह है कि "उभयंवा" इस श्रुति में जो बतलाया गया है कि ईश्वर एक है और उस के रूप दो हैं एक रूप आकार वाला है जिस का पूजन होता है और एक रूप आकार रहित है जहां मन वाणी काम नहीं देते वह मन वाणी से बाहर है, उस ब्रह्म का वर्णन केनोपनिषद् की श्रुतियों में है, उसको लेकर मूर्तिपूजा का निषेध करना इन विचारे मूर्ख आर्यसमाजियों की आंख में धूल झोंकना है?

क्या ऐसी २ चालबाजियों से आर्यसमाज वैदिक धर्म के सांचे में ढलेगा? वेद ने ईश्वर का पूजन बतलाया है, पूजन बतलाने वाला "अर्चत प्रार्चत" यह मंत्र है। यह ईश्वर के पूजन में था, स्वामी जी ने एक चालबाजी खेली, इस मंत्र को ईश्वर के पूजन से हटाकर इसी मूर्ति पूजा प्रकरण में स्त्री के पूजन में लगा दिया किन्तु इस मन्त्र में 'पुत्रका' शब्द था, जिसका अर्थ यह होता था ईश्वर कह रहा है कि मेरे प्यारे बेटो! मेरा पूजन करो। अब वह अर्थ तो उड़ ही गया, अब आर्यसमाजियों की स्त्री पति से कहेगी कि मेरे प्यारे बेटे! मेरा पूजन कर। कुछ भी हो चाहे स्त्री को अम्मा बनाना पड़े किंतु आर्यसमाजियों की दृष्टि में दयानन्द के जाल ही वैदिक धर्म रहेंगे?

स्वामी जी कुछ हुज्जतबाजी भी लिखते हैं, कहते हैं कि जो फूल संसार को सुगंधित करते हैं वे मूर्तिपूजा के जल में सड़ कर बदबू देने लगते हैं इस कारण मूर्तिपूजा छोड़ दो, यह रूल आर्यसमाज को मान्य है तो आर्यसमाजियों को खाना पीना सब छोड़ देना चाहिये क्योंकि घृत, दुग्ध, फल, मिठाई, अन्न जो पदार्थ सुगंधित और सुहावने हैं खाने से उन सबका बदबूदार पाखाना बन जाता है।

आर्यसमाजियो! तुम सच कहो मूर्तिपूजा के खण्डन में स्वामी जी ने कौन विद्वत्ता की बात कही, जो कुछ भी लिखा है वह बच्चों के बहकाने को छोड़ कर और कुछ भी सार नहीं रखता। यदि तुम बुद्धिमान हो, विचारशील हो तो दया-

...न की चालबाजी में फंस कर वेद को तिलांजलि मत दो किन्तु वेद पढ़ो, वेद ...भाव को जानो और वेद की रक्षा करो।



वेद

वेद ने सृष्टिकर्ता ईश्वर को माना है तथा वेद ने सृष्टि बनने का मेटर भी ...स को ही माना है। जैसे मिट्टी से घट, लोहे से कुठार, सूत से वस्त्र और ...वर्ण से कटक कुण्डल बनते हैं इसी प्रकार यह समस्त संसार ब्रह्म से ...ना है इसके ऊपर प्रलय काल की दशा को वर्णन करता हुआ वेद लिखता है कि—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म-
न्नम्भः किमासीद्गहनं गंभीरम् ॥१
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न राज्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास ॥२

ऋ० अ० ८ मं० १०। सू० १२६

(तदानीं) महाप्रलयकाल में (असत्) अपरा माया (न) नहीं थी (सत) ...व (नो) नहीं (आसीत्) था (रजः) रजोगुण (न) नहीं (आसीत्) था ...(यत्) जो (व्योम) आकाश तमोगुण (अपरः) सत्वगुण (नो) नहीं था (कुहकस्य) इन्द्रजालरूप (शर्मन्) ब्रह्माण्ड के चारों ओर जो (आवरीवः) ...त्व समूह का आवरण होता है (तत्किं) "नकिमप्यासीत्" वह भी नहीं था (गहनं गंभीरम्) गहन गंभीर (अम्भः) जल (किमासीत्) क्या था अर्थात् ...हीं था ॥१॥ (तर्हि) तिस समय (मृत्युः) मौत (न) नहीं (आसीत्) थी (अमृतम्) जीवन (न) नहीं (आसीत्) था (राज्याः) रात (अह्नः) दिनका

(प्रकेतः) ज्ञान (न आसीत्) नहीं था (अवातं) प्राणरहित (स्वधया) अपनी पराशक्ति से (एकम्) अभिन्न एक (तत्) ब्रह्म ही (आसीत्) था (तस्मात्ह) उस सर्वशक्तिमान् से (अन्यत्) अन्य (किंच) और कुछ भी (न) नहीं (आस) था।

इन दो मन्त्रों से प्रकृति-जीव का अभाव होकर केवल ईश्वरसत्ता का प्रलय में होना सिद्ध है। इसके ऊपर से ही वेद ने ईश्वर को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" माना है। सृष्ट्युत्पत्ति बतलाता हुआ शतपथ लिखता है कि—

आत्मैवेदमग्रऽआसीत्। पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनो ऽपश्यत् सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्ततोऽहंनामाभवत् ॥

शत० १४। ४। २। १

इस उत्पत्ति से पूर्व आत्मा ही पुरुषाकार हुआ उसने अपने से भिन्न किसी को न देखा अर्थात् द्वितीय पदार्थ का सर्वथा अभाव था तब आत्मा ने कहा कि "अहमस्मि" केवल मैं हूँ इसीसे उसका नाम "अहंनामा" हुआ। इसी से समस्त संसार जड़ चेतन की उत्पत्ति हुई, इस उत्पत्ति को बतलाता हुआ वेद कहता है।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः।
आकाशद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः।
अद्भ्यः पृथिवी।

तैत्ति० १ ब्रह्मा० वल्ली अनु० १

उस परमात्मा से सब से प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ, फिर वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, फिर जल, जल के पश्चात् पृथिवी।

वेद इस प्रकरण को बार बार दोहराता है, समस्त संसार की उत्पत्ति ब्रह्म से बतलाता हुआ काल बिजली आदि की उत्पत्ति भी ब्रह्म से ही बतलाता है देखिये—

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ॥

यजु० ३२। ३।

उस परमात्मा पुरुष से समस्त निमेषादि कालविभाग और बिजली उत्पन्न हुई उसको ऊपर या मध्य भाग अथवा दिशाओं में कोई भी पकड़ नहीं सकता।

इस मंत्र में काल विभाग और बिजली की उत्पत्ति ब्रह्म से बतलाई है अर्थात् ब्रह्म ही बिजली और कालरूप बना। इसी भाव को लेकर 'सर्वे निमेषा' इस मंत्र के पूर्व का मंत्र कह उठा कि

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

यजु० ३२। १

वही अग्नि, वही आदित्य, वही वायु, वही चन्द्रमा, वही पराक्रम, वही ब्रह्म, वही जल और वही प्रजापति है।

इसी विषय को स्पष्ट करता हुआ पुरुष सूक्त लिखता है कि—

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥

यजु० ३१। २

यह जो वर्तमान समस्त जगत् है और भूतकाल में जो जगत् हुआ था तथा भविष्य काल में जो जगत् होगा यह सब पुरुष है। जिससे वह कारणावस्था को छोड़ कर कार्यसंसार अवस्था में आवेगा तो उसको विकार दोष लग जावेगा। इसके ऊपर वेद कहता है कि नहीं लगता क्योंकि वह अमृत मोक्ष का भी स्वामी है।

इसी को ऋग्वेद कहता है कि—

एकः सुपर्णः ससमुद्रमाविवेश
स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे।
तं पाकेन मनसा पश्यमन्तित॰
स्तं मातारेह्लि स उरेह्लि मातरम्॥

ऋ० १०। ११४। ४

एकपक्षी समुद्र में प्रवेश कर गया वही सर्वलोकों को प्रकाशित करता है उस देव को परिपक्व मन से मैं अपने हृदय कमल में देखता हूँ। जैसे अध्ययन काल में विद्या प्राण को अपने में लीन करती है और जैसे स्वप्न में वह प्राणवाक्

को अपने में लीन करता है वैसे ही मेरी ब्रह्म में लीनता है ।

इसी विषय पर शतपथ लिखता है कि—

स वै नैव रेमे । तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् ।

वह ईश्वर रमण न कर सका क्योंकि अकेला कोई भी रमण नहीं कर सकता इसकारण उसने इच्छा की कि हम दो हो जावें ।

इसी सिद्धान्त को प्रतिपादन करता हुआ यजुर्वेद लिखता है कि—

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

यजु० ४० । ७

अवस्था विशेष में योगी यह समस्त प्रपंच आत्मा ही है इसको जान कर मोह और शोक को प्राप्त नहीं होता क्योंकि समस्त संसार को एकत्व ब्रह्म की दृष्टि से देख रहा है ।

ब्रह्म ही समस्त प्रपंच का उपादान कारण है इसको वेदों की सैकड़ों श्रुतियां कह रही हैं, यह इतना अकाट्य विषय है कि किसी का हिलाया नहीं हिलता ।

आर्यसमाज

इस विषय में आर्यसमाज का सिद्धान्त यह है ।

(प्रश्न) यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है वा अन्य से ? (उत्तर) निमित्तकारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है । (प्रश्न) क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की ? (उत्तर) नहीं, वह अनादि है । (प्रश्न) आदि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं ? (उत्तर) ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं । (प्रश्न) इसमें क्या प्रमाण है ? (उत्तर)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥१॥

ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० २०

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥२॥

यजु० अ० ४० मं० ८

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और (समानम्) वैसे ही (वृक्षम्) अनादि मूल व कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न भिन्न होजाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं ।

इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पाप पुण्यरूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है । जीव से ईश्वर ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं ॥१॥ (शाश्वती अर्थात् अनादि सनातन जीवरूप प्रजा के लिये वेदद्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है ॥२॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥

श्वेताश्वतरोपनिषदि अ० ४ मं०५

यह उपनिषद् का वचन है । प्रकृति जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं । इनका कारण कोई नहीं । इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और उसमें परमात्मा न फंसता और न उसका भोग करता है । ईश्वर और जीव का लक्षण ईश्वर विषय में कह आये । अब प्रकृति का लक्षण लिखते हैं ।

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्महतोऽहङ्कारोऽहंकारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुषइति पञ्चविंशतिर्गणः ॥

सांख्य सू० अ० १ सू० ६१

(सत्व) शुद्ध (रज) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिल कर जो संघात है उनका नाम प्रकृति है। उससे महत्तत्व बुद्धि, उससे अहंकार, उससे पांच तन्मात्रा सूक्ष्मभूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत, ये चौबीस और पचीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है। इनमें से प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्व अहंकार तथा पांच सूक्ष्मभूत प्रकृति का कार्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूल भूतों का कारण है। पुरुष न किसी की प्रकृति उपादान कारण और न किसी का कार्य है। (प्रश्न)

सदेव सोम्येदमग्र आसीत् । १

छान्दो० प्र०६ खं० २

असद्वा इदमग्र आसीत् ।

तैत्तिरीयोपनि० ब्रह्मानन्द व० अनु० ७

आत्मैवेदमग्र आसीत्।

बृह० अ० १ ब्रा०४ मं० १

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् ।

शत० ११।१।११।१

ये उपनिषदों के वचन हैं। हे श्वेतकेतो! यह जगत् सृष्टि के पूर्व सत ।१। असत ।२। आत्मा ।३। और ब्रह्मस्वरूप था ।४। पश्चात्

तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति ।

सोऽकामयत बहुःस्यां प्रजायेयेति ॥

तैत्तरीयोपनि०ब्रह्मानन्दवल्ली अनु० ६

वही परमात्मा अपनी इच्छा से बहुरूप होगया है।

यह भी उपनिषद् का वचन है। जो यह जगत है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है उसमें दूसरे नाना प्रकार के पदार्थ कुछ भी नहीं किंतु सब ब्रह्म रूप हैं। (उत्तर) क्यों इन वचनों का अनर्थ करते हो? क्योंकि उन्हीं उपनिषदों में

[एव मेव खलु] सोमान्नेन शुङ्गेनापोमूलमन्विच्छद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोमशुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ

सन्मूलाः सोम्यमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ।

छान्दोग्य उपनि० प० ६ । खं० ८ । मं० ४

हे श्वेतकेतो ! अन्नरूप पृथ्वी कार्य से जल रूप मूल कारण को तू जान कार्य रूप जल से तेजोरूप कार्य से सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उस को जान। यही सत्य स्वरूप प्रकृति सब जगत का मूल घर और स्थिति का स्थान है। यह सब जगत सृष्टि के पूर्व असत के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था, अभाव न था। और जो (सर्वं खलु) यह वचन ऐसा है जैसा कि 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा। भानमती ने कुंडवा जोड़ा' ऐसी लीला का है क्योंकि

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ।

छान्दोग्य० प्र० ३ खं० १४ मं० १

और

नेह नानास्ति किंचन ।

कठोपनि० अ० २ वल्ली० ४ मं०११

जैसे शरीर के अंग जब तक शरीर के साथ रहते हैं तब तक काम के और अलग होने से निकम्मे होजाते हैं,वैसे ही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरण से अलग करने वा किसी अन्य के साथ जोड़ने से अनर्थक होजाते हैं। सुनो इसका अर्थ यह है। हे जीव ! तू ब्रह्म की उपासना कर,जिस ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति,स्थिति और जीवन होता है,जिस के बनाने और धारण से यह सब जगत् विद्यमान हुआ है वा ब्रह्म से सहचरित है उसको छोड़ कर दूसरे की उपासना न करनी। इस चेतन मात्र अखण्डैक रस ब्रह्म रूप में [illegible] वस्तुओं का मेल नहीं है किंतु ये सब पृथक२ स्वरूप में परमेश्वर के आधार [illegible] स्थित हैं। (प्रश्न) जगत् के कारण कितने होते हैं ?(उत्तर)तीन,एक निमित्त दूसरा उपादान,तीसरा साधारण। निमित्तकारण उसको कहते हैं कि जिस के बनाने से कुछ बने न बनाने से न बने,आप स्वयं बने,नहीं दूसरे को प्रकारान्तर से बना देवे। दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिस के विना कुछ न बने वही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उस को कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो,निमित्तकारण दो प्रकार के हैं। एक सब सृष्टि को कारण से बनाने धारने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था

रखने वाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा। दूसरा——परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेक विध कार्यान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव। उपादान कारण प्रकृति परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। वह जड़ होने से आप से आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है। कहीं २ जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है। जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथ्वी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार होजाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं परन्तु इनका नियम पूर्वक बनना वा बिगड़ना परमेश्वर और जीव के आधीन है। जब कोई वस्तु बनाई जाती है तब जिन २ साधनों से अर्थात् ज्ञान,दर्शन,बल,हाथ और नाना प्रकार के साधन और दिशा काल और आकाश साधारण कारण। जैसे घड़े का बनाने वाला कुम्हार निमित्त,मट्टी उपादान और दण्ड चक्र आदि सामान्य निमित्त; दिशा, काल,आकाश,प्रकाश,आंख,हाथ, ज्ञान,क्रिया आदि निमित्तसाधारण और निमित्त कारण भी होते हैं। इन तीन कारणों के विना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती-और न बिगड़ सकती है। (प्रश्न) नवीन वेदान्ति लोग केवल परमेश्वर ही को जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण मानते हैं।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च ॥

मुण्डको० मु० १ खं० १ मं० ७

यह उपनिषद् का बचन है। जैसे मकरी बाहर से कोई पदार्थ नहीं लेती अपने ही में से तन्तु निकाल जाला बना कर आप ही उस में खेलती है वैसे [illegible] अपने में से जगत् को बना आप जगदाकार बन आप ही क्रीड़ा कर रहा है [illegible] ब्रह्म इच्छा और कामना करता हुआ कि मैं बहुरूप अर्थात् जगदाकार होजाऊं [illegible]कल्प मात्र से सब जगद्रूप बन गया क्योंकि—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा ॥

गौड़पादीय का० श्लोक ३१

यह माण्डूक्योपनिषद् पर कारिका है जो प्रथम न हो अन्त में न रहे वह वर्तमान में भी नहीं है किंतु सृष्टि की आदि में जगत् न था ब्रह्म था। प्रलय के अन्त में संसार न रहेगा और केवल ब्रह्म रहेगा तो वर्तमान में सब जगत् ब्रह्म क्यों नहीं? (उत्तर) जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादान कारण

ब्रह्म होवे तो वह परिणामी, अवस्थांतर युक्त विकारी होजावे और उपादान के गुण, कर्म, स्वभाव, कार्य में भी आते हैं।

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः।

वैशेषिक सू० अ० २ आ० १ सू० २४

उपादान कारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं तो ब्रह्म सच्चिदानन्द स्व जगत्कार्य रूप से असत् जड़ और आनन्द रहित, ब्रह्म अज और जगत् उ हुआ है, ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है, ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्ड रू जो ब्रह्म से पृथिव्यादि कार्य उत्पन्न होवें तो पृथिव्यादि में कार्य के जड़ादि ब्रह्म में भी होवें अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ हैं वैसा ब्रह्म भी जड़ होजाय औ जैसा परमेश्वर चेतन है वैसा पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होना चाहिये। और ज मकरी का दृष्टान्त दिया वह तुम्हारे मत का साधक नहीं किंतु बाधक है क्योंकि वह जड़ रूप शरीरतन्तु का उपादान और परमात्मा की अद्भुत रचना प्रभाव है क्योंकि अन्य जन्तु के शरीर से जीवतन्तु नहीं निकल सकता। वै ही व्यापक ब्रह्म ने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारण से स्थू जगत् को बना कर बाहर स्थूल रूप कर आप उसी में व्यापक होके साक्षीभू आनन्दमय हो रहा है। और जो परमात्मा ने ईक्षण अर्थात् दर्शन विचार औ कामना की कि मैं सब जगत् को बना कर प्रसिद्ध होऊं अर्थात् जब जग उत्पन्न होता है तभी जीवों के विचार ज्ञान, ध्यान, उपदेश, श्रवण में परमेश्व प्रसिद्ध और बहुत स्थूल पदार्थों से यह वर्तमान होता है।

सत्यार्थ० समु० ८ पृ० २०६ से २१४ तक

विवेचन

यहां पर "नासदासीत्" प्रभृति सैकड़ों मन्त्र जो अद्वैत का प्रतिपादन कर थे वे तो छिपा लिये गये और "द्वासुपर्णा" इस एक मन्त्र को लेकर द्वै का प्रतिपादन कर दिया। इसी प्रकार वेदान्त दर्शन को तो छिपा लिया औ सांख्य दिखला दिया।

आजकल भी जब कोई मनुष्य अद्वैत की सिद्धि में दो चार मन्त्र देता तब आर्यसमाजी "द्वासुपर्णा" मन्त्र बोल देते हैं, इसका क्या अर्थ हुआ? इस मानें यही हुये कि तुम्हारे बोले हुये वेदमन्त्रों की हम बात ही नहीं सुनन चाहते या वेद में रहने पर भी हमारी दृष्टि में वे वेद मन्त्र ही नहीं हैं यद्वा ये म

ईश्वर बनाये हैं, ईश्वर हमारी दृष्टि में मूर्ख हैं, हम ईश्वरप्रणीत मन्त्रों को ही नहीं मानते। जिस मन्त्र पर दयानन्द की छाप लगेगी हम सिर्फ उसी को मानें-यही मानें हो सकते हैं ? नहीं तो अपने एक मन्त्र के सहारे से वेद के दश बीस या सौ पचास मन्त्रों को उड़ा देना कैसे बनेगा ?

हमारी समझ में आर्यसमाजी तो द्वैताद्वैत के निर्णय को जानते ही नहीं ; स्वा० दयानन्द जी जिन्होंने एक मन्त्र के पीछे वेद के सैकड़ों मन्त्रों धूल में मिला दिया वे भी द्वैताद्वैत का निर्णय नहीं जानते थे। न्यायशास्त्र ाणुओं को नित्य मानता है और सांख्य प्रकृति-पुरुष इन दो को। इस ाड़े को भी स्वामी दयानन्द जी फैसल न कर सके इसी से हम कहते हैं कि ०० दयानन्द जी दर्शन और वेद दोनों के ज्ञान से शून्य थे।

सांख्य प्रकृति-पुरुष दो को और वेदान्त केवल ब्रह्म को मानता है। ातनधर्म के सम्प्रदाय में भी दो भेद हैं। शंकर अद्वैत और भगवान् ध्व द्वैत मानते हैं। इसी प्रकार वेद "एकः सुपर्णः" इस मन्त्र में अद्वैत ौर "द्वासुपर्णा" इस मन्त्र में द्वैत कह रहा है तो क्या अब हम वेदान्तदर्शन ाद्गुरु शङ्कराचार्य का सिद्धान्त और अद्वैत बतलाने वाले वेदमन्त्र इन ंको मिथ्या कह कर जान बचाते हुये धर्मनिर्णय पर धूल डाल दें क्या इसी ो पाण्डित्य कहते हैं ?

शास्त्रकारों ने इस विषय को निर्णय करने के लिये परमार्थिक सत्ता और ्यवहारिक सत्ता इन दो सत्ताओं का आश्रय लिया है। दोनों सत्ताओं के अव- ्बन से विवेचन का असलीभाव यथार्थरूप से समझ में आजाता है। जो दार्थ जिससे बनता है उसको उपादान कारण और पदार्थ को कार्य कहा जाता । घट मिट्टी से बनता है मिट्टी घट का उपादान कारण है इसी प्रकार कुल्हाड़ी ा लोहा, आभूषणों का सुवर्ण और पट का तन्तु एवं इस समस्त विश्व का ्पादान कारण ब्रह्म है। जिसप्रकार घट मिट्टी से उत्पन्न होकर मिट्टी में ही लय ोता है इसी प्रकार यह समस्त विश्व प्रलय के पश्चात् ब्रह्म से उद्भूत होकर फिर प्रलय होने के अवसर पर ब्रह्म में मिल जाता है। बात यह सत्य है और सी का नाम परमार्थिक सत्ता है।

सांख्य और पूज्य आचार्य माध्व तथा "द्वासुपर्णा" इन सबका कथन यह ै कि इस परमार्थिक सत्ता से हमारा लाभ नहीं होता। कल्पना करो कि किसी मनुष्य को चार पैसे का एक घट मंगवाना है, उसके अन्तःकरण में परमार्थिक

सत्ता भरी है, वह घट को मिट्टी समझे है, घट की पृथक् सत्ता को वह स्वीकार नहीं करता-इसकारण अब वह यह तो कहेगा नहीं कि :तुम चार पैसे का एक घट ले आओ वरन् यह कहेगा कि तुम चार पैसे की मिट्टी ले आओ ? लानेवाला चार पैसे की दश सैर या बीस सैर मिट्टी लाकर डाल देगा, उस मिट्टी से पानी पीने को तो मिलेगा नहीं, डेले उठा उठा कर शिर फोड़ो ? परमार्थिक सत्ता में जब समस्त संसार ब्रह्म है तो फिर उपासना नहीं बनेगी ? हम उपासना करने वाले ही जब ब्रह्म हो गये तब फिर उपासना कैसी और किस की ? संसार का व्यवहार चलाने के लिये हम को मिट्टी से भिन्न घट ,हांडी,नाद, शराव मानने होंगे ? ऐसा न मानें तो परमार्थिक सत्ता सत्य रहने पर भी व्यवहार नहीं चलता तथा उपास्य उपासकभाव नहीं बनता ? संसार का व्यवहार चलाने और जीव को अपवर्ग पद पर पहुँचाने के लिये व्यवहारिक सत्ता का मानना आवश्यकीय है।

अद्वैत पक्ष को मानने वाले जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने भी उपासना के अवसर पर व्यवहारिक सत्ता मानी है। जगद्गुरु जी लिखते हैं कि—

220

सत्यपि भेदापगमे
नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।

हे नाथ ! यद्यपि हम तुममें भेद का अभाव है तो भी मैं आपका सेवक हूँ आप मेरे नहीं।

अब यह सिद्ध हो गया कि परमार्थिक सत्ता यथार्थ, ठीक, जिसमें कभी हेर फेर नहीं होता ऐसे सत्यभाव को आगे रखती है और व्यवहारिक सत्ता संसार के व्यवहार को ठीक चलाने के लिये या चिरकाल से अनेक योनियों में घूमते हुये इस जीव को ब्रह्म बनाने के लिये अवश्य ही अवलम्बनीय है।

वेद ने "नासदासीत्" प्रभृति मन्त्रों में परमार्थिक सत्ता और "द्वासुपर्णा" मन्त्र में व्यवहारिक सत्ता दिखलाई है जिसको दयानन्द जी समझ नहीं सके और अपने मनगढ़न्त विवेचन से वेद के सैकड़ों मन्त्रों को कुरान की आयतों से भी बुरा समझ उनको वेद की डिगरी से बाहर कर गये।



वेद

वेद ने यजुर्वेद के ३१ के अध्याय में सृष्टि कही किन्तु क्रमशः न कही।

234

...क्रम को दिखलाता हुआ शतपथ लिखता है कि—

स वै नैव रेमे, तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत। स ह एतावानास, यथा स्त्रीपुमांसौ परिष्वक्तौ, स इममेवात्मानं द्वेधा पादयत्, ततः पतिश्च पत्नी च अभवताम्। ततो मनुष्या अजायन्त। साह इयमीक्षां चक्रे कथं नुमां आत्मन एव जनयित्वा संभवति, हंत तिरोसानीति। सा गौरभवत् वृषभ इतरः स तामेव समभवत्ततो गावोऽजायन्त। वडवा इतरा अभवदश्व इतरः। गर्दभी इतरा अभवद् गर्दभ इतरः, स तामेव समभवत्तत एकसफा अजायन्त। अजा इतरा अभवत् वस्त इतरः। अविरितरा मेष इतरः। स तामेव समभवत्ततः अजा अवयश्च अजायन्त यदिदं किंच मिथुनं आपिपीलिकाभ्यः तत्सर्वमसृजत। सो वेद, अहं वावसृष्टिरस्मि, अहं हि इदं सर्वं असृक्षीति। ततः सृष्टिरभवत्।

शतपथ १४।४।२।१

उसको अकेले में आनन्द नहीं आया इसीलिये संसार में भी अकेले में आनन्द नहीं आता है। उसने दूसरे को चाहा वह इतना मोटा हुआ जितने दो स्त्री पुरुष मिल कर होते हों, फिर उसने अपने मोटे शरीर के दो विभाग किये, एक भाग पुरुष और दूसरा भाग पत्नी बना उससे मनुष्य पैदा हुये। पत्नी ने देखा कि इसने मुझको अपने शरीर से ही बना कर मुझसे रमण किया इस खेद से वह छिप गई। छिप कर गौ हुई पुरुष ने भी वृषभ बन कर उससे व्यवाय किया उससे गो जाति उत्पन्न हुई। फिर वही पत्नी घोड़ी हुई पुरुष घोड़ा बना, पत्नी फिर गदही बनी पुरुष गदहा बना, फिर दोनों ने आपस में मैथुन किया उससे एक टाप वाले अश्व, गर्दभ उत्पन्न हुये, पत्नी बकरी बनी पुरुष बकरा बना, पत्नी फिर भेड़ बनी पुरुष मेढ़ा बना फिर आपस में उन्होंने रमण किया उससे भेड़ बकरी बनी, इसी प्रकार दोनों चींटी तक बनते गये और संसार बनता गया फिर उस आत्मा ने जाना मैं ही सृष्टि हूँ, मैंने ही इन सबको पैदा किया इसलिये उस आत्मा का नाम सृष्टि हुआ इसलिये सृष्टिस्वरूप ही ईश्वर है, ईश्वर में और सृष्टि में कुछ अन्तर नहीं है।

आर्यसमाज

(प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या ? (उत्तर) अनेक क्योंकि जिन जीवों के कर्म ईश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता क्योंकि "मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त" यह यजुर्वेद (और उसके ब्राह्मण) में लिखा है। इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुये और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मा बाप के सन्तान हैं। (प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्या, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में ? (उत्तर) युवावस्था में क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।

सत्यार्थ० समु० ८ पृ० २२५

विवेचन

यहां पर स्वामी जी जान बूझ कर धोखा देते हैं "मनुष्या ऋषयश्च ये" वेद में यह कोई मन्त्र ही नहीं, स्वामी जी ने ताजा बना कर तैय्यार किया है। "ततो मनुष्या अजायन्त" यह शतपथ की श्रुति का टुकड़ा है इसको यजुर्वेद के नाम से लिखा है, इसका कारण यह है कि स्वामी जी शतपथ को वेद नहीं मानते, पुराण मानते हैं। पुराण का प्रमाण लिखते लज्जा मालूम होती है इसकारण लिख दिया कि यह श्रुति वेद की है। स्वामी जी ने समझ लिया कि कौन वेद ढूंढो-लेगा-इस प्रकार से धोखा देकर बतलाया कि जवान जवान मनुष्य और जवान जवान स्त्रियां तथा जवान जवान घोड़े और घोड़ियां एवं जवान जवान भैंसा और भैंसे प्रभृति सब सृष्टि जवान जवान पैदा हुई। नहीं मालूम ये निराकार के जवान जवान जोड़े किसी के घर से निकल भागे या आसमान से टपके ? इनकी पैदायश कैसे हुई-इन बातों को बतलाने वाला सत्यार्थप्रकाश में कोई लेख नहीं ? शतपथ की समस्त श्रुति को छिपा कर "ततो मनुष्या अजायन्त" केवल इस टुकड़े को लिखना और मनमानी युवा सृष्टि का पैदा होना स्वामी जी ने क्यों लिखा और शतपथ की श्रुति को क्यों चुराया ? इसका कारण यही है कि शतपथ की समस्त श्रुति लिख देने से अद्वैत पक्ष की सिद्धि होकर ईश्वर साकार

होजाता है। अद्वैत पक्ष और ईश्वर की साकारता को उड़ाने के लिये स्वामी जी ने चोरी करना ही उत्तम समझा है।

देवजाति

वेद

वेद में देवताओं का वर्णन इस प्रकार है

त्रया देवा एकादशत्रयस्त्रिᳬशा सुराधसः।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सर्वे देवा देवैरवन्तु मा॥

यजु० अ० २० मं० ११

तीन देवता अथवा एकादश देवता अथवा तेंतीस देवता, अनेक सम्पत्तिवाले बृहस्पति हैं पुरोहित जिन के, सविता देवता की प्रेरणा से समस्त देवताओं के सहित ये देवता हमारी रक्षा करें।

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता
वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता
विश्वदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता॥

यजु० १४। २०

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, वसु देवता, रुद्र देवता, आदित्य देवता, मरुत देवता, विश्वेदेवा देवता, बृहस्पति देवता, इन्द्र देवता, वरुण-देवता।

इस मंत्र में वसु ८, रुद्र ११, आदित्य १२, मरुत ७, विश्वेदेवा १३ ऐसे सब मिला कर ४८ देवता हैं।

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः
प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते
ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु॥

अथर्व का० ७

देवताओं की पत्नियें हमारी रक्षा करने की कामना रखती हुईं हमारे

पास आवें और हम को अन्न प्राप्ति कराने एवं उनका लाभ कराने के लिये आवें। जो देवियें पृथिवी पर रहती हैं और जो जल का कर्म करने वाले अन्तरिक्ष में स्थित हैं वे शोभन अह्वान वाली देवियें हमको सुख देवें।

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरंचन जरसा मरते पतिं
र्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।

अथर्व० कां० २० सू० १२६ मं०११

यज्ञ में आचार्य कहता है कि समस्त नारीगणों में हमने इन्द्राणी इन्द्र की स्त्री को सौभाग्यवती सुना है। इस का पति अन्य स्त्रियों के पति के समान जरा-वस्था में आकर नहीं मरता है अर्थात् इस का पति अमर है और वह सब विश्व से बड़ा है।

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राणी
अग्नायी अश्विनी राट्।
आरोदसी वरुणानी शृणोतु
व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्॥

अथर्व० कां० ७ सू० ४९-मं० २

देवता जिन के पति हैं ऐसी देवपत्नियें हवियों की कामना करें वा रक्षा करें, इन्द्रदेव की पत्नी इन्द्राणी, अग्निदेव की पत्नी अग्नायी, रुद्र की जाया रोदसी वरुण देव की स्त्री वरुणानी, अश्वनीकुमारों की दमकती हुई पत्नी भली प्रकार सुनें और हमारी हवि को पत्नियों के ऋतुकाल में अर्थात् पत्नी से याज में भक्षण करें।

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः
पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत्
त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स
देवांस्तपसा पिपर्ति।

अथर्व० ११।५।२

ब्रह्मचारी जिस समय यज्ञ करने को उद्यत होता है उस समय सूक्ष्म रूप से पितर, गन्धर्व और छः सहस्र तीन सौ तेंतीस देवता अलग अलग उसके पास जाकर उपस्थित होते हैं और वह यज्ञ द्वारा उन सब को तृप्त करता है।

त्रीणि शता त्रीसहस्राण्यग्निं
त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा
आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥

यजु० ३३। ७

तीन हजार तीन सौ उन्तालीस देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुये होता को होतृ कर्म में नियुक्त किया।

इस मंत्र में तीनहजार तीन सौ तीस संख्या तो पृथक है और नौ संख्या आगे है। किसी किसी आचार्य ने तीनहजार तीन सौ तीस में नौ संख्या का योग कर दिया है उसके मत में तो ३३३९ देवता होते हैं किंतु किसी २ आचार्य ने तीन हजार को तीन सौ संख्या से गुणा किया और आगे तीस तथा नौ का योग किया उसके मत में ९०००३९ देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुये होता को होतृ कर्म में नियुक्त किया-अर्थ हुआ। किसी किसी आचार्य का मत है कि ३३ ३० इन चार अंकों को इन्हीं के स्वरूप में नौ अंक कर दो, नौ अंक करने वालों के मत में ३३ ३३ ३३ ३ ३० देवता अग्नि की परिचर्या करते हैं उन्होंने घृत से अग्नि को सींचा और इस अग्नि के लिये कुशा को आच्छादन करते हुये होता को होतृकर्म में नियुक्त किया-यह अर्थ हुआ।

देवता चैतन्य हैं इस विषय की पुष्टि में वेद मन्त्र देकर निरुक्त लिखता है कि—

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या। इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत्। इन्द्रेणैते तृत्सवोवेविषाणाः। इन्द्राय साम गायत। नेन्द्रादृतेपवते धाम किंचन। इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्। इन्द्रे कामा अयंसतेति।

निरुक्त दैवत काण्ड पा० १

इन्द्र द्यौ और पृथ्वी का राज्य करता है। इन्द्र को साम गाने वालों ने बृहत्साम से स्तुति किया है। इन्द्र के साथ जुटे हुये तृत्सु छोड़े हुये जल की भांति नीचे दौड़े। इन्द्र के लिये साम गाओ। इन्द्र के विना सोम किसी धाम प्रातः सवन आदि स्थान को नहीं पवित्र करता है। इन्द्र के वीर कर्मों को कहता हूँ। इन्द्र में हमारी कामनायें बंधी हैं।

इस मंत्र को भगवान् यास्क ने परोक्षकृता स्तुति में लेकर निरुक्त के उदाहरण में रक्खा है।

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि।
कल्याणीर्जाया सुरणं गृहेते॥

निरुक्त दैवत० पा० २

हे इन्द्र अपने दोनों घोड़ों के साथ आ, कल्याण वाली पत्नी तथा और भी सुरमणीय तेरे घर में हैं।

आर्यसमाज।

"त्रयस्त्रिंशत्त्रिशता०" इत्यादि वेदों में प्रमाण हैं इसकी व्याख्या शतपथ में की है कि तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से ये आठ वसु। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन कराने वाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने बारह आदित्य इसलिये हैं कि ये सब की आयु को लेते जाते हैं। विजली का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि परम ऐश्वर्य का हेतु है। यज्ञ को प्रजापति कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि, जल, ओषधी की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्प विद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तेंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से देव कहाते हैं।

सत्यार्थ० समु० ७ पृ० १७८

"विद्वाँसो हि देवाः" यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं।

सत्यार्थ० समु० ४ पृ० ६७

विवेचन

स्वा० दयानन्द जी शतपथ के आधार पर तैंतीस देवता मानते हैं और उन देवताओं को चैतन्य नहीं मानते वरन् जड़ मानते हैं। प्रथम तो शतपथ में देवताओं को जड़ नहीं लिखा-चैतन्य लिखा है, दूसरे स्वा० दयानन्द की दृष्टि में शतपथ पुराण है और वह वेदानुकूल होने पर मान्य है। वेद के बीसियों मंत्र देवताओं को चैतन्य बतलाते हैं, निरुक्त लिखता है कि

अथाकारचिंतनं देवतानाम् । पुरुषविधाः स्युरित्येकं चेतनावद्वद्धि स्तुतयो भवन्ति तथाभिधानानि । अथापि पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्ते । अथापि पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैः । अथापि पौरुषविधिकैः कर्मभिः । अपुरुषविधाः स्युरित्यपरमपि तु यद् दृश्यतेऽपुरुषविधं तद्यथाग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति । यथो एतच्चेतनावद्वद्धि स्तुतयो भवंतीत्यचेतनान्यप्येवं स्तूयंते यथाक्षप्रभृतीन्योषधिपर्यंतानि । यथो एतत्पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयंत इत्यचेतनेष्वप्येतद्भवति । अभिक्रंदन्ति हरितेभिरासभिरिति ग्रावस्तुतिः । यथो एतत्पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैरित्येतदपि तादृशमेव । सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनमिति नदीस्तुतिः । यथो एतत्पौरुषविधिकैः कर्मभिरित्येतदपि तादृशमेव । होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशतेति ग्रावस्तुतिरेव । अपि वोभयविधाः स्युरपि वा पुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युर्यथा यज्ञो यजमानस्यैष चाख्यानसमयः ॥

निरुक्त दैवत कां० पा० २

निरुक्त ने देवताओं का विचार करते हुये देवताओं के दो प्रकार के रूप बतलाये हैं (१) पुरुषाकार (२) जड़। ये दो प्रकार के रूप बतला कर निरुक्त ने इन दोनों की ही पुष्टि की। मनुष्याकार में निरुक्त कहता है कि पुरुषों की भांति हैं, शरीरधारी और चेतन हैं यह एक मत है क्योंकि चेतनावालों की भांति उनकी स्तुतियें हैं तथा उनके बचन सम्भाषण भी चेतनावालों की भांति हैं और वे देवता पुरुषों के सदृश अंगों से स्तुत किये जाते हैं जैसे हे इन्द्र तुम्ह महान् की बड़ी वा

दर्शनीय दोनों भुजायें हैं। हे इन्द्र! इन दोनों अपार द्यावा पृथिवी को भी जिस-लिये तू पकड़े हुये है हे धन वाले यह तेरी एक मुट्ठी ही है। पुरुषों के सदृश द्रव्यों के संयोग से भी देवता पुरुष विध ही सिद्ध होते हैं। जैसे हे इन्द्र! अपने दोनों घोड़ों के साथ आ, कल्याणवाली पत्नी तथा और भी सुरमणीय तेरे घर में हैं। पुरुषविध न होने में स्त्री, घर आदि नहीं बन सकते इसलिये पुरुषविध ही हैं। पुरुषों के कर्मों से भी पुरुषविध सिद्ध होते हैं। तेरी ओर प्रस्थित हुये पुरोडास और सोमरस को हे इन्द्र! खा और पी। हे सब ओर से सुनने वाले कानों वाले इन्द्र! हमारे बुलाने को सुन। यह खाना, पीना, सुनना नहीं बन सकता जब तक देवता मनुष्यों के सदृश अंगों वाले न हों। सो इन प्रमाणों से मन्त्रों के देवताओं का पुरुषविध होना सिद्ध है।

निरुक्तकार मुनि यास्क ने इस विषय में कई एक वेद के मन्त्र दिये हैं उन मन्त्रों से ही देवताओं का पुरुषाकार होना सिद्ध किया है। मन्त्रों के टुकड़े लेकर ही यह निरुक्त बना है। बस सिद्ध होगया कि वेदों में देवता पुरुषाकार और चेतन हैं-यह एक वेद का मत है।

वेद का दूसरा मत है कि देवता जड़ हैं। इस विषय में निरुक्त लिखता है कि अपुरुषविध हैं। यह दूसरा मत है जैसा कि पूर्व में कहा है कि जल और ज्योति के मिलने से वर्षा का कर्म होता है उस विषय में जो युद्ध के वर्णन हैं वे रूपक मात्र हैं किंच देवताओं का जो रूप दीखता है वह अपुरुषविध है जैसे अग्नि,वायु,सूर्य,पृथिवी,चन्द्रमा,ये प्रत्यक्षतः अपुरुषविध हैं इन को पुरुष विध मानने में दृष्टिहानि होती है इसलिये इनको पुरुषविध माना जा ही नहीं सकता। जब ये पुरुष विध नहीं तो इन्हीं की भांति इन्द्रादि परोक्ष देवता भी अपुरुषविध ही हैं। जो यह कहा है कि चेतनावालों की भांति स्तुतियें होती हैं इस लिये पुरुष विध हैं इस का उत्तर यह है कि अचेतन जड़ वा बेसमझ भी इस प्रकार स्तुति किये जाते हैं जैसे अक्ष से लेकर ओषधियों पर्यंत। और जो यह कहा है कि पुरुषों कैसे अंगों से स्तुति किये जाते हैं यह भी अचेतनों में होता है। यह सोमग्राव अपने हरे सोम रस से भीगे मुखों से देवताओं को यज्ञ में आने के लिये पुकारते हैं। पत्थरों के मुख नहीं होते सो जैसे यहां औपचारिक वर्णन है वैसे इन्द्रादि में है और जो यह कहा है कि पुरुष के सदृश द्रव्यों के सम्बन्धों से यह भी औपचारिक ही है। सिंधु ने जगत् के लिये सुख का हेतु घोड़े से युक्त

रथ जोड़ा है। इस स्तुति में यथाऽभिहित अर्थ बन सकना असंभव है क्योंकि बहती हुई नदी की रथ में स्थिति नहीं होती। जैसे असंभव होने से यहां रूपक कल्पना है वैसे अन्यत्र भी रूपक से स्तुतियें जाननी चाहिये। और जो यह कहा है कि पुरुष के सदृश कर्मों से यह भी वैसा ही है। जैसा होता अग्नि से भी पहिले ही खाने योग्य हवि को खाते हो यह भावस्तुति ही है। पत्थरों में मुख्य खाना नहीं बन सकता इसलिये यह भी रूपक है। यास्क ने जड़ और चेतन दोनों को वेद से दिखलाया है। यह नियम अटल है कि जहां पर श्रुति में विरोध होगा वहां दोनों श्रुतियों का कथन सत्य स्वीकार किया जावेगा। यहां पर भी सूर्यादि ग्रहमण्डल जड़ और इन के अधिष्ठातृ देव चेतन हैं फिर स्वामी दयानन्द जी का देवताओं को जड़ लिखना जान बूझ कर संसार को अन्धा बनाना है।

"ब्रह्मचारिणम्"इस मंत्र में छः सहस्र तीनसौ तैंतीस और"त्रीणि शता" इस मंत्र में ३३३३३३३३० देवता वेद ने बतलाये, स्वा० दयानन्द जी इन दोनों मंत्रों को गपोड़ा मानते हुये देवताओं की संख्या केवल तैंतीस लिखते हैं,आर्य-समाजियों को स्वामीजी की इस नास्तिकता और चालबाजी पर ध्यान देना चाहिये।

स्वामीजी मनुष्यों से भिन्न देवजाति नहीं मानते। मनुष्यों में जो लिख पढ़ गये उन्हीं को आप देवता मानते हैं और वह भी इन्साफ के बल पर नहीं वरन् चोरी के बल पर। शतपथ लिखता है कि—

द्विविधा देवा देवदेवा मनुष्य देवाश्च
विद्वाꣳसो हि देवः।

दो प्रकार के देवता हैं एक देवयोनि के देवता,दूसरे मनुष्यों में देव। देवयोनि के सभी देवता जन्म से विद्वान् होते हैं-यह शतपथ का कथन है इस में से "विद्वाꣳसो हि देवाः"श्रुति के इस छोटे से टुकड़े को चुरा कर विद्वानों को देवता लिखते हैं। इस चोरी का प्रयोजन केवल इतना था कि आर्यसमाजी हम को ही देवता मानने लगें।

इसी प्रकार दैत्य,गन्धर्व और अप्सरा प्रभृति देवयोनियों के वेद ने जाति भेद माने हैं स्वा०दयानन्द जी की दृष्टि में ये सब मनुष्य ही हैं।

वेदोत्पत्ति।

वेद

वेदों की उत्पत्ति वैदिक साहित्य में ब्रह्म से मानी है। इस विषय में वेद का सिद्धांत यह है कि उस निराकार ब्रह्म ने ब्रह्मा शरीर धारण किया। ब्रह्मा ने अपने मुख से ऋषियों को वेदों का उपदेश दिया।

स यथार्द्रैन्धनाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमाविनिश्चरन्त्येवंवारेऽस्य-महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्यनु व्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि।

शत० १४ प्र० ब्रा० ४ कं० १०

जैसे अग्नि में गीली लकड़ी लगाने से धूम् उठता है और वह धूम्र चारों दिशाओं में फैलता है इसी प्रकार सृष्टि के आरंभ में ईश्वरीय ज्ञान जो कि ईश्वर का श्वास भूत है वह ऋग्वेद,यजुर्वेद,सामवेद,अथर्ववेद,इतिहास,पुराण,उपनिषद्, श्लोक,सूत्र,और व्याख्यान रूप होकर चारों तरफ फैला।

इस के ऊपर यजुर्वेद लिखता है कि

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

यजु० ३१।७

जिस यज्ञ भगवान् का सब से प्रथम उत्पन्न होना "तं यज्ञम्" इस मंत्र में लिखा है और इसी मन्त्र में जिस यज्ञ भगवान् का देव,साध्य, ऋषियों के द्वारा पूजन किया गया है उसी ईश्वर से ऋग्वेद,सामवेद तथा गायत्र्यादि छन्द और यजुर्वेद उत्पन्न हुये।

अथर्व कहता है कि

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवादिविश्रिताः॥

अथर्व० ११।७।१।२४

सब के अन्त (प्रलय काल) में शेष रहने वाले परमात्मा से ऋक्, साम अथर्व और पुराण यजुर्वेद के साथ उत्पन्न हुये ।

वेद लिखता है कि प्रथम ब्रह्म ने ब्रह्मावतार धारण किया । इस का मंत्र यह है ।

ब्रह्म ज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि
ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे
तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥

अथर्व० १९ । २३ । ३०

ब्रह्म ने बड़े बल धारण किये हैं, ब्रह्म ने ही सृष्टि के आरम्भ में बड़े द्युलोक को विस्तार किया है, सब प्राणियों में पहिले वही ब्रह्मा रूप से प्रकट हुआ है, उस ब्रह्म से स्पर्धा करने को कौन समर्थ है ।

इस ब्रह्मावतार यज्ञ भगवान् ने ऋषियों को वेदों का उपदेश किया । इस उपदेश को बतलानेवाली श्रुति यह है ।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तथं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

श्वेताश्व० अ० ६ । १८

जिस परमात्मा ने (पूर्व) अर्थात् सृष्टि की आदि में ब्रह्मा जी को उत्पन्न किया और जिस परमात्मा ने ब्रह्मा जी ही के लिये वेदों को दिया उस ही प्रकाश स्वरूप आत्मज्ञान के प्रकाश करनेवाले परमात्मा की मैं मुमुक्षु शरण होता हूँ ।

यहां पर परमात्मा के दो रूप माने हैं एक ब्रह्म निराकार और एक ब्रह्मावतार । इस कारण यह कहा गया कि उस निराकार ब्रह्म ही की कृपा से ब्रह्मा के अन्तःकरण में वेद आये । यहां पर भेदावलम्ब है । दूसरी श्रुति लिखती है कि—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽ
थर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरसे ब्रह्मविद्यां
स भरद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह
भरद्वाजोंगिरसे परावराम् ॥

मुण्डकोपनिषद्

विश्व के कर्ता, भुवनों के रक्षक ब्रह्मा जी सब देवताओं से पहिले हुये। ब्रह्मा जी ने वह वेदविद्या जिसके सब विद्या आश्रय हैं अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा ऋषि को पढ़ाई, अथर्वा ने वह ब्रह्मविद्या अंगिरा ऋषि को पढ़ाई, अंगिरा ऋषि ने भरद्वाजगोत्री सत्यवाह को पढ़ाई, उसने वह परावर विद्या अंगिरा को पढ़ाई।

आर्यसमाज

(प्रश्न) परमेश्वर को आप निराकार मानते हो वा साकार? (उत्तर) निराकार मानते हैं। (प्रश्न) जब निराकार है तो वेद विद्या का उपदेश बिना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सका होगा? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये। (उत्तर) परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेदविद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है क्योंकि मुख जिह्वा से वर्णोच्चारण अपने से भिन्न के बोध होने के लिये किया जाता है, कुछ अपने लिये नहीं। क्योंकि मुख जिह्वा के व्यापार करे विना ही मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को अंगुलियों से मूंद के देखो, सुनो कि बिना मुख जिह्वा ताल्वादि स्थानों के कैसे २ शब्द हो रहे हैं वैसे जीवों को अन्तर्यामीरूप से उपदेश किया है किन्तु केवल दूसरों को समझाने के लिये उच्चारण करने की आवश्यकता है। जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है तो अपनी अखिल वेदविद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में प्रकाशित

कर देता है फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरों को सुनाता है इसलिये ईश्वर में यह दोष नहीं आसकता। (प्रश्न) किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया ? (उत्तर)

अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ।

शत० ११।४।२।३

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक २ वेद का प्रकाश किया (प्रश्न)

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।

श्वेताश्व० अ० ६ मं० १८

यह उपनिषद् का वचन है। इस वचन से ब्रह्मा जी के हृदय में वेदों का उपदेश किया है। फिर अग्न्यादि ऋषियों के आत्मा में क्यों कहा ? (उत्तर) ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया। देखो मनु ने क्या लिखा है।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥

मनु० १।२३

जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों महर्षियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि वायु, आदित्य और अंगिरा से ऋग्यजु साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।

सत्यार्थ० समु० ७ पृ० २०३

विवेचन

मनुष्य को एक झूठ को सत्य करने के लिये कई एक झूठ बोलने पड़ते हैं एक जाल को जब कोई झूठा बतलाने लगता है तब उस जाल की पुष्टि में कई एक जाल बनाने पड़ते हैं। वही हाल यहां पर है, स्वामी जी ने ईश्वर को निराकार बतला दिया, अब वेद कौन बनावे झगड़ू धोबी ? वेदों के प्रादुर्भाव होने में पड़ गया झगड़ा तब स्वामी जी लिखते हैं कि ईश्वर का ज्ञान अग्नि, वायु,

रवि इन ऋषियों के अन्तःकरण में आया तब इन्होंने अपने मुंह से जो कहा वही वेद है। चांखी रही, सम्भव है ऋषियों ने अपने ही तरफ से कुछ कहा हो, उनके अन्तःकरण में ईश्वरीय ज्ञान आया इसका क्या सबूत ? कई एक मनुष्य यह कहते हैं कि मनु और शतपथ इसके साक्षी हैं, यह कथन बिल्कुल ही तोषदायक नहीं क्योंकि मनुस्मृति और शतपथ ब्राह्मण दयानन्द की दृष्टि में बहुत पश्चात् बने, इस कारण यह नहीं माना जा सकता कि वेदों के प्रादुर्भूत काल में वह ज्ञान ईश्वरीय समझ लिया गया हो क्योंकि उस समय कोई ग्रन्थ इसकी साक्षी देने वाला नहीं था।

(२) "ब्रह्म ज्येष्ठा" इस मन्त्र में जो वेद ने ब्रह्मा का अवतार बतलाया। "यो ब्रह्माणम्" इस श्रुति में ब्रह्मा के अन्तःकरण में वेदों का आगमन बतलाया। इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद् ने ब्रह्मा का अवतार और ब्रह्मा के जरिये से संसार में जो वेदों का आगमन बतलाया, इन सब श्रुतियों को तो स्वा० दयानन्द जी चाट गये, केवल मनु और शतपथ से ऋषियों द्वारा वेदागमन मानते हैं। मजा यह है कि स्वामी जी की दृष्टि में मनुस्मृति और शतपथ ब्राह्मण जिसको स्वा० दयानन्द जी ने पुराण माना है, ये दोनों ही ग्रन्थ स्वतः प्रमाण नहीं हैं, वेदानुकूल होने पर प्रमाण हैं किन्तु "अग्निवायुरविभ्यः" इस मनु के प्रमाण और "अग्नेर्ऋग्वेदः" इस शतपथ के प्रमाण की वेदानुकूलता पाई नहीं जाती फिर स्वा० दयानन्द जी ने इन दो प्रमाणों को स्वतः प्रमाण कैसे माना ? इस प्रश्न पर आर्यसमाज का दिवाला निकल जाता है।

(३) आप एक और धोखा देते हैं कि इन ऋषियों ने ब्रह्मा को वेद पढ़ाया स्वामी जी ! तुम्हारे इस धोखे को मूर्ख आर्यसमाजी ही मानेंगे, हम नहीं मान सकते क्योंकि हम जानते हैं कि "ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव" ब्रह्मा सब देवताओं से पहिले प्रकट हुआ। हम मनु के प्रथमाध्यायानुकूल यह भी जानते हैं कि आदि में अयोनिज ऋषियों की उत्पत्ति ब्रह्मा से ही हुई है, फिर वे चार ऋषि आये कहां से ? हम यह भी जानते हैं कि इन ऋषियों के द्वारा ब्रह्मा ने वेद पढ़ा इसका लेख वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास किसी में भी नहीं है यह तो आर्यसमाजियों को बेवकूफ बनाने के लिये ताजा गपोड़ा स्वामी जी के दिमाग शरीफ से निकला है, आर्यसमाजियों को लज्जा आनी चाहिये जो दयानन्द के गपोड़ों को वेद मान बैठे।

(४) मनु और शतपथ इन दोनों में अग्नि, वायु, रवि, इन तीन का नाम

आता है । यह चौथा अंगिरा कहां से कूद बैठा ? प्रमाणों के अर्थ में दयानन्द जी ने अंगिरा को जबर्दस्ती से मिलाकर आर्यसमाजियों को बेवकूफ बनाया है, इस अयोग्य कार्य को समस्त संसार घृणा की दृष्टि से देखता है ।

(५) अग्नि, वायु, रवि ये तीन ऋषि किस जमाने में हुये ? इनका होना वेद धर्मशास्त्र, दर्शन-पुराण कहीं पर नहीं मिलता । क्या इनका ऋषि होना स्वा० दयानन्द जी ने कुरान से या बाइबिल से लिया है ? इन तीन ऋषियों की उत्पत्ति कहां लिखी है ? यदि ये ऋषि थे तो इनकी माताओं का क्या नाम था और किन २ मनुष्यों के ये पुत्र थे ? ये किस देश में हुये ? इनके कितने २ भाई एवं कितनी २ बहिनें थीं ? फिर ये किस २ के यहां विवाहे गये ? इनके श्वसुरों और इनकी स्त्रियों का क्या २ नाम था ? तथा इन ऋषियों में से किस २ ऋषि के कितने २ पुत्र हुये ? इन ऋषियों के गोत्र और प्रवर क्या थे ? वैदिक और पौराणिक साहित्य में इनका कहीं कुछ भी पता चलता है ? इन प्रश्नों पर आर्यसमाज का टाट लौट कर दयानन्द के जाल का ऐसा भण्डा-फोड़ होता है कि संसार जिसका तमाशा देखता है ।

(६) 'स ब्रह्मविद्याम्' मुण्डक की इस श्रुति में ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को वेद पढ़ाये और अथर्वा ने अंगिरा को, अंगिरा ने सत्यवाह को वेदों का उपदेश किया यह जो क्रम वेद ने बतलाया क्या यह झूठा है ? इसके ऊपर आर्यसमाज क्या कहता है । श्रुति कह रही है कि इस क्रम से वेद संसार में आया इस पर आर्यसमाज की क्या धारणा है ? अब आर्यसमाज यह नहीं कह सकती कि चार ऋषियों ने ब्रह्मा को वेद पढ़ाये क्योंकि संस्कृत साहित्य में इन चार ऋषियों का अस्तित्व और इनके जरिये से ब्रह्मा का वेद पढ़ना कहीं नहीं है । "डूबते को तिनके का सहारा" बहुत होता है इस न्याय से वेदोत्पत्ति की सफाई हो जाने के भय से स्वामी दयानन्द जी ने मनगढ़न्त अग्नि, वायु, रवि ये तीन मनुष्य जबर्दस्ती के सांड बना कर इनको ऋषि और वेद प्रादुर्भावकर्ता लिखा जो निरी गप्प है । स्वा० दयानन्द का लेख तो अव्वल दर्जे का गपोड़ा हो गया, अब आर्यसमाजी बतलावें कि "स ब्रह्मविद्याम्" इस श्रुति पर आर्यसमाज की क्या धारणा है ? इसका कोई उत्तर आर्यसमाजियों को नहीं सूझता । बात यह है कि जो ठग के जाल में फंसेगा वह ठगा ही जावेगा ?

(७) कई एक आर्यसमाजी जो धार्मिक ज्ञान की तरफ से चौपटानन्द हैं वे कह देते हैं कि इन ऋषियों के नाम तो मनुस्मृति और शतपथ में भी लिखे हैं

फिर तुम यह कैसे कहते हो कि सृष्टि के आरंभ से आज तक अग्नि,वायु,रवि कोई ऋषि नहीं हुये ? इस के उत्तर में हम यह कहेंगे कि पहिले तुम मनु का श्लोक और श्लोक का अभिप्राय तथा शतपथ की श्रुति और उस का अर्थ समझो तब अग्नि,वायु,रवि को ऋषि बनाना ? मनु देखिये

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः ।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥२२
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥२३
कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
सरितः सागराञ्छैलान्समानि विषमाणि च ॥२४

मनु० १

उस ब्रह्मा ने कर्म,आत्मा और देवताओं के गण तथा प्राणी समूह साध्यों के गण एवं सूक्ष्म यज्ञ को रचा ॥२२॥ फिर अग्नि, वायु, रवि इन तीन तत्वों से यज्ञ की सिद्धि के लिये ऋग् यजु साम लक्षण वाले सनातन वेद को दुहा।२३।बाद में काल और काल विभाग, नक्षत्र एवं ग्रह,नदी, समुद्र,पर्वत तथा सम विषम स्थलों को रचा ॥ २४ ॥

यहां पर निर्माण कर्ता ब्रह्मा है और वह ऊपर से आरहा है । यह संसार ब्रह्मा ने रचा है,संसार की रचना क्रम को यहां दिखलाया जारहा है । यहां पर ब्रह्मा से भिन्न संसार रचने वाला कोई अन्य ईश्वर नहीं माना,यह सब रचना ब्रह्मा ने की है,वही ब्रह्मा "अग्निवायुरभ्यः"इस श्लोक में "दुदोह"क्रिया का 'कर्ता' है अर्थात् इस श्लोक में "ऋग्यजुःसामलक्षणम्" यह कर्म है । ब्रह्मा कर्ता है 'दुदोह' क्रिया है अर्थात् 'ऋग्यजुःसामलक्षणम्' फेल है और ब्रह्मा फाइल है एवं "दुदोह" मफूल है,अर्थ हुआ कि अग्नि,वायु,रवि से ब्रह्मा ने वेदों को दुहा । जो पदार्थ किसी पदार्थ में सर्वव्यापक होता है वह उसमें से दुहा जाता है जैसे गौ के अंग अंग में दूध है,यह स्तनों के जरिये से दुह लिया जाता है तो क्या इन तीन ऋषियों के हाड़,मांस,रुधिर-चमड़े में वेद व्यापक होगया जो ईश्वर ने तीनों को पकड़ कर दुह लिया । यह अर्थ ही कभी संगत नहीं होता क्योंकि सर्वव्यापक पदार्थ दुहा जाता है,ऋषियों के अंग में वेद का सर्वव्यापक होना असंभव है इस कारण

यह मानना पड़ेगा कि अग्नि-वायु-सूर्य इन पद पदार्थों में जो सूक्ष्म होके वेद सर्व-व्यापक बन गया था उस को ब्रह्मा ने खैंच कर वेद के स्थूल रूप में कर दिया यह असली अर्थ है। जब दयानन्द जी को कोई रस्ता नहीं मिला तब अपनी चालबाजी से तीन पदार्थों को ऋषि बनाया। आर्यसमाजी लिखते पढ़ते हैं ही नहीं, उन्होंने समझा कि क्या दयानन्द हम को धोखा देंगे? बस इसी आधार पर तीन ऋषियों के द्वारा वेदों का प्रादुर्भाव मान लिया गया, चतुर्थ-अथर्व वेद का दयानन्द जी के मत में पता नहीं कि अब्दुलरहमान ने बनाया या डाक्टर स्मथ ने?

जिस मनु के श्लोक को आगे रख कर तीन ऋषियों से वेदोत्पत्ति बतलाई उसके पहिले श्लोक में मनु कहते हैं कि ब्रह्मा ने देवता और साध्यों को उत्पन्न किया, दयानन्द के मत में मनुष्यों से भिन्न देवता और साध्य होते ही नहीं? दयानन्द जी तो पढ़े हुये मनुष्यों को देवता एवं साध्य मानते हैं। जब हम यह श्लोक आर्यसमाजियों के आगे रखते हैं कि देखो मनु ने मनुष्यों की उत्पत्ति तो पहिले लिख दी और अब इस श्लोक में देवता तथा साध्यों की उत्पत्ति बतलाई गई है इस कारण देवता और साध्य सृष्टि मनुष्य सृष्टि से भिन्न है तब आर्यसमाजी कहते हैं कि "कर्मात्मनाम्" यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है अतएव हम इसको नहीं मानते? जैसे "कर्मात्मनाम्" वेदानुकूल नहीं वैसे ही "अग्नि-वायु" यह श्लोक भी वेदानुकूल नहीं है फिर इसको दयानन्द जी ने माना क्यों? ऐ चालबाजी की कबड्डी खेलनेवाले आर्यसमाजियो? तुम जो धर्म और अपनी इज्जत को चालबाजियों के जरिये से जूते से कुचल वैदिक बनना चाहते हो, तुम्हारे इस घृणित कार्य से आज संसार तुमको घृणा की दृष्टि से देख रहा है।

मनु का विवरण आप देख चुके, अब कुछ शतपथ के कथन पर भी दृष्टि डालें। शतपथ कहता है कि——

प्रजापतिर्वाऽइदमग्रऽ आसीत्। एक एव सोऽकामयत स्यां प्रजायेयेति। सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्माच्छ्रान्तात्तेपानात्त्रयो लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः ॥१॥ स इमांस्त्रींल्लोकान-भितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतीᳫंष्यजायन्ताग्निर्योऽयं पवते सूर्यः ॥२॥ स इमानि त्रीणि ज्योतीᳫंष्यभितताप। तेभ्य-

स्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्या-त्सामवेदः ॥३॥ सइमांस्त्रीन्वेदानभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदाद्भुव इति यजुर्वेदात्स्वरिति साम-वेदात्सदृग्वेदेनैव होत्रमकुर्वत यजुर्वेदेनाध्वर्यवथं सामवेदेनोद्-गीथम् ॥४॥

शतपथ ११ प्र०:४ ब्रा० २ पृ० ५७६

सृष्टि के आरंभ में एक केवल प्रजापति विद्यमान् था उस की इच्छा हुई कि मैं प्रजा बनूं। उस ने निश्चल होकर तप किया, उस श्रान्त और तप्त प्रजापति से पृथिवी अन्तरिक्ष, द्यौ ये तीन लोक उत्पन्न हुये ॥१॥ फिर उसने इन तीन लोकों को तपाया तपे हुये इन तीन लोकों से अग्नि, पवन, सूर्य ये तीन ज्योतियां उत्पन्न हुई ॥२॥ फिर उस प्रजापति ने इन तीन ज्योतियों को तपाया बाद में इन तीन ज्योतियों से तीन वेद उत्पन्न हुये, अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद ॥३॥ फिर उस प्रजापति ने इन तीन वेदों को तपाया, इन तप्त तीन वेदों से भूर्भुवः स्वः ये तीन शुक्र उत्पन्न हुये, ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः, सामवेद से स्वः, फिर ऋग्वेद से होत्र, यजुर्वेद से अध्वर्यु, सामवेद से उद्गीथ उत्पन्न किये ॥४॥

यह शतपथ का पाठ है। अब पाठक उत्तम रीति से समझ जावेंगे कि अग्नि, वायु, रवि ये क्या हैं? इन श्रुतियों में स्पष्ट लिखा है कि तप के द्वारा प्रजापति ने तीन लोकों को बनाया और उन तीन लोकों को तपाकर अग्नि, वायु, सूर्य इन तीन ज्योतियों को बनाया एवं इन तीन ज्योतियों को तपा कर उनसे तीन वेदों को बनाया। अब पाठक विचार करें कि अग्नि, वायु, सूर्य ये तीनों ही ज्योतियां तत्व हैं या ऋषि? और फिर इन ज्योतियों को तपाया है, क्या वे ऋषि तपाये गये थे? अभी तो ब्रह्म लोक में बैठे हुये प्रजापति ब्रह्मा ब्रह्माण्ड की रचना कर रहे हैं? इस समय तो पृथ्वी आदि लोकों में प्राण धारण करने वाले प्राणियों की उत्पत्ति ही नहीं? अभी तो पृथ्वी पर एक मनुष्य भी पैदा नहीं हुआ फिर ये अग्नि, वायु, रवि तीन ऋषि आये कहां से? (२) जब तीन लोकों को तपाया गया तो उन का सारभूत तीन तत्व निकलेंगे या तीन लोकों में से तीन ऋषि कूद पड़ेंगे? जब शतपथ खुद अग्नि, वायु, रवि इन को ज्योति लिख रहा है फिर ये ऋषि कैसे होंगे? दयानन्द जी ने शतपथ की श्रुति के जरा से टुकड़े को चुरा कर आर्यसमाजियों को जो धोखे में डाला है यह दयानन्द जी की चोरी

और सीनाजोरी है ? आर्यसमाजियो ! यदि तुम में जरासा भी धर्म का अंश हो या तुम में किंचित् लज्जा हो तो फिर तुम दयानन्द के बनावटी सर्वथा असत्य जाल में कभी फंस नहीं सकते किंतु तुमने धर्म और लज्जा को दियासलाई दिखलादी एवं तुम इस चक्कर में पड़े हो कि किसी प्रकार दयानन्द का लेख असत्य न हो । असत्य तो असत्य ही रहेगा ? फिर यह श्रुति दयानन्द के अद्वैत सिद्धांत पर चौका लगा देती है,इस में स्पष्ट लिखा है कि एकला प्रजापति कामना करता है कि मैं प्रजा बनूं ? श्रुति "अभिन्ननिमित्तोपादानकारण" कह रही है, इसीलिये दयानन्द जी ने सब श्रुतियों को नहीं उठाया । जान गये कि अग्नि,वायु,रवि ऋषि न होकर तत्व बन जायंगे और इस से भिन्न प्रकृति से जो हमने संसार की उत्पत्ति मानी है वह भी मिट जायगी । आर्यसमाजियो ! तुम वेद ज्ञान शून्य हो,भले ही दयानन्द के गढ़े में गिरो किंतु ऐसे अनर्थकारी पापरूप गढ़े में कोई लिखा पढ़ा मनुष्य कैसे गिरेगा ?



फलित ज्योतिष्

वेद

वेद ने नक्षत्रों से कल्याण करने की प्रार्थना करना लिखा है । मंत्र देखिये

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे
अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति
सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥

अथर्व० १९ । २ । ८ । १

जो नक्षत्र द्युलोक, अन्तरिक्ष, जल,पृथ्वी,पर्वत और दिशाओं में हैं, चन्द्रमा जिनकी कल्पना करता हुआ चलता है मेरे लिये वे सब शुभ हों ।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः
शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः
शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥

अथर्व० १९ । १ । ९

चन्द्रमा के साथ के सब ग्रह तथा सूर्य के साथ के राहु और मृत्युसूचक धूमकेतु एवं विकराल रुद्रगण हमको कष्ट न दें।

मूलशान्ति

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य
मूलबर्हणात्परिपाह्येनम्।
अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥२॥
व्याघ्रे अह्नि अजनिष्ट वीरो
नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
स मावधीत्पितरं वर्धमानो
मा मातरं प्रमिनीज्जनित्रीम् ॥३॥

अथर्व० ६। ११। ११०

ज्येष्ठा नक्षत्र को ज्येष्ठघ्नी और मूल नक्षत्र को विचृत कहते हैं इनमें हुआ पुत्र मूलबर्हण अर्थात् वंशोच्छेदक होता है। हे यम! इन दोनों से इस बालक की रक्षा करो, इसके समस्त दुरित दूर करो और इसको दीर्घायु बनाओ ॥२॥ व्याघ्र के समान क्रूर नक्षत्र वाले दिन में उत्पन्न हुआ यह बालक मूल नामक पाप नक्षत्र से न मरे और उत्पन्न होकर माता पिता को न मारे ॥३॥

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्र एषां
मूलबर्हणात्परिपाह्येनम्।
स ग्राह्याः पाशान्विचृत प्रजानन्
तुभ्यं देवा अनुजानन्तु विश्वे ॥१॥

अथर्व० ६। ११। ११२

हे अग्ने! मूल नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र बड़े भाई का मारक न हो, वंश का उच्छेद न करे। ग्रहण करने वाली जो पिशाची है वह इसके पाशों को काट दे इस कार्य में सब देवता अनुमोदन करें।

आर्यसमाज

जब किसी ग्रहग्रस्त, ग्रहरूप ज्योतिर्विदाभास के पास जाके वे कहते हैं कि हे महा-

राज ! इसको क्या है ? तब वे कहते हैं कि इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं । जो तुम इनकी शान्ति,पाठ,पूजा,दान कराओ तो इसको सुख हो जाय,नहीं तो बहुत पीडित होकर मर जाय तो भी आश्चर्य नहीं । (उत्तर) कहिये ज्योतिर्वित् ! जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादिलोक हैं,वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते । क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें ?(प्रश्न)क्या जो यह संसार में राजा प्रजा सुखी दुखी हो रहे हैं यह ग्रहों का फल नहीं है ?(उत्तर)नहीं,ये सब पाप पुण्यों के फल हैं ।(प्रश्न)तो क्या ज्योतिःशास्त्र झूठा है ?(उत्तर)नहीं,जो उसमें अंक,बीज,रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची,जो फल की लीला है वह सब झूठी है (प्रश्न)क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है ?(उत्तर) हां,वह जन्म पत्र नहीं किन्तु उसका नाम "शोकपत्र" रखना चाहिये क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है तब सबको आनन्द होता है परन्तु वह आनन्द तब तक होता है कि जब तक जन्म पत्र बनके ग्रहों का फल न सुनें । जब पुरोहित जन्म पत्र बनाने को कहता है तब उसके माता, पिता,पुरोहित से कहते हैं महाराज ! आप बहुत अच्छा जन्म पत्र बनाइये । जो धनाढ्य हो तो बहुत सी लाल, पीली रेखाओं से चित्र विचित्र और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्म पत्र बना के सुनाने को आता है तब उसके मा बाप ज्योतिषी जी के सामने बैठ के कहते हैं इसका जन्म पत्र अच्छा तो है ? ज्योतिषी कहता है जो है सो सुना देता हूँ । इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सब के ऊपर इसका तेज पड़ेगा, शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा-इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं वाह २ ज्योतिषी जी आप बहुत अच्छे हो । ज्योतिषी जी समझते हैं इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता; तब ज्योतिषी बोलता है कि यह ग्रह तो बहुत अच्छे हैं परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने २ ग्रह के योग से ८ वर्ष में इसका मृत्यु योग है । इसको सुनके माता पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के शोक सागर में डूब कर ज्योतिषी जी से कहते हैं कि महाराज जी ! अब हम क्या करें ? तब ज्योतिषी जी कहते हैं उपाय करो । गृहस्थ पूछे क्या उपाय करें ? ज्योतिषी जी प्रस्ताव करने लगते हैं कि ऐसा २ दान करो । ग्रह के मंत्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जायेंगे । अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायगा तो कहेंगे हमें क्या करें परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है, हमने तो बहुत सा यत्न

किया और तुमने कराया उसके कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाय तो कहते हैं कि देखो हमारे मंत्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है, तुम्हारे लड़के को बचा दिया। यहां यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जप, पाठ से कुछ न हो तो दूने तिगुने रुपये उन धूर्तों से ले लेने चाहिये। और बच जाय तो भी ले लेने चाहिये क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं, वैसे गृहस्थ भी कहें कि यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है तुम्हारे करने से नहीं और तीसरे गुरु आदि भी पुण्य दान करा के आप ले लेते हैं तो उनको भी वही उत्तर देना जो ज्योतिषियों को दिया था।

सत्यार्थ० समु० ३ पृ० २६

विवेचन।

वेद ने नक्षत्र और ग्रहों से कल्याण की प्रार्थना करनी लिखी है, साथ ही साथ छः नक्षत्र मूल के हैं उनमें पैदा हुये बालक की कुशलता के लिये मूलशान्ति करनी लिखी है, निःसन्देह वेदों ने नक्षत्र-ग्रहों से कल्याण चाह कर मूलशान्ति द्वारा अरिष्टागमन की निवृत्ति कही है। स्वा० दयानन्द जी ने एक भी प्रमाण न देकर वेद के लेख पर चौका लगा दिया। स्वामी जी लिखते हैं कि "ग्रह तो जड़ हैं" भला इन महात्मा से पूछो कि ग्रह जड़ होते तो वेद उनसे शुभ कामना मांगने को क्यों लिखता? ग्रह जड़ नहीं हैं, ग्रहों को जड़ बतलाने वाले की बुद्धि जड़ है। फिर वेद का खण्डन भी कैसा कि मन्त्रों को छिपाया और वेद के मन्त्रों का खण्डन हुज्जतबाजी से किया, आर्यसमाजियों को दिखला दिया कि हमने जो 'मुखं किमस्यासीत्' मन्त्र के टीका पर ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ईश्वर को मूर्ख बतलाया था उस मूर्ख ईश्वर के बनाये हुये फलित ज्योतिष् के सिद्ध करने वाले मंत्रों को हम हुज्जत से ही उड़ाये देते हैं, अब तुमको मानना पड़ेगा कि ईश्वर मूर्ख और स्वामी जी विद्वान् थे। स्वामी जी ने ऐसा किया क्यों? जब तक ये वेद के मन्त्र हुज्जतों से न उड़ा दिये जावेंगे तब तक हिन्दू लोग ईसाई धर्म में आवेंगे ही नहीं। ईसाई धर्म में ग्रहों को जड़ माना है उसकी सत्यता दिखलाने के लिये आज स्वामी जी वेद मन्त्रों को दियासलाई दिखला रहे हैं। है कोई आर्यसमाजी संसार में जो फलित ज्योतिष् को अवैदिक या मिथ्या कह दे। ऊपर के मंत्रों को देखकर आर्यसमाजियों की नानी मर जाती है। कहो

आर्यसमाजियों ! बोल दो एक बार झूठे जाल फैलाने वाले स्वामी जी की जय ।

तीर्थ ।

वेद

वेद ने तीर्थों के महत्व को स्पष्ट रीति से लिखा है देखिये—

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥

यजु० १६ । ४२

हे शिव ! आप सब प्रकार से सब में श्रेष्ठ, सब संसार के तारने पार उतारने हारे हो क्योंकि आप तीर्थरूप हो जैसे गंगा अथवा आप तीर्थों में पर्यटन करते हो आपके अर्थ नमस्कार और तीर्थों के घाट किनारे रूप आपके लिये नमस्कार है ।

और पढ़िये—

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवी-
दग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वर्धयन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवी-
दृतावदन्तश्चमसां अपिंशत ॥

ऋ० मं० १ अ० २२ सू० १६१ मं० ६

हे ऋभव ! तुममें से कोइ एक तीर्थ सेवन कर देव भाव को प्राप्त हो तीर्थजल को सर्वोतम साधन कहता है । कोई अग्निहोत्रादि साधन अनुष्ठान से प्राप्त देवभाव तिसको सर्वोत्तम कहता है । इसी प्रकार कोई प्राणीमात्र पर दया के अनुष्ठान से देवभाव को प्राप्त होने से दया को सर्वोत्तम मानता है । इस प्रकार यथार्थ साधन का उपदेश करते हुये यज्ञपात्र के विभाग करते हो अथवा (ऋतावदन्त) इसका यह अर्थ है कि जितेन्द्री सत्यवादी को तीर्थ फल देते हैं ।

और देखिये—

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति
यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।

अत्रादधुर्यजमानाय लोकं
दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥

अथर्व० १८।४

बड़ी आपत्ति को तीर्थों से तर जाते हैं अर्थात् बड़े २ भयंकर पाप तीर्थों से क्षय हो जाते हैं, यज्ञ और पुण्य के करने वाले जिस मार्ग से जाते हैं, जो दिशा सब प्राणीवर्ग अर्थात् दिशाओं में स्थितप्राणी यजमान के निमित्त कल्पना करते हुये वे इस पुण्यलोक प्राप्तिसाधन के मार्ग में प्राप्त होते यजमान के निमित्त पुण्यार्जित लोक को विधान करें।

अन्य मन्त्र अवलोकन कीजिये—

सरस्वतीसरयुः सिन्धुरूर्मिभि-
र्महोमही रवसायं तु वक्षणीः।
देवीरापो मातरः सूदयिन्त्वो
घृतवत्पयो मधुमन्नोअर्चत ॥

ऋ० मं० १० अ० ५ सू० ६४ मं० ६

महान् से भी महान् लहरों से युक्त सरस्वती सरयू सिंधुनामा नदी देवियां रक्षा करने के लिये हमारे यज्ञ में आओ, माता की समान प्रेरक जलदेवियां घृत मधु युक्त दुग्ध वा जल को हमें दो।

मन्त्रान्तर पर भी दृष्टि डालिये—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वतिशुतुद्रिस्तोमं सचतापरुष्ण्या असि-
क्न्यामरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणु ह्यासुषो मया ॥

ऋ० मं० १० अ० ३ सू० ७५ मं० ५

हे गंगे, यमुने, सरस्वति, शुतुद्रि, (शुतलज) मरुद्वृधे, आर्जीकीये, परुष्णी, असिक्नी, वितस्ता, सुषोमा के साथ मेरे यज्ञ को सेवन करो और मेरी स्तुतियों को सब प्रकार से सुनो।

आर्यसमाज

(प्रश्न) यह मूर्तिपूजा और तीर्थ सनातन से चले आते हैं झूठे क्यों कर सकते हैं ? (उत्तर) तुम सनातन किसको कहते हो। जो सदासे चला आता जो यह सदा से होता तो वेद और ब्राह्मणादि ऋषि मुनिकृत पुस्तकों में

इनका नाम क्यों नहीं ? यह मूर्तिपूजा अढ़ाई तीन सहस्र वर्ष के इधर २ वाममार्गी और जैनियों से चली है । प्रथम आर्यावर्त में नहीं थी और ये तीर्थ भी नहीं थे । जब जैनियों ने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुंजय और आबू आदि तीर्थ बनाये, उनके अनुकूल इन लोगों ने भी बना लिये । जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करना चाहें वे पंडों की पुरानी से पुरानी बही और तांबे के पत्र आदि लेख देखें तो निश्चय हो जायगा कि ये सब तीर्थ पांच सौ अथवा एक सहस्र वर्ष से इधर ही बने हैं । सहस्र वर्ष के उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता इससे आधुनिक हैं (प्रश्न) जो २ तीर्थ वा नाम का माहात्म्य अर्थात् जैसे "अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति" इत्यादि बातें हैं वे सच्ची हैं वा नहीं ? (उत्तर) नहीं, क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन,राजपाट, अन्धों को आंख मिल जाती,कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता, ऐसा नहीं होता इसलिये पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता (प्रश्न)

गंगागंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।१।
हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम् ।२।
प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशि पापं विनश्यति ।
आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्त जन्मनाम् ।३।

इत्यादि श्लोक पोप पुराण के हैं जो सैकड़ों सहस्रों कोश दूर से भी गंगा गंगा कहे तो उसके पाप नष्ट होकर वह विष्णुलोक अर्थात् वैकुंठ को जाता है ॥ १ ॥ हरि इन दो अक्षरों का नामोच्चारण सब पापों को हर लेता है वैसे ही राम, कृष्ण, शिव, भगवती आदि नामों का माहात्म्य है ॥ २ ॥ और जो मनुष्य प्रातःकाल में शिव अर्थात् लिंग वा उसकी मूर्ति का दर्शन करे तो रात्रि में किया हुआ, मध्याह्न में दर्शन से जन्म भर का, सायंकाल में दर्शन करने से सात जन्मों का पाप छूट जाता है यह दर्शन का माहात्म्य है ॥ ३ ॥ क्या झूठा हो जायगा ? (उत्तर) मिथ्या होने में क्या शंका ? क्योंकि गंगा २ वा हरे, राम,कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नामस्मरण से पाप कभी नहीं छूटता । जो छूटे तो दुखी कोई न रहे और पाप करने से कोई भी न डरे । जैसे आजकल पोपलीला में पाप बढ़कर हो रहे हैं मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर नाम स्मरण वा तीर्थ यात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जायगी । इसी विश्वास पर पाप करके

इस लोक और परलोक का नाश करते हैं,पर किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है । (प्रश्न) तो कोई तीर्थ नामस्मरण सत्य है वा नहीं ? (उत्तर) है, वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतिथि, माता, पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना, उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान विज्ञान आदि शुभ गुण कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं ! और जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि 'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि' मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है । जल स्थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं । प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे समुद्र आदि को तरते हैं ।

समानतीर्थे वासी । अ० ४ पा० ४ । १०८

नमस्तीर्थ्याय च । यजुः अ० १६ मं० ४२

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य और एक शास्त्र को साथ ५ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समान तीर्थ से भी होते हैं । जो वेदादि शास्त्र और सत्य भाषणादि धर्म लक्षणों में साधु हों उसको अन्नादि पदार्थ देना और उन से विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं ।

सत्यार्थ० समु० ११ पृ० ३३३

विवेचन

स्वामी जी हुज्जतबाजी से वेदों को उड़ाते हैं यह इन की धार्मिकता का चमकता हुआ उदाहरण है । आप कहते हैं कि पंडों के बही खाते देखलो उनसे मालूम होजायगा कि तीर्थ थोड़े ही काल से बने हैं । पंडों की बही क्यों देखें ? ईश्वर का बही खाता वेद क्यों नहीं देखें जिसमें तीर्थों का महत्व भरा है ? क्या स्वामी जी की दृष्टि में वेद पंडों के बही खाते के तुल्य भी महत्व नहीं रखता ? इन लेखों से वैदिक धर्म का प्रचार न होगा किन्तु वेद का सत्यानाश करके हिन्दुओं को ईसाई बनाना जो स्वामी दयानन्द जी का लक्ष्य है,स्वा० दयानन्द के लेख उसी की पुष्टि करेंगे,आर्यसमाजी इसको गौर से विचार लें ।

स्वामी जी तीर्थों के खण्डन में एक वेद मंत्र का "नमस्तीर्थ्याय च" टुकड़ा देकर डराना चाहते हैं । इन के मन में यह समा गया है कि वेद का नाम लेकर हम

योग्य,अयोग्य चाहे जो कुछ लिखें संसार को मानना ही पड़ेगा क्योंकि संसार वेद जानता नहीं,हमारे दिये हुये वेद के टुकड़े से कांप उठेगा। स्वामी जी को इतना ज्ञान नहीं है कि जो हम तीर्थों के खंडन में वेद मंत्र देते हैं संभव है उसी में तीर्थ का मानना निकल आवे ? वे तो मंत्र देकर डराते हैं इस मंत्र का तो समस्त भाष्यकारों ने यह अर्थ किया है कि रुद्र ! आप समस्त तीर्थों में विचरते हैं,इस कारण आप तीर्थ हैं,आपको मैं प्रणाम करता हूँ,अब आर्यसमाजी विचारें कि 'नमस्तीर्थ्याय च' इसमें तीर्थों का खण्डन है या मंडन ? रही बात 'समान तीर्थेवासी' इस सूत्र की इसके ऊपर तत्वबोधिनीकार लिखते हैं कि 'तीर्थ शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्याय मंत्रिषु। योनौ जलावतारेच-इति विश्वः, शास्त्र-मार्ग,क्षेत्र-उपाय-उपाध्याय-मंत्रि-योनि-जलावतार इन का नाम तीर्थ है। क्या कोई सनातनधर्मी यह कहता है कि तीर्थ शब्द से केवल जल समूह का ही ग्रहण है और शास्त्रादिकों का नहीं ? जब ऐसा विश्व कोश ही लिख रहा है तब तो इस सूत्र का यहां लिखना व्यर्थ और दयानन्द जी की कमसमझी का चमकता हुआ उदाहरण मिलता है। क्या इन चार लाख आर्यसमाजियों में कोई आर्यसमाजी ऐसा है जो तीर्थ की पुष्टि में दिये हुये हमारे मंत्रों का खण्डन करके दयानन्द के लिखे तीर्थ खण्डन ईसाई सिद्धांत की पुष्टि करे ? इस को देख कर आर्यसमाजियों के चेहरे उतर जाते हैं। आर्यसमाजियो ! तुम संसार को धोखे में डाल कब तक चालबाजियों में फांसोगे ? किसी भले आदमी को धोखा देना,चालबाजी के जाल में फांस लेना संसार में तुम्हारी यही ईमानदारी रह गई है। विद्या,ज्ञान,मस्तिष्क क्या ये तीनों तुम्हारे साफ होगये ? जरा विचार करो,सर्वथा ही अन्धेर मत मचाओ।? मूर्तिपूजा के खण्डन का उत्तर हम मूर्तिपूजा के विषय में दे चुके हैं।

पाप मोचन।

वेद

जब यह मनुष्य संसार में दुःखी होता है या अन्यों को दुःखी देखता है तब यह अपने दुःख दूर करने की आवाजों को ईश्वर के पास पहुंचाता है। इस आवाज पहुचाने की विधि और इस क्रन्दन को सुनकर जगदीश्वर मनुष्य के दुःख को दूर करता है -यह उल्लेख वेद में पाया जाता है।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतᳬ
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः
शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च
शरदः शतात् ॥

यजु० ३६ । २४

वह नेत्रभूत देवताओं का कल्याण करने वाला पूर्व में है उदय जिसका पाप रहित शुक्ल जो सूर्य है उस की प्रसन्नता से हम सौ वर्ष तक देखें। सौ वर्ष तक हम स्वतंत्र जीवन को धारण करें और सौ वर्ष तक हम स्पष्ट शब्द सुनें एवं सौ वर्ष तक हम भाषण करें तथा हम सौ वर्ष तक किसी के आगे दीन न हों और सौ वर्ष के ऊपर भी हम देखें,जीवें,सुनें, बोलें एवं किसी के आगे दीन न हों।

इस मन्त्र में अपने स्वतन्त्र जीवन और इन्द्रियों के पुष्ट होने की सूर्य से प्रार्थना की है। अब अन्य मन्त्र पढ़ने की कृपा करें।

सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रिया–
स्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥

यजु० ३६ । २३

जगदीश्वर! जल, औषधी हमारे लिये सुमित्ररूपा हों, जो शत्रु हमसे द्वेष करता है और हम जिस शत्रु से द्वेष करते हैं उसके लिये जल-औषधी दुर्मित्ररूप हों।

इस मन्त्र में परमात्मा से अपने कल्याण और शत्रु के अकल्याण की प्रार्थना की है। मन्त्रान्तर पर भी दृष्टि डालिये।

तनूपाऽ अग्नेऽसि तन्वऽम्मे पाहि
आयुर्दाऽ अग्नेस्यायुर्मे देहि।
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि
अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनन्तन्मऽ आपृण ॥

यजु० ३ । १७

अग्नि! तुम जठराग्निरूप से देहों के रक्षक हो, मेरे शरीर को रोगादिकों से रक्षा करो, अग्नि! तुम आयु के दाता हो अतः मुझे दीर्घायु दो अर्थात् अप-

मृत्यु को दूर करो। प्रसिद्ध है कि जब तक जठराग्नि रहती है तब तक मनुष्य नहीं मरता। अग्नि तुम तेज के दाता हो मुझे तेज दो। अग्नि! मेरे शरीर का जो अंग ज्ञान के अनुष्ठान में असमर्थ है मेरे उस अंग को समर्थ करो।

अन्य मन्त्र का अवलोकन कीजिये-

नमस्ते अग्नओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।

अमैरमित्रमर्दय ॥

साम० पू० १ । १

अग्निदेव! बलवान् होने को मनुष्य यजमान तुमको नमस्कार करते हैं और तुम अपने बल से हमारे शत्रुओं का नाश करो।

इसके आगे ईश्वर से पाप क्षमा कर देने के मन्त्र लिखते हैं।

यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये ।

यदेनश्चकृमा वयमिदन्तदव यजामहे स्वाहा ॥

यजु० ३ । ४५

हमने गांव में जो मन, वाणी, शरीर से परपीड़ारूप पाप किया, बन में जो वृक्ष छेदन, मृगवध आदि पाप किया, सभा में जो अनीति आदि पाप किया, इन्द्रियसंमूह में जो धर्मविरुद्ध भोजन, पान, मैथुनादि पाप किया उस पाप को हम क्षय करते हैं--यह मन्त्र पढ़ कर पापनाशक देवता ईश्वर को हवि दी जाती है।

द्वितीय मन्त्र--

अग्नेरक्षाणो अंहसः प्रतिस्मदेव रीषतः ।

तपिष्ठैरजरोदह ।

साम० पू० १ । १

अग्निरूप परमेश्वर! तुम हमको पाप से रक्षा करो, हे दीप्तियुक्त जरारहित अग्नि! तुम शत्रुओं को मारते हुये बड़े तपाने वाले तेजों से शत्रुओं को भस्म कर दो।

तृतीय मन्त्र-

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावकशस्यम् ।

रास्वाचन नुपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥

साम० पू० १ । १

परमेश्वर! शुद्ध करने वाले पापहर्ता [पाप दूर करने से ही परमेश्वर का

नाम पातक है] अन्न के बढ़ाने वाले स्तुतियोग्य धन को हमारे वास्ते दो और लाकर हमारे वास्ते प्रकट करो। हे ईश्वर ! हमको अच्छे मार्ग से बड़े श्रेष्ठ अच्छे यश कीर्ति धन को दो।

चतुर्थ मन्त्र-

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥

यजु० ४०। १६

हे दिव्य दानादि गुणयुक्त अग्निदेव ! संपूर्ण हमारे कर्मों को जानने वाले आप हमको मुक्ति लक्षण वाले धन वा भोग को उत्तरायण दक्षिणायन मार्ग से प्राप्त करो। कुटिल वंचनात्मक पाप को हमसे पृथक् करो हम आपके निमित्त अनेक प्रणामों का विधान करते हैं।

पंचम मंत्र

अपनः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्।
अपनः शोशुचदघम् ॥१॥

ऋ० मं० १ व० ५ सू० ९७

हे अग्नि परमेश्वर ! हमारा जो पाप है वह हम से निकल कर शोक में पड़कर नष्ट हो जावे और हमारा धन बढ़कर चारों तरफ प्रकाशित हो तथा पुनः पाप शोकित होकर नष्ट हो जावे। यहां पर वीप्सा में पुनरावृत्ति है।

षष्ठ मंत्र

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे।
अपनः शोशुचदघम् ॥२॥

ऋ० मं० १ व० ५ सू० ९७

शोभनक्षेत्र की इच्छा तथा शोभनमार्ग की इच्छा एवं धन की इच्छा से हम तेरा यजन करते हैं, आपकी कृपा से हमारा पाप संकट में पड़कर नष्ट हो जावे।

इस स्थल में "अपन:" इस मंत्र से लेकर 'सनः सिन्धुम्' इस मंत्र तक

आठ मन्त्र पापक्षमापन के हैं जिनको देखना हो ऋग्वेद देख लें।

आर्यसमाज।

(प्रश्न) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा (उत्तर) नहीं (प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना ? (उत्तर) उनके करने का फल अन्य ही है (प्रश्न) क्या है ? (उत्तर) स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना। सत्यार्थ० समु० ७ पृ० १८२।

और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है। सत्यार्थ० पृ० १८२।

ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उस को स्वीकार करता है कि जैसे हे परमेश्वर ! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझ को सब से बड़ा मेरे ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जायं। सत्यार्थ० पृ० १८५।

ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा हे परमेश्वर आप हमको रोटो बनाकर खिलाइये, मेरे मकान में झाड़ू लगाइये, वस्त्र धो दीजिये और खेती बाड़ी भी कीजिये। इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते वे महामूर्ख हैं। सत्यार्थ० पृ० १८५।

(प्रश्न) ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं ? (उत्तर) नहीं क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय और सब मनुष्य महापापी हो जायें क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। जैसे राजा अपराध को क्षमा करदे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक २ बड़े २ पाप करें क्योंकि राजा अपना-अपराध क्षमा कर देगा और उन को भी भरोसा होजाय कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डर कर पाप करने में प्रवृत्त होजायंगे। सत्यार्थ० पृ० १९१।

विवेचन

चलो स्वामी जी अच्छे वैदिक निकले, समस्त वेद की ही सफाई कर डाली अवतार उड़ाया, मूर्तिपूजा खाई, अब स्तुति का सफाया करते हैं। आप कहते हैं

कि स्तुति करने से ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता । वाह स्वामी जी वाह तुम्हारा दिमाग निराला ? वेद निराला ? और चालबाजी निराली ? आप की दृष्टि में तो ईश्वर की स्तुति करना झख मारना या संसार को बेवकूफी दिखलाना है ।

आप अनोखा ज्ञान बतलाते हैं कि स्तुति करने का मतलब ईश्वर के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव बनाना है । आपकी दृष्टि में ईश्वर में भी गुण, कर्म हैं । आपको यह भी मालूम है कि गुण जब रहेगा तब किसी आधार में रहेगा ? और आधार जो होगा वह निःसन्देह साकार होगा ? जब आपकी दृष्टि में ईश्वर साकार ही नहीं तो उसमें गुण कैसे ठहरेगा ? जरा न्याय दर्शन देखो । न्याय दर्शन ने उत्क्षेपण, अपक्षेपण, कुंचन, प्रसारण, गमन ये पांच कर्म माने हैं । ईश्वर में उत्क्षेपण कर्म है, वह किसी को उठाकर ऊपर फेंकता है या बराबर में फेंकता है ? किसी को लम्बा चौड़ा करता है या किसी को घिस डालता है अथवा वह चलता है, उसमें कौन कर्म है ? आपने तो ईश्वर को अविज्ञेय और अनिर्वचनीय तथा इच्छारहित माना है । इच्छा रहित में कर्म का करना कभी बन सकता है ? एवं ईश्वर कैसे गुण मनुष्यों में आवेंगे कैसे ? वह सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान है, आपके मत में शरीर रहित है तो क्या दुनियाँ के मनुष्य सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान बन कर अपने शरीर को छोड़ दें ? जहर खाकर मर जावें ? आपने सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर के तीन कर्म बतलाये सृष्टि का रचना, प्रलय का करना, जीव को उसके कर्मानुसार फल देना, वेद का बनाना, क्या अब ये चारों काम आर्यसमाजी करने लगेंगे ? स्वभाव नाम तो शरीर का है "स्वभवनं स्वभावः" जो साथ में पैदा हो उसका नाम स्वभाव है । क्या ईश्वर के भी शरीर है ? यदि स्वभाव नाम आप आदत का मानें तो ईश्वर कैसी आदत जीवों की तो नहीं हो सकती, संभव है आर्यसमाजियों की हो जावे ? फिर आपने यह किस आधार पर माना कि स्तुति करने का मतलब यही है कि ईश्वर के सदृश जीव के गुण, कर्म, स्वभाव हो जाना । स्वाभाविक धर्म किसी का बदलता नहीं, नीम में कटुत्व और नीबू में खट्टापन, कोयले में स्याही, नमक में खारापन, ऊख में मिठास कभी बदलते हैं ? आप बातें कैसी करते हैं ?

आप लिखते हैं कि "प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना" उपासन

से जो आपने सहाय का मिलना माना है, यह सहाय कौन देगा ? आप लिखते हैं कि यदि ईश्वर पापों को क्षमा कर दे तो वह दयालु न रहे । हम भी यही कहेंगे कि यदि ईश्वर प्रार्थना से सहाय करता है तो वह दयालु नहीं रहा क्योंकि जिन्होंने प्रार्थना की उनको सहाय दी और जिन्होंने नहीं की वे टका से रह गये ? प्रार्थना की रिश्वत खाने वाला ईश्वर कभी दयालु हो नहीं सकता-यह आप ही का सिद्धान्त था कि पाप क्षमा कर देने से ईश्वर दयालु नहीं रहता । आप उपासना से ईश्वरमेल बतलाते हैं गजब कर रहे हैं । समुद्र में मिला हुआ गंगाजल कभी अलाहिदा नहीं हो सकता फिर आप यहां जीव ब्रह्म का मेल करके अपने लिखे मुक्ति से पुनरागमन का क्यों कचूमर निकाल रहे हैं ? फिर आप ईश्वर का साक्षात्कार होना भी मानते हैं । क्या ईश्वर शरीरी है जिसका साक्षात्कार होगा ? साक्षात्कार इन्द्रिय और मन से होता है. ये सब साकार हैं इस कारण ये साकार का ही साक्षात्कार कर सकते हैं । आपने ईश्वर का साक्षात्कार लिख कर यहां पर ईश्वर निराकार है इस सिद्धान्त को रगड़ डाला ।

आपने यह खूब लिखा कि 'जो केवल भांड के समान ईश्वर की स्तुति करता है' ईश्वर स्तुति करने वालों को भांड की उपमा देने वाला या तो नास्तिक चार्वाक ही हुआ था या आप ही हुये । आपने यह लिखा कि 'ऐसी स्तुति कभी न करनी चाहिये कि मेरे शत्रुओं का नाश हो और मेरे धन हो एवं मैं प्रतिष्ठावान् बनूं । इससे तो यही जाना जाता है कि आपने कभी स्वप्न में भी वेद नहीं देखे । जो मन्त्र हमने दिये हैं उनमें शत्रुओं के नाश और धनी होने की प्रार्थना स्पष्ट लिखी है, क्या आपकी दृष्टि में इन मन्त्रों के बनाने वाले जगदीश्वर की बेसमझी तो नहीं है ? यह आपने खूब लिखा कि 'हमको लोटी बनाकर जिलाइये' ऐसा तो आपने ही किया होगा ? ईश्वर भक्त जगद्गुरु शंकराचार्य, भगवान् रामानुजाचार्य, पूज्य आचार्य वल्लभ तथा वन्दनीय निम्बार्काचार्य, प्रातःस्मरणीय माध्वाचार्य प्रभृति अनेक ईश्वर भक्त हुये हैं;कौन कहता है कि वे सब आलसी थे ? आलसी तो आप हैं जो ईश्वर की स्तुति प्रार्थना से ही पिण्ड छुड़ा रहे हैं ?

आपने यह भी अच्छा इन्साफ किया कि ईश्वर भक्तों के पाप ही नष्ट नहीं करता । यदि ऐसा है तो फिर ईश्वर के मानने की क्या आवश्यकता थी

लोग दीन होकर ईश्वर की शरण जाते हैं और कहते हैं कि भगवन् ! अब आप हमारे पिछले पापों का नाश कर दें और आगे को हम कभी भी पाप नहीं करेंगे ईश्वर उनके पापों का क्षय करता है या नहीं ? आपको तो यह सोच लगी है कि यदि ईश्वर पाप क्षमा कर देगा तो न्यायकारी न रहेगा । यदि ईश्वर पापों का नाश नहीं करता तो फिर आपने अपनी लेखनी से यह कैसे लिख दिया । देखिये हम आपके लेख को दिखलाते हैं ।

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अपनः शोशुचदघम् । ऋ० १ । ७ । ५ । ६

(आर्याभिविनय मं० ३१)

हे अग्ने परमात्मन् ! तू ही सब जगत्, सब ठिकानों में व्याप्त हो अतएव आप विश्वतोमुख हो । हे सर्वतोमुख अग्ने ! आप स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है । हे कृपालो ! आपकी इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाय जिससे हम लोग निष्पाप होके आपकी भक्ति और आज्ञा पालन में नित्य तत्पर रहें ।

आपने आर्याभिविनय में आठ-दश मंत्रों के अर्थ में यह लिखा है कि हे ईश्वर ! आप हमारे पापों का नाश करदें । क्या आपका लिखना वेद मंत्रों का भाष्य करना यह सब मिथ्या है अथवा वेद मंत्र ही मिथ्या हैं या कहीं ऐसा तो नहीं कि ईश्वर आर्यसमाजियों के पापों का नाश कर देता हो और सनातन-धर्मियों के पापों का नाश न करता हो । मामला क्या है ? आप ही खंडन करें और आप ही मण्डन करें-यह बात क्या है ? क्या आप सत्यार्थप्रकाश लिखते समय अपने लिखे आर्याभिविनय के लेख को भूल गये थे ? आप कैसे महर्षि हैं, अपने लिखे को आप ही भूल जाते हैं । क्या इसी गुण से आपको महर्षि पदवी मिली है ?

नाम स्मरण महत्व

वेद

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां

मनामहे चारुदेवस्य नाम ॥

ऋ० मं० १। सू० २४ मं० १

हम किस का शुभनाम ग्रहण करें और हम किसके द्वारा पिता माता का दर्शन करें।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत्।

छान्दो० प्र० १ मं०१

ओम जिस का नाम है जो अविनाशी है उस की उपासना जप करना चाहिये।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

गीता ८। १३

जो पुरुष "ॐ" इस ब्रह्म के नाम का उच्चारण करता हुआ उस के अर्थ-स्वरूप मेरे को चिन्तन कर शरीर को त्यागता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

केन० उ० खं० १ मं० ५

जो मन से इयत्ता करके मन में नहीं आता, जो मन को जानता है उसी ब्रह्म को तू जान, उसी की पूजा उपासना नाम स्मरण तू कर।

आर्यसमाज

गंगा २ वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण शिव और भगवती नाम स्मरण से पाप कभी नहीं छूटता। नाम स्मरण मात्र से कुछ भी फल नहीं होता। जैसा कि मिश्री २ कहने से मुंह मीठा नहीं होता और नींब नींब कहने से कड़वा नहीं होता।

सत्यार्थ० समु ११ पृ० ३१४

विवेचन

स्वामी जी हैं बड़े मजे के, हुज्जतबाजी से ही वेद को उड़ा देते हैं। ऊपर के मंत्रों में जो नाम महत्व वेद-गीता ने बतलाया था वह स्वामी जी ने जरा सी

हुज्जत में उड़ा दिया, अब बतलाओ ईश्वर बड़ा कि स्वामी? और स्वामी जी में एक बड़ा प्रशंसनीय गुण है वह यह कि अपना लिखा आप ही भूल जाते हैं। आपने प्रथम समुल्लास में ओंकार की व्याख्या करते हुये लिखा है कि 'अवतीत्योम्-रक्षा करने से ओ३म्'

रक्षा करने से ओम् कहलाता है तो यह जो ओम् ईश्वर का नाम है यह स्मरण करने से रक्षा करता है या इस निराकार ओम् की पीतल की शक्ल बनाकर शिर में टांगने से रक्षा करता है यद्वा अपने आप स्वाभाविक धर्म से रक्षा करता रहता है-इस का आपने कुछ नहीं लिखा। गीता कहती है कि ओंकार के स्मरण से उच्च गति मिलती है, फिर यहां पर स्मरण से ही रक्षा क्यों न मानें? आप क्या कहते हैं जरा वेद तो देखलें?

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥४

मुण्डक० खं० २

ॐ का धनुष और आत्मा का तीर बना कर ब्रह्म को लक्ष्य बनावे, फिर सावधान होकर तीर को छोड़े ऐसा करने पर ब्रह्म होजाता है।

यहां पर ॐ का धनुष और आत्मा का बाण छील छाल कर बढ़ई नहीं बनाता किंतु अन्तःकरण में यह घटना होती है। जब ॐ का धनुष बनाया जावेगा तब अन्तःकरण में ॐ का स्मरण होगा, बिना स्मरण किये ॐ का न धनुष बन सकता है और न जीव ब्रह्म बन सकता है फिर आप ईश्वर नाम स्मरण के महत्व को कैसे मिटा देंगे। स्वामी जी आपने आर्याभिविनय में ईश्वर का भजना लिखा है देखिये—

स पूर्वया निविदा कव्यतायो
रिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च
देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४२

ऋ० १।७।३।२

(आर्याभिविनय मं० ४२)

हे मनुष्यो! सो ही आदि सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त परमात्मा था, य कोई कार्य नहीं था तब सृष्टि के आरम्भ स्वप्रकाश स्वरूप एक ईश्वर [ने]

प्रजा की उत्पत्ति और ईक्षणा [विचार] और निकृष्ट दुःख विशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक लोकान्तर रचे हैं, जो ऐसा सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर है उसी विज्ञानादि धन देने वाले को विद्वान् लोग अग्नि जानते हैं, हम लोग उसी को भजें।

इन्द्रियों से अग्राह्य निराकार के नाम का स्मरण ही भजन है तो भी आप नामस्मरण का खण्डन करते हैं-यह आपकी ताजी बुद्धि का नमूना है। मिशरी कहने से मुंह मीठा नहीं होता तो क्या नींबू कहने से भी मुंह में पानी नहीं आता। यदि ऐसा ही है तो आपने दयालु, न्यायकारी आदि ईश्वर के नाम लेने क्यों लिखे?



वेद

वेद पृथ्वी को अचला मानता हुआ सूर्यादि ग्रह पंजरों का पृथ्वी के चारों तरफ भ्रमण मानता है।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वस्तभितं येन नाकः योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः। कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

यजु० ३२। ६

जिसने द्युलोक जल पूर्ण अर्थात् वृष्टिदायक किया है और पृथ्वी निश्चल वृष्टिग्रहण अन्न निष्पादन में दृढ़ की है। जिसने स्वर्लोक जहां आदित्य मण्डल तपता है सो और जिसने दुःख रहित स्वर्गलोक स्तंभित किया है। जो अन्तरिक्ष में वृष्टिरूप जल का निर्माता है उस प्रजापति देवता के निमित्त हवि देते हैं।

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो
निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेन
देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

यजु० ३३। ४३

रात्रि लक्षण तम से वर्तमान देवादिक और मनुष्यादिकों को अपने २

कार्य में योजित करता हुआ एवं समस्त भुवनों को देखता हुआ हिरण्मय देदीप्यमान रथ से सूर्य आता है।

निघंटु ने पृथ्वी को "निर्ऋति" लिखा है। "निर्ऋति" का अर्थ है गमन रहित (चालशून्य)। यदि पृथ्वी चलती होती तो निघंटु इसको "निर्ऋति" कैसे लिखता।

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता
विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो
यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तयः॥

(सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय)

जैसे सूर्य और अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता, जल में गति, पाषाण में स्वभाव से कठिनता है, ऐसे ही स्वभाव से पृथ्वी अचल है, वस्तुओं की शक्ति विचित्र है।

ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोधः क्रमशस्तथा ॥३०॥
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्थाः सिद्धविद्याधरा घनाः ॥३१॥
मध्ये समन्ताद‌ण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥३२॥

सूर्यसिद्धान्त अ० १२

ब्रह्माण्ड के मध्य में जो परिधि है उसे आकाश कक्षा कहते हैं उसके मध्य में नक्षत्र मण्डल का भ्रमण होता है उसके नीचे यथाक्रम शनि, जीव, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र, एक से नीचे एक भ्रमण (अपनी अपनी मध्यकक्षा में) करते हैं उसके नीचे सिद्ध-विद्याधर मेघ हैं और चारों ओर से दोनों बीच ब्रह्माण्ड के मध्य (केन्द्र में) परब्रह्म परमेश्वर की धारणात्मिका शक्ति को धारण किये आकाश में भूगोल सर्वतोभाव से स्थित है।

आर्यसमाज।

(प्रश्न) पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर? (उत्तर) घूमते हैं (प्रश्न)

कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथ्वी नहीं घूमती । दूसरे कहते हैं कि पृथ्वी घूमती है सूर्य नहीं घूमता । इसमें सत्य क्या माना जाय ?

(उत्तर) ये दोनों आधे झूठे हैं क्योंकि वेद में लिखा है कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ यजु० अ० ३ मं० ६

सत्यार्थप्र० समु० ८ पृ० २३१

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है ।

विवेचन ।

(१) क्या मजे की बात है मुसलमानों का सिद्धान्त वेद में से निकल पड़ा । जिन हिन्दुओं का वेद धर्मपुस्तक था, वेद ने उनके सिद्धान्त को खण्डन कर दिया और मुसलमानों के सिद्धान्त को सत्य बना दिया इस प्रकार की घटनायें संसार में कभी देखी नहीं गईं वरन् ऐसा देखा जाता है कि जिसका धर्म पुस्तक होता है उसके सिद्धान्त का मण्डन करता हुआ परपक्ष को मिथ्या ठहराया करता है किन्तु यहां पर इसके विरुद्ध हुआ । इससे हम कह सकते हैं कि वेद का बहाना लेकर परिव्राजकाचार्य ने मुसलमानों की हिमायत की और न्याय का गला घोट डाला है ।

(२) इस मंत्र का सर्पराज्ञी, कद्रू ऋषि, गायत्री छन्द, अग्नि देवता है वेदों का यह नियम है कि जो जिस मंत्र का देवता होता है उस मंत्र में उसी विषय का वर्णन होता है । जब इसका अग्नि देवता है तो पृथ्वी परक अर्थ किस प्रकार हो जावेगा, ऐसा कभी हो ही नहीं सकता किन्तु इस वेदज्ञ महाशय ने यह समझा कि मंत्र में उसके देवता का वर्णन होता है इसको तो संस्कृत ज्ञाता ही समझेंगे, संस्कृत से जो अनभिज्ञ हैं वे इस बात को न समझ कर हमारी बात को सत्य मान लेंगे । सच है, पक्षपात बड़े २ अनर्थ करवा देता है शोक इस बात का है कि यवनों के सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिये हिन्दू ही वेद का गला घोटते हैं ।

(३) इस मन्त्र के अर्थ में 'मातरम्-पितरम्-पुनः' आदि कई एक शब्द बिल्कुल ही छोड़ दिये उनका अर्थ ही नहीं किया । जिस अर्थ में मन्त्र के शब्द ही छूट जायं क्या कभी वह अर्थ भी सत्य हो सकता है ? हमको नहीं मालूम ऐसे

अर्थों को कोई कैसे सच मान लेगा।

(४) यदि हम इस मन्त्र के अर्थ को किसी विद्वान् के सामने रख दें तो कोई भी विद्वान् यह नहीं कहेगा कि इस मन्त्र का यही अर्थ है जो इस के भाषा-टीका में लिखा है। हम इस बात की बहस नहीं करते कि इस मन्त्र में पृथ्वी का वर्णन है या अग्नि का? हमको तो इतना विचार करना है कि मन्त्र के नीचे टीका रूप जो भाषा लिखो है वह इस मन्त्र का अर्थ है या नहीं? इस निर्णय में लाचार होकर सभी मनुष्यों को कहना पड़ेगा कि भाषा में वेद मन्त्र का अर्थ ही नहीं आया। यह तो वही बात हुई किसी मनुष्य ने पूछा 'लोटे' का क्या अर्थ? जिस से पूछा गया उसने उत्तर दिया कि लोटे के माने 'जूता' है। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि ऐसे अर्थ करनेवाले को भी हिन्दू वेद भाष्यकार मान लेते हैं।

वेद मंत्र का ठीक अर्थ देखिये-(आयम्)इस(गौः)यज्ञ सिद्धि के अर्थ यजमान के घर आने जाने वाले (पृश्निः)श्वेत रक्त आदि बहु प्रकार की ज्वालाओं से युक्त अग्नि ने (आ)सब ओर से आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि के स्थानों में (अक्रमीत्) अतिक्रमण किया (पुरः) पूर्व दिशा में(मातरम्) पृथ्वी को (असदत्)प्राप्त किया(च) और (स्वः)सूर्यरूप होकर(प्रयन्)स्वर्ग में चलते अग्नि ने (पितरम्)स्वर्गलोक को (असदत्)प्राप्त किया।

सिद्ध हो गया कि इस मन्त्र में भूभ्रमण नहीं है किन्तु मन्त्र का धोखा देकर बलात्कार भूभ्रमण बतलाया जाता है।

तेरहवीं शताब्दी तक भूतल के समस्त देश धरा का अचलत्व मानते रहे हैं इसके पश्चात् सब से प्रथम ईरान के दार्शनिक "पैथागोरास" ने यह आवाज उठाई कि पृथ्वी घूमती है? इसके पश्चात् 'केप्लर' और सरन्यूटन' ने संसार में इस सिद्धान्त का प्रचार किया? भारतवर्ष में एक 'आर्यभट्ट' नामक विद्वान् हुये, उन्होंने अठारह अधिकार का 'आर्यभट्टि' नामक ग्रन्थ लिखा, इसमें पृथ्वी का अचलत्व और ग्रहपंजर का भ्रमण सिद्ध किया। इस ग्रन्थ के लिखने पर भी उस समय के "लल्ल" और "वराहमिहिर" जो ज्योतिष् के अतिप्रवीण विद्वान् थे उनके सामने आर्यभट्ट ने प्रतिष्ठा नहीं पाई। फिर प्रतिष्ठा पाने के उद्योग से आर्यभट्ट ने एक सौ बीस श्लोक का दूसरा 'आर्यभट्टि' नामक ग्रंथ लिखा और इसमें पैथागोरासके के सिद्धान्त भूभ्रमण को सिद्ध किया किन्तु लल्ल और

वराह ने इसका प्रबल खण्डन किया अतः यह सिद्धान्त दब गया। फिर केप्लर ने इसको उठाया, बाद में सरन्यूटन के उठाने पर यह पुष्ट होकर तालीम में आगया, शिक्षा में आजाने के कारण इस मिथ्या सिद्धान्त को संसार सत्य मानने लगा। जब सब संसार इसको मान बैठा तब स्वा० दयानन्द जी ने वेद से सिद्ध कर दिया। भूभ्रमणवादियों की समस्त युक्तियों को देकर हम खण्डन लिखते हैं पाठक पढ़ें।

(१) भूभ्रमणवादियों का कथन है कि जैसे नाव पर बैठे हुये मनुष्य को नाव का ठहरा रहना और किनारे के वृक्षों का चलना ज्ञान पड़ता है इसी प्रकार पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों को पृथ्वी की स्थिरता और ग्रहों का भ्रमण समझ पड़ता है।

यह उदाहरण यदि निर्दोष होता तो संसार इसके मानने को भी तैयार हो जाता किन्तु इस उदाहरण में भ्रम और प्रत्यक्ष विरोध ये दो दोष हैं इस कारण विचार शील मनुष्य इसको कभी भी मानने को तैयार नहीं।

(क) जहां पर कुछ का कुछ दीखता हो ऐसे ज्ञान को भ्रमजन्य ज्ञान कहते हैं और वह ज्ञान मिथ्या हुआ करता है। कल्पना करो कि एक मनुष्य अंधेरी रात में चलाजा रहा है और रास्ते में एक मोटी रस्सी का तीन हाथ का टुकड़ा पड़ा है, अंधकार के कारण उसको मिथ्या ज्ञान होगया कि यह सर्प है, जैसे रस्सी में सर्पज्ञान मिथ्या और भ्रमजन्य ज्ञान है इसी प्रकार नौका में स्थिरता और नदी के तट के वृक्षों में चलने का ज्ञान भी भ्रमजन्य और मिथ्या ज्ञान है, भ्रमजन्य मिथ्या ज्ञान का चर्चा न्याय, वेदान्त प्रभृति समस्त ही हिन्दू दर्शनों में आता है, दर्शनों ने स्पष्ट कह दिया है कि भ्रमजन्य मिथ्या ज्ञान असत्य होता है अत एव त्याज्य है; फिर हम किस आधार पर नौका की स्थिरता और किनारे के वृक्षों का चलना इस भ्रमजन्य ज्ञान को सत्य मानें? संसार के आगे नाव और किनारे के वृक्षों के उदाहरण को रखने वाले की बुद्धि में यह दोष उस समय नहीं आया किन्तु जो लोग इसको समझ रहे हैं वे इस प्रकार के उदाहण को लड़कों का खेल समझ कर छोड़ देते हैं।

(ख) नौका में स्थिरता बुद्धि और वृक्षों में संचलन बुद्धि असावधानी से होती है। यदि तुम नौका पर बैठ अपने मन को रोक सावधानता से देखोगे तो यह विपरीत ज्ञान हो ही नहीं सकता। जो बात असावधानी से मनुष्य के

अन्तः करण में बैठी है उसको सत्य मानना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है वरन् सावधानी से उसका ज्ञान अंतः करण से निकाल देना ही मनुष्य कर्तव्य है। जब हम सावधानी से देखते हैं तब हमको कहना पड़ता है कि यह उदाहरण ही गलत है। नाव का न चलना, वृक्षों का चलना यह ज्ञान होता ही नहीं, जो ज्ञान नहीं होता उसको लेकर पुष्टि करना यह उदाहरण बनाने वाले और उदाहरण को सच्चा समझने वालों की भूल है, चलो पहिले उदाहरण का सफाया हो गया।

(ग) जो पृथ्वी को अचल और ग्रह गणों का भ्रमण मानते हैं उनका यह कथन है कि जैसे कुछ मनुष्य वृत्ताकार चबूतरे पर खड़े हों और उस चबूतरे की बहिर्भूमि पर घोड़े दौड़ रहे हों, इसी प्रकार हम वृत्ताकार गोल पृथ्वी पर ठहरे हैं और घोड़ों की भांति भपंजर पृथ्वी की परिक्रमा दे रहा है, भूभ्रमणवादियों के पास कोई युक्ति, कोई प्रमाण ऐसा नहीं है कि जिससे इस उदाहरण का खण्डन हो जावे, अपने दिये उदाहरण की पुष्टि में गिर जाना और दूसरे के दिये उदाहरण के खण्डन में चुप रह जाना यह भूभ्रमणवादियों की अत्यन्त कमजोरी है, जो विवेकशाली मनुष्यों के अन्तःकरण में यह सिद्ध कर देती है कि भूभ्रमणवादियों के कथन में कोई सार नहीं केवल हठ धर्मी और अभिमान है।

(२) भूभ्रमणवादियों का कथन है कि सहस्रों तारे पृथ्वी से अत्यन्त दूर हैं उनकी रोशनी पृथ्वी पर इतनी देर से आती है कि उस रोशनी से जब हिसाब लगाया जाता है तो करोड़ों मील दूरी उन तारों की सिद्ध हो जाती है, ऐसे तारे जब पृथ्वी के चारों तरफ घूमेंगे तब उनकी क्या चाल होगी यह दोष पृथ्वी के अचला होने में आता है।

इसका उत्तर यह है कि जिनका प्रवेश भपंजर में नहीं है वे ऐसी शंका किया करते हैं। सूर्य सिद्धान्त ने उन ग्रहों के नाम स्पष्ट लिख दिये जो पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं। आकाशस्थ सब ही तारे चौबीस घंटे में पृथ्वी के चारों ओर नहीं घूमते, पुच्छल तारों से पता चला है कि बाज बाज पुच्छल तारा पृथ्वी के जिस भाग में आया था उसी स्थान पर वह सैकड़ों वर्षों के पश्चात् आता है फिर यह कैसे माना जा सकता है कि आकाश के सब तारे चौबीस घंटे में पृथ्वी की एक परिक्रमा दे जाते हैं? आप आकाश गंगा को ही ले लें, चातुर्मास्य में एक ऐसी सड़क सी दिखलाई देती है जिसकी लम्बाई उत्तर दक्षिण होती है और

उसमें तारों की बहुतायत रहती है, चातुर्मास्य में वह दीखती है जाड़े और गर्मी में नहीं दीखती फिर हम कैसे मान लें कि आकाश गंगा के तारे चौबीस घंटे में पृथ्वी का दौरा करते हैं,इन सब झगड़ों को निबटाने के लिये सूर्य सिद्धान्त ने उन ग्रहों का नाम स्पष्ट लिख दिया जो चौबीस घंटे में पृथ्वी की परिक्रमा दे आते हैं। इन ग्रहों को बतलाने वाला श्लोक हम ऊपर लिख चुके हैं।

अब हम उन प्रमाणों को रखते हैं कि जिनमें युक्तिवाद को लेकर भूभ्रमण का खण्डन किया गया है पाठक पढ़ने का कष्ट उठावें।

भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षिति-
रित्यपरे वदन्ति नोडुगणः।
यद्येवं श्येनाद्या नखात्पुनः
स्वनिलयमुपेयुः ॥ ६ ॥
अन्यच्च भवेद्भूमेरन्हा
अन्तरंहसा ध्वजादीनाम्।
नित्यं पश्चात्प्रेरण-
मथाल्पगास्यात्कथं भ्रमति ॥ ७ ॥

वराहमिहिर।

जो यह कहते हैं कि पृथ्वी ही घूमती है भपंजर नहीं घूमता तो उनसे हमारा यह प्रश्न है कि ऐसा होने पर पक्षी अपने घोसलों में नहीं जा सकेंगे ॥ ६ ॥ यदि पृथ्वी तीव्र वेग से पूर्वाभिमुखी भ्रमण करती है तो ध्वजा पताका पृथ्वी के वेग से सर्वदा पश्चिम की तरफ को ही उड़ेंगी और यदि पृथ्वी मंद वेग से पूर्व को चलती है ऐसी दशा में २४ घण्टे में उसका पूर्ण भ्रमण नहीं हो सकेगा ॥७॥

यदि च भ्रमति क्षमा तदा
स्वकुलायं कथमाप्नुयुःखगाः।
इषवोऽभिनभः समुज्झितः
निपतन्तः स्युरपाम्पतेर्दिशि ॥ ४२ ॥
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो
वरुणाशाभिमुखो व्रजेद्धनः।

अथ मंदगमात्तदा भवेत्
कथमेकेन दिवा परिभ्रमः ॥ ३ ॥
शि० वृ० गो०।

यदि पृथ्वी चलती है तो फिर पक्षी अपने घोसलों में नहीं पहुँच सकेंगे और आकाश का फेंका हुआ बाण पश्चिम में गिरेगा ॥ ४२ ॥ यदि पृथ्वी पूर्वाभिमुखी घूमती है तो फिर बादल हमेशा पश्चिम को जायगा। यदि कहो कि पृथ्वी धीरे धीरे चलती है इस कारण बादल पश्चिम को नहीं जाते तो ऐसी मंद-गति से एक दिवस में पृथ्वी का भ्रमण कैसे होगा ॥ ४३ ॥

* स्पष्टीकरण *

इन श्लोकों में भूभ्रमणवादियों के सिद्धान्त में पांच दोष दिखलाये हैं (१)वायु का जोरदार चलना (२) बड़े जोर के साथ ध्वजा पताकाओं का सर्वदा पश्चिम को उड़ना (३) बादल का पश्चिम को जाना (४) बाण का पश्चिम को गिरना (५) पक्षियों को घोंसले का न मिलना।

इन दोषों को हम क्रम से पाठकों के आगे रखते हैं, पाठक समझने का उद्योग करें। आकाश में किसी चीज के घूमने या पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण में से किसी वस्तु के जाने से आकाश में धक्का लगता है, इस संचलन शक्ति से वायु पैदा हो जाता है,आप हाथ में पंखा लीजिये और उसको घुमाइये निश्चल और शान्त आकाश में पंखे के घूमने से वायु पैदा हो जावेगा। जिस कमरे में बिजली का पंखा लगा रहता है उस पंखे को जितने जोर से घुमाया जावेगा उतना ही वायु जोर से चलेगा, जब मोटर जोर से चलता है तो आकाश में उसका धक्का लग कर जोरदार वायु उत्पन्न होजाता है और वह वायु उस दिशा को जाता है कि जिस दिशा से मोटर आ रहा है, इसी प्रकार बाम्बे मेल या कलकत्ता मेल जब अपनी पूरी चाल पर चलता है तो आकाश में धक्का लग कर इतना जोरदार वायु पैदा हो जाता है कि उस वायु के जोर से रेल की सड़क के पास के पत्ते,घास, कपड़े उड़ कर अपने स्थान को छोड़ देते हैं। अब सिद्ध हो गया कि जो वस्तु जितने वेग से चलेगी उतना ही भारी धक्का उसका आकाश में लगेगा, धक्के के तुल्य वायु पैदा होगा और वह वायु उस दिशा को जावेगा जिधर से वह वस्तु आ रही है। मोटर का उदाहरण हमने दिखला दिया अब रेल का और समझलें। रेल पर एक पताका बांध दीजिये,जब रेल चलेगी तब वह पताका उड़ कर उसी

तरफ जावेगी जिधर से वह रेल आ रही है। सभी लोग रेल का सफर करते हैं, रेल में जब कोई मनुष्य खिड़की के बाहर धोती सुखाने लगता है तब वह धोती बड़े वेग से उड़ कर उसी दिशा को जाती है जिस दिशा से रेल आरही है।

पृथ्वी की परिधि (दायरे का घेरा) २५ हजार मील है, जैसे जोर से गेंद घुमाई जाती है या जोर से कुम्हार का चाक घूमता है इनके मत में वैसे ही पृथ्वी घूमती है, २५ हजार मील पृथ्वी का २४ घंटे में दौरा हो जाता है, यदि हम इस पर त्रैराशिक लगालें तो एक घंटे में १०४१ मील और एक मिनट में १७ मील घूमती है। पृथ्वी की चाल तेज और पृथ्वी का आकार विस्तृत इन दो कारणों से आकाश में जोरदार धक्का लगेगा उससे तीव्र वेगवान् वायु उत्पन्न होगा जिससे पृथ्वी पर सर्वदा भयंकर जोरदार आंधी चला करेगी, ऐसा प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता फिर कोई विचारशील मनुष्य किस प्रकार पृथ्वी का घूमना मान ले? भूभ्रमणवादियों के पास इसका कोई उत्तर नहीं।

(२) हम यह पहिले लिख आये हैं कि मोटर और रेल के धक्के से जो वायु पैदा होता है वह उस दिशा को जाता है जिस दिशा से रेल या मोटर आ रही है। हमारी पृथ्वी पूर्व को जा रही है इससे उत्पन्न हुआ वायु सर्वदा पश्चिम को जावेगा, पश्चिमको हवा जाने के कारण संसार में जितनी भी ध्वजा पताका लगी हैं, वे सर्वदा जोर से पश्चिम को उड़ा करेंगी ऐसा प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता फिर हम कैसे मानलें कि पृथ्वी घूमती है?

(३) पृथ्वी के भ्रमण से एक और दोष आवेगा जिसका दूरीकरण भूभ्रमणवादी नहीं कर सकते वह यह कि बादल सर्वदा पश्चिम को जाया करेंगे, कभी भी पश्चिम से पूर्व को बादल न आवेगा, इसको इस प्रकार समझिये कि जो बादल पूर्व से उठ कर पश्चिम को जा रहा है वह तो पश्चिम को जावेगा ही किंतु जो बादल पश्चिम से उठ कर पूर्व को जावेगा हमारी दृष्टि में वह भी पश्चिम को जाता ही नजर आवेगा, इसको इस तरह समझिये कि बादल पूर्व को जा रहा है और पृथ्वी भी पूर्व को जा रही है, बादल की चाल धीमी और पृथ्वी की चाल तेज है, जैसे २ समय बीतेगा वैसे २ पृथ्वी और बादल का फासला बढ़ेगा तब हमको यह मालूम पड़ेगा कि बादल पश्चिम को जा रहा है, अन्त में वह बादल धीरे २ हम से अत्यन्त दूर हो जावेगा और फिर पश्चिम दिशा में जो बादल हमको दिखलाई दे रहा था उसका दीखना भी बन्द हो जावेगा किंतु ऐसा प्रत्यक्ष

में नहीं होता, फिर हम पृथ्वी का भ्रमण किस आधार पर मान लें, क्या केवल इसी आधार पर मानना होगा कि यह योरूपीय सिद्धान्त है और एशिया वाले बेवकूफ एवं यूरोपवाले हमेशा विद्वान् होते हैं ?

(४) पृथ्वी के भ्रमण से जो चतुर्थ दोष उत्पन्न होता है वह यह है कि बाण पश्चिम को जायगा। कल्पना करो कि एक मनुष्य ने धनुष पर रखकर तीर ऊपर को फेंका अब वह तीर पश्चिम में गिरेगा कारण इसका यह है कि धनुष से तीर निकल कर आकाश में गया और फिर वहां से लौटा, आने जाने में बाण को लगा चौथाई मिनट, अब चौथाई मिनट में जहां से वह बाण ऊपर को फेंका गया है वह भूमि सवा चार मील पूर्व को चली गई इस कारण बाण सर्वदा पश्चिम में गिरेगा किंतु ऐसा नहीं होता, जब प्रत्यक्ष में बाण पश्चिम में नहीं गिरता फिर प्रत्यक्ष विरुद्ध भूभ्रमण को कोई विचारशील मनुष्य कैसे मान लेगा, केवल वे ही लोग मानेंगे जो लार्ड मेकाले की दूषित शिक्षा पद्धति के पंजे में पड़कर अपने विचार और अपनी बुद्धि को तिलांजलि दे चुके हैं।

(५) यदि पृथ्वी घूमती है तो फिर पक्षियों को घोसले नहीं मिलेंगे। कल्पना करो कि प्रातः काल छः बजे कबूतर आकाश को उड़ गया और वह आठ बजे उतरा, अब वह घोंसले में जाना चाहता है तो उसको क्या घोंसला मिल सकेगा ? वह दो घण्टे उड़ा है दो घण्टे में उसका घोंसला दो हजार मील आगे बढ़ गया ? अब हजरत आकाश में ही फिरे मारे मारे। यदि कबूतर ऊपर उड़ कर तुरंत ही उतरने लगा, अब भी उसका घोंसला न मिलेगा क्योंकि उड़ने में लगे तीन मिनट, तीन मिनट में उसका घोंसला गया ५१ मील, अब वह जो लौट रहा है तो उसकी चाल धीमी है और पृथ्वी की चाल तेज है अब हजरत यह भी आकाश में ही रहा किन्तु कबूतर को घोंसला मिल जाता है फिर हम कैसे मान लें कि पृथ्वी घूमती है ?

* विचार *

इन समस्त प्रश्नों के ऊपर भूभ्रमण वादी एक उत्तर देते हैं कि वायु और ध्वजा, पताका, बादल, बाण, कबूतर इन सबको भूवायु पूर्व को खैंचता जाता है इस कारण ये पांचों दोष नहीं आते, इस विषय में भूभ्रमणवादी भिन्न भिन्न दृष्टान्त भी देते हैं उन सबका विचार पाठक क्रम से सुनें।

(१) इनका कथन है कि रेल में बैठकर जब हम गेंद ऊपर को फेंकते हैं तो वह

गेंद जिधर से गाड़ी आ रही है उस तरफ नहीं जाती किंतु उसमें रेल का वेग भरा रहता है इस कारण गेंद भी रेल के साथ खिंची चली जाती है ऐसे ही पृथ्वी के ऊपर रहने वाली समस्त वस्तुओं को भूवायु पृथ्वी की चाल पर पूर्व को खैंचता है।

इसका उत्तर यह है कि गेंद को ऊपर फेंकते समय हाथ का ऐसा इशारा दिया जाता है जिससे गेंद ठीक हमारे हाथ में आजावे और जब इशारे में फर्क पड़ जाता है तब गेंद को हाथ में लेने के लिये हाथ बढ़ाना पड़ता है। हम रेल में बैठे ही बैठे गेंद को इस इशारे से फेंक सकते हैं कि गेंद एक हाथ उधर को चला जावे जिधर को रेल जा रहा है क्या ऐसी दशा में भूभ्रमणवादी गेंद में रेल का डबल वेग मानेंगे ? गेंद में अन्तर अवश्य आता है किंतु वह इतना कम है कि जो ज्ञान में नहीं आसकता।

(२) भूभ्रमणवादियों का कथन है कि रेल की लालटेनों के पास पतंगे घूमते हैं और वे रेल के वेग से रेल की चाल पर चले जाते हैं यह उदाहरण सिद्ध करता है कि पृथ्वी के ऊपर की समस्त वस्तुयें भूवायु से खिच कर पृथ्वी की चाल पर जाती हैं।

इसका उत्तर यह है कि पतंगे रेल के भीतर आगये, रेल उनका आधार हो गई, भीतर ही क्या यदि रेल के ऊपर भी कोई मनुष्य बैठ जावे तो वह रेल के साथ चला जावेगा किंतु जिनका आधार रेल नहीं है, जो रेल से किसी प्रकार का लगाव नहीं रखते उनको रेल का वायु या वेग नहीं खैंच सकता। कल्पना करो कि कुम्हार के चाक में चूहों ने छेद कर लिया और भीतर चूहे बैठ गये तो वे चाक के साथ घूम सकते हैं किन्तु जो चूहे चाक के ऊपर हैं वे नहीं घूम सकेंगे इसी प्रकार रेल के ऊपर जहां पर रेल का लगाव नहीं है वहां पर कोई पतंगा या पत्ता अथवा मनुष्य हो तो उसको रेल का वेग या वायु रेल के जाने वाली दिशा को कभी भी न खैंच सकेगा जैसे मुण्डी गाड़ियों में रक्खे हंडे पर पतंगे नहीं उड़ते फिर हम कैसे मान लें कि ध्वजा पताका, बाण, बादल कबूतर जो पृथ्वी से लगाव नहीं रखते उनको भूवायु खैंच ले जावेगा ? इसके ऊपर भूभ्रमणवादियों को सोचना चाहिये।

(३) कई एक सज्जनों का यह कथन है कि जब हम रेल की खिड़की में बैठ कर कोई वस्तु नीचे फेंकते हैं तब वह हमारे निशान पर नहीं गिरती वरन्

कुछ खिचकर आगे को गिरता है अब हमको मानना पड़ता है कि उस वस्तु को रेल की वायु ने आगे को खैंचा इसी प्रकार पृथ्वी के समस्त पदार्थ भूवायु से पूर्व को खिचते हैं।

उत्तर इसका यह है कि जब तुम कोई चीज रेल की खिड़की से नीचे फेंकोगे तो पहिले रेल की हवा के जोर से वह पीछे को हटेगी क्योंकि रेल जिधर को जाती है उधर ही से जोरदार वायु रेल के आने की दिशा को दौड़ता है, यदि वस्तु हलकी है तो हवा के धक्के से वह इतनी उड़ेगी कि उसके उड़ने का तुमको ज्ञान हो जावेगा, यदि चीज भारी है तो उसके पीछे को हटने का ज्ञान तुमको न होगा क्योंकि पहियों का वायु धक्के से उस दिशा को जाता है कि जिस दिशा को रेल जारही है इसका कारण भी समझ लीजिये। जब एक पहिया घूम कर वायु को पीछे को फेंकता है तब वह वायु दूसरे पहिये का धक्का खाती है वह धक्का उस वायु को वापिस आने के लिये बाध्य कर देता है, जब एक पहिया दूसरे आगे के पहिये के वायु को वापिस भेजता है तो इसी सिद्धान्त से समस्त पहिये वायु को आगे को धिकाते रहते हैं, पहियों की शक्ति अधिक हो जाती है इस कारण से पहियों के समीप की हवा पीछे को न जाकर आगे को जाती है। आप खिड़की से एक किनारा पकड़कर कोई कपड़ा उड़ावें वह उसी दिशा को उड़ेगा जिधर से रेल आरही है इस से सिद्ध हुआ कि खिड़की से पहिये तक की वायु पीछे को जा रही है फिर आप रेल के पहियों के समीप घास पत्ते-रुई या बारीक कपड़ा रख दीजिये जब रेल आवेगी पहियों की वायु के स्पर्श से ये वस्तुयें आगे को हट जावेंगी, अब सिद्ध हो गया कि ऊपर का वायु वस्तु को उस तरफ जाने के लिये बाध्य करता है जिधर से रेल आरही है और पहियों का वायु आगे को हटाता है. पृथ्वी में पहियों की लाइन नहीं लगी फिर किस आधार से पृथ्वी से उत्पन्न हुआ वायु पूर्व को जावेगा, भूभ्रमणवादियों को गहरी दृष्टि से इसका विचार करना चाहिये।

(४) भूभ्रमणवादी कहते हैं कि रेल में बैठे हुये हम जब किसी नदी के किसी नियत स्थान पर पत्थर फेंकते हैं तो वह पत्थर नियत स्थान पर न पहुँच कर स्थान से उस तरफ बढ़ कर गिरता है जिधर को रेल जा रही है इससे सिद्ध होता है कि रेल के वायु ने उसको खैंच लिया।

इसका उत्तर यह है कि यह तो कभी त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं हो सकता कि रेल का वायु वस्तु को उस तरफ खैंचता है जिधर को रेल जा रही है। आप खिड़की के बाहर मुंह करके खिड़की में कपड़ा उड़ा कर या रेल पर पताका लगाकर

यह निश्चय कर सकते हैं कि रेल का वायु पीछे को जाता हुआ वस्तुओं को भी पीछे को फेंकता है फिर नहीं मालूम रेल के वायु का आगे जाना भूभ्रमणवादी क्यों मानते हैं क्या इनको जब कोई उत्तर न आवेगा तब दुराग्रहसे काम लेंगे ? विज्ञान और दुराग्रह यह बड़ी मसखरी की बात है, सीधे सीधे क्यों नहीं कहते कि हमारे पास भूभ्रमण की पुष्टि में कोई सच्ची युक्ति नहीं है ? पत्थर जो नदी के किसी नियत स्थान पर फेंका जाता है पहिले उसकी लाइन मिलाई जाती है, जिस समय पत्थर और स्थान की लाइन मिलाई गई, छोड़ते समय में रेल कुछ आगे को बढ़ गई इस कारण गिरने की लाइन से चल कर कहीं अन्यत्र गिरेगा इससे पृथ्वी की भूवायु द्वारा वस्तुओं के खिंचने की पुष्टि करना भूल ही नहीं वरन् भारी भूल है।

(५) कई एक लोगों का कथन है कि हवाई जहाज से जो डाक के थैले फेंके जाते हैं वे थैले नियत स्थान पर न गिर कर कुछ आगे को गिरेंगे क्योंकि वे हवाई जहाज की वायु से आगे को खिंच जाते हैं।

इसका उत्तर यह है कि थैलों का नियत स्थान पर न गिरना इसका कारण जहाज का वायु नहीं है वरन् लाइन का अन्तर और पृथ्वी का वायु है। जिस लाइन से थैलों के फेंकने का इरादा किया था फेंकते समय हवाई जहाज आगे बढ़ गया इस कारण थैले गिरने की लाइन पहिली लाइन से कुछ आगे बन गई, दूसरा असर थैले पर वायु का होगा, यदि वायु पश्चिम का होगा तो थैला पूर्व को गिरेगा पूर्व का होगा तो पश्चिम को। थैलों से और भूवायु से सादृश्यता ही नहीं मिलती फिर हम जहाज के थैलों के आधार से कैसे मानलें कि भूवायु उन पदार्थों को खैंच लेता है जो पृथ्वी से लगाव नहीं रखते ?

इनका कथन है कि ध्वजा पताकाओं को भूवायु पूर्व को खैंचता है किन्तु यह निरी गप्प है, जब पूर्व का जोरदार वायु चलता है तब ध्वजा पताका बड़े जोर से पश्चिम को उड़ती हैं इस समय में क्या भूवायु की अन्त्येष्टि हो गई ? अब वह जाने वाली ध्वजा पताकाओं को क्यों नहीं रोकता क्या अब भूवायु नष्ट हो गया ? भूभ्रमणवादियों के पास इसका क्या उत्तर है ?

भूवायु न पृथ्वी से लगाव रखता है और न पदार्थों को खैंचता है, जब भूभ्रमणवादियों को कुछ नहीं सूझता तब भूवायु द्वारा खिंचने का झूठा। अड़ंगा लगा बैठते हैं इसकी पुष्टि में हम कुछ उदाहरण पाठकों के आगे रखते हैं सावधानी से पढ़ने का कष्ट उठावें। पृथ्वी से लगाव न रखने वाले कबूतर को यदि भूवायु पूर्व को खैंचेगा तब तो एक भी बादल पश्चिम को न जा सकेगा।

बादल उठा और भूवायु से खिंच कर पूर्व को जाने लगा इससे पृथ्वी के पश्चिम भाग में बादल न जा सकेगा इसी कारण से वृष्टि भी न होगी। जिस समय बादल जोर से उठते हैं और बादलों के ऊपर बादल दिखलाई देते हैं उस समय कभी २ ऐसा भी अवसर आ जाता है यह हमने अपनी आँख से देखा है और लोगों को दिखलाया है, नीचे के भाग में पूर्व की हवा है इस कारण बादल पश्चिम को जा रहा है और ऊपर के भाग में पश्चिम की हवा है इस कारण बादल पूर्व को जाता है प्रायः यह नियम है कि जिधर को हवा जायगी उधरको ही बादल जावेगा, भूवायु बादल को नहीं खैंचता फिर हम यह क्यों न मान लें कि भूभ्रमणवादियों कोजब कुछ नहीं सूझता तब भूवायु द्वारा खिंचने का झूंठा धोखा दे देते हैं।

भूवायु का प्रभाव वस्तु पर पड़ता ही नहीं, समझिये। कल्पना करो कि एक मनुष्य ने जर्मन से एक ऐसी बन्दूक मंगवाई कि जिसकी गोली पांच फर्लांग पर गिरती है, जब वह गोली पूर्व को छोड़ी जाती है तब पाँच फर्लांग पर गिरती है, उतनी ही देर में पश्चिम में भी पांच फर्लांग पर गिरती है, इस गोली पर भूवायु का प्रभाव क्यों नहीं? क्या भूवायु गोलीसे डर जाता है? जब गोली पर भूवायु का प्रभाव नहीं है तो ऊपर को छोड़े हुये बाण पर भूवायु का प्रभाव हम बुद्धि को नीलाम करके कैसे मान लें?

रेल और मिलों के इन्जनों का धुआं पहिले ऊपर को उड़ता है जब वह इंजन के स्टीम से लगाव छोड़ देता है तब यदि पश्चिम की हवा है तो वह पूर्व को और पूर्व की हवा है तो पश्चिम को, उत्तर की हवा होने पर दक्षिण को जाता है इस धुएं को भूवायु खैंच कर पूर्व को क्यों नहीं ले जाता? नहीं मालूम भूभ्रमणवादी इसका कब जवाब देंगे?

हमने देखा है कि भूवायु के प्रभाव से जहाज की गति में कोई अन्तर नहीं आता। कल्पना करो कि कानपुर में एक हवाई जहाज आगया वह एक घन्टे में अस्सी मील की रफ्तार से चलता है, जब उसको पूरी चाल पर पूर्व दिशा को चलाते हैं तब वह एक घंटे में अस्सी मील जाता है और जब पश्चिम को चलाते हैं तब भी एक घंटे में अस्सी ही मील जाता है इसी प्रकार उत्तर या दक्षिण किसी दिशा में उस जहाज को चलावें पूरी रफ्तार से जब वह चलाया जावेगा तो फी घंटा अस्सी मील ही जावेगा, पूछना यह है कि इस हवाई जहाज पर भूवायु की शक्ति का प्रभाव क्यों नहीं पड़ता और कबूतर पर क्यों पड़ जाता है क्या भूवायु हवाई जहाज से डर जाता है? वास्तव में भूवायु में यह शक्ति नहीं है कि वह पदार्थों को खैंच कर

पृथ्वी की चाल पर पूर्व को ले जावे हां जब भूभ्रमणवादियों को प्रतिवादियों की शंकाओं पर कुछ नहीं सूझता तब भूवायु के खैंचने का झूंठा अड़ंगा लगाकर जान बचाने का उद्योग करते हैं।

* अनुभव *

अमेरिका वालों ने ताराओं के देखने की एक दुर्बीन बनाई, उस दुर्बीन से लोगों को तो तारे दीखे किंतु हमने तारों को न देख कर दुर्बीन में यह देखा कि पृथ्वी अचला है वह कभी एक इन्च भी अपने स्थान से नहीं हटती, सुनिये कथा जैपुर, उज्जैन, देहली और काशी में जयपुराधीश महाराज जयसिंह के बनवाये ज्योतिष के यंत्र हैं, इन सब स्थानों में एक एक यंत्र ऐसा भी है कि जिससे ध्रुव का दर्शन होता है, इस यन्त्र में दक्षिण की तरफ से यन्त्र का आरम्भ होकर यन्त्र की दीवार ऊंची उठती हुई उत्तर को जाती है, उत्तर के आखिरी सिरे पर एक वृत्ताकार लोहे का कड़ा है उसका लम्बा भाग दीवार की ईंटों में चिन दिया गया है अतएव उत्तर के कोने पर केवल वृत्ताकार जिसका व्यास सवा इन्च का है लगा हुआ है, एक ऐसा ही कड़ा दक्षिण की तरफ यन्त्र के उस भाग में लगा है जहां से यन्त्र का आरम्भ होता है जब मनुष्य खड़ा होकर नीचे के कड़े से दृष्टि की लाइन ऊपर के कड़े के बीचों बीच लाता है उस सीध में ध्रुव दीख पड़ता है।

एक दिन उजियारी रात में माननीय महामहोपाध्याय श्री १०८ पं० अयोध्यानाथ जी नई बस्ती वाले अमेरिका वालो दुर्बीन लेकर काशी के मान मन्दिन्र में पहुँचे उन्होंने उस दुर्बीन से ध्रुव को देख कर एक भूपंजर का नकशा बनाया, दश बजे रात के वे चलने लगे उन दिनों हम काशी में पढ़ा करते थे और मानमन्दिर में ही रहते थे एवं हम ज्योतिष इन्हीं पूज्य महामहोपाध्याय जी से पढ़ते थे तो हमारा इनका गुरु शिष्य सम्बन्ध था। मैंने कहा कि गुरु जी दुर्बीन छोड़ते जाओ मैं तीन बजे लेता आऊंगा, पूज्य पंडित जी भजन पूजन से निवृत्त होकर तीन बजे रात से विद्यार्थियों का पाठ आरम्भ कर देते थे और साढ़े छः बजे प्रातःकाल पढ़ा कर पढ़ाने की गद्दी छोड़ देते थे इस कारण मैंने कहा कि मैं तीन बजे दुर्बीन लेता आऊंगा, गुरु जी ने दुर्बीन मुझे दे दी, उस समय चन्द्रमा का प्रकाश था इस कारण बिना दुर्बीन के ध्रुवतारा स्पष्ट नहीं दीखता था। मैंने साढ़े दश बजे कुर्सी डाल और उस पर बैठ दुर्बीन लगाई, डेढ़ बजे रात के बन्द कर दी, साढ़े दश बजे से डेढ़ बजे तक ध्रुवतारा दुर्बीन से उन लोहे के वृत्तोंमें दीखा करा, जहाँ साढ़े दश बजे था वहां ही डेढ़ बजे रहा एक बाल कितना भी फर्क उसमें न पड़ा, बस हमको ज्ञान होगया

कि ध्रुवतारे को शास्त्रों ने स्थिर माना है और इधर पृथ्वीको अचला कहा है वास्तव में ये दोनों ही नहीं चलते यदि दोनों में से कोई एक चलता होता तो किसी न किसी समय इस लाइनसे ध्रुवतारा पूर्व पश्चिम अवश्य हो जाता। अब हम पूंछना चाहते हैं कि सैकड़ों वर्ष के बने हुये यन्त्र में आज तक ध्रुव उसी स्थानपर दीखता है जिस स्थान पर यन्त्र के बनने के समय था, यदि हम पृथ्वी को चलने वाली मान लें तो फिर ध्रुव सैकड़ों वर्ष तक लाइन पर कैसे रहेगा? मजा रहा, जो दुर्बीन तारे देखने को बनाई गई वह पृथ्वी का अचलत्व सिद्ध कर गई इसी को कहतेहैं "जादू तो वह जो शिर चढ़ के बोले।

कई एक मनुष्य यह कहने लगते हैं कि पृथ्वी की कीली पर ध्रुव है, यह कोरी गप्प है। भूभ्रमणवादियों ने यह माना है कि सूर्य्य सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक लिरा तारा की तरफ जा रहा है। लिरा तारा की तरफ जाते हुये सूर्य्य की पृथ्वी एक साल में परिक्रमा करती है और सवा सत्ताइस दिन में चलती हुई पृथ्वी की चन्द्रमा परिक्रमा करता है। क्या ध्रुवतारा भी पृथ्वी की चाल पर चल कर सूर्य की परिक्रमा करता है? दुर्जनतोषन्याय से हम यह भी मान लें कि ध्रुव पृथ्वी की कीली पर है तो भी ध्रुव के नीचे के देश भलेही उस स्थानमें रहें किन्तु काशी आदि जो ध्रुव से दक्षिण में हैं पृथ्वी के भ्रमण से वे किसी समय उत्तर में अवश्य आवेंगे ऐसा नहीं होता अतएव भूभ्रमणमिथ्या और वेद का गला घोट कर वेद से जो भूभ्रमणवादियों की पुष्टि की गई पुष्टि करने वाला वह स्वामी दयानन्द जी का लेख भी मिथ्या है।

स्वर्ग।

वेद।

वेद ने स्वर्गादि लोकों को इस मृत्युलोक से भिन्न माना है। इस विषय में वेद लिखता है कि:—

> अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः
> शुचयः शुचिमपियन्ति लोकम्।
> नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः
> स्वर्गे लोके बहुस्त्रैणमेषाम्॥ अथर्व० ४।३४।२

घृतहृदा मधुकूलाः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उपयन्तुसर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमानाः ॥

अथर्व० ४ । ३४ । ६

अस्थिरहित, पवित्र, वायु, से निर्मल स्वच्छ हुये जीव स्वर्ग लोक को पहुँचते हैं, उनका शिश्न कामाग्नि जला नहीं सकता, स्वर्गलोक में इनके लिये बहुत स्त्रियां हैं। जिनमें घृत के तड़ाग हैं, जिनके किनारों पर शहद है, जिनमें अमृत ही जल है, दूध से और दही से जो भरे हैं तेरे लिये ये सब धारा बन कर स्वर्ग में प्राप्त हों।

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति
न यत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वाऽशनाया पिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥

कठोपनिषद्

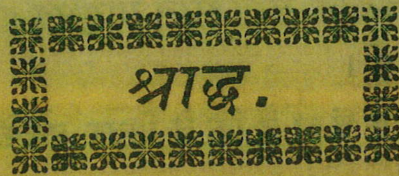
स्वर्गलोक में किसी प्रकार का भय नहीं है वहां तुम बुढ़ापे से नहीं डरोगे क्योंकि स्वर्गस्थ देव बूढ़े नहीं होते, भूख और प्यास इन दोनों को पार करके शोक को छोड़ कर तुम भोगों को भोगोगे। मर्त्यलोक से स्वर्ग कितनी दूर है इसको बतलाता हुआ वेद लिखता है कि:—

सहस्राश्वीनेवा इतः स्वर्गो लोकः ।

ऐतरेय ब्रा० ७ । ७

बड़े मजबूत, पवन के समान वेग रखने वाले एक सहस्र घोड़े एक दिन में जितने मार्ग को चल सकते हैं उतनी दूर यहां से स्वर्ग है या तेज वेग वाला एक घोड़ा एक दिन में जितने मील पहुँचता है उसका सहस्र गुणित दूर यहां से स्वर्ग है स्वा० दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि सुख का नाम स्वर्ग और दुःख का नाम नरक है। अब पाठक मिलालें कि आर्यसमाजका मत वैदिक है या वेद विरुद्ध ?

———



वेद ।

वेदों में पितृयज्ञ और धर्मशास्त्रों में इसको श्राद्ध कहते हैं। वेद के प्रत्येक मन्त्र से यह सिद्ध होता है कि श्राद्ध मृतक पितरों का होता है। आवाहन देखिये

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिता ।
सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥

अथर्व० कां० १८ । २ । ३४

जो गाड़े और जो बन में पड़े रह गये तथा जो फूंके एवं जो जीवित ही स्वर्ग को चले गये हे अग्निदेव ! तुम इन सब पितरों को हवि खाने को बुला लाओ। अथर्ववेद में पितरों के बुलाने का यह मन्त्र है और यजुर्वेद में पितरों के आवाहन का जो मन्त्र है वह यह है।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽ-
ग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽ-
धिब्रुवन्तु तेवन्त्वस्मान् ॥

यजु० १९ । ५८

सोम के योग्य अग्निद्वारा स्वादित वा स्मार्त हमारे पितर देवताओं के गमन योग्य मार्गों से आवें। इस यज्ञ में अन्न से प्रसन्न होते मानसिक उपदेश दें और वे हमारी रक्षा करें।

जो मृतक पितर पितृलोक में जाते हैं वे इस पितृयज्ञ श्राद्ध में सूक्ष्म शरीर से भोजन खाने के लिये स्वतः आते हैं ऐसे पितरों को इन दो मन्त्रोंमें बुलाया है। इसी के ऊपर मनु जी लिखते हैं कि:—

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥

मनु० ३ । १८९

निमन्त्रित पितर ब्राह्मणोंके साथ साथ वायुभूत होकर आते हैं और ब्राह्मणोंके साथ बैठ कर भोजन करते हैं।

कई एक लोगों की यह शंका है कि वे पितर हमको दीखते क्यों नहीं? इसके ऊपर शतपथ लिखता है कि:—

तिर इव वै पितरो मनुष्येभ्यः।

शत० २।३।४।२१

सूक्ष्म होने के कारण पितर मनुष्यों से अदृश्य होते हैं क्योंकि—

आप्यतैजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि।

न्यायदर्शन ३।१।२८ वात्स्यायनभाष्य

लोकान्तर में जल, अग्नि, वायु के शरीर होते हैं।

जब अग्नि, वायु, जल के शरीर अतिसूक्ष्म होते हैं फिर वे दृष्टि में कैसे आवेंगे? इनसे भिन्न जो पितर अन्य योनियों में गये हैं उनके लिये स्वधा देकर उस स्वधा को ईश्वर से पितरों को पहुँचा देने की प्रार्थना का मन्त्र यह है।

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म याँ २॥ऽउचन प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञ ँ सुकृतंजुषस्व॥

यजु० अ० १६।६७

हमारे जो पितर शरीर धारण करके इस लोक में आये हुये विद्यमान हैं और जो इस लोक में नहीं हैं, जिनको हम जानते हैं या जिनको हम नहीं जानते, हे सर्वज्ञ अग्ने! तुम उन सबको जानते हो इस स्वधा विधान से तुम उनको तृप्त करो।

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।

यजु० १६।६०

जिनको भस्म करके अग्नि ने जिनका स्वाद लिया है या अग्नि में न फूंकने के कारण अग्नि ने स्वाद नहीं लिया जिनका वे पितर स्वर्ग में स्वधा से प्रसन्न होते हैं।

कई एक मनुष्य इस पर शंका कर बैठते हैं। यहां शंका का कोई काम नहीं सीधा समास है "अग्निना स्वादिताः-अग्निष्वात्ताः" जलाते हुये आवसथ्यादि अग्नि ने जिनका स्वाद ले लिया उनका नाम है "अग्निष्वात्ताः" सब शंका ढेर हो गई। शतपथ लिखता है कि:—

यानग्निरेव दहन्स्वदयति
ते पितरोऽग्निष्वात्ताः।

काण्ड २

जिनका भस्म करते समय अग्निने स्वाद लिया है वे ही पितर अग्निष्वात्त हैं। यहां यजुर्वेद में "अग्निष्वात्ताः" और "अनग्निष्वात्ताः" पद दिये हैं किन्तु ऋग्वेद और अथर्व वेद में इन पदों के स्थान में "अग्निदग्धाः" और "अनग्निदग्धाः" पद आते हैं। मंत्र देखिये—

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।

अथर्व० १८। २। ३५

अग्नि ने जिनको जलाया और अग्नि ने जिनको नहीं जलाया वे पितर स्वर्ग में स्वधा से प्रसन्न होते हैं।

"ये निखाता" तथा 'आयन्तु' और "ये चेह पितरः" "ये अग्निष्वात्ताः" एवं "ये अग्निदग्धाः" इन चारों ही मंत्रों से मृतक पितरों का श्राद्ध सिद्ध है क्योंकि जीवित पितर न गाड़े जातेहैं और न कहीं पड़े रहजाते हैं तथा न फूंके जातेहैं और न स्वर्गमें गये हुये पितरों को यहां बुलाकर हम अन्न खिला सकते हैं एवं न जीवित पितरों ही को भोजन खिलाने के लिये ईश्वर बुलाने जाता है। ये सब घटनायें मृतकों में होंगी अतएव वेद से मृतपितरों के श्राद्ध की सिद्धि होती है।

फिर वेद लिखता है कि—

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः॥ ७८॥
स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्ष सद्भ्यः॥ ७९॥
स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः॥ ८०॥

अथर्व० १८। ४

यह स्वधा हम उन पितरों को देते हैं जो पृथ्वी में निवास करते हैं। ७८। और यह स्वधा हम उन पितरों को देते हैं जो अन्तरिक्ष में रहते हैं। ७९। एवं यह स्वधा हम उन पितरों को देते हैं जो स्वर्ग में वास करते हैं। ८०।

जीवित पितर अन्तरिक्ष स्वर्ग में नहीं रह सकते, इन लोकों में तो शरीर छोड़ने पर ही प्राणी जाते हैं इस कारण श्राद्ध इन तीन मंत्रों से भी मृतक पितरों का ही

सिद्ध होता है। हां–यह शंका कर सकते हैं कि मरे हुये पितर पृथ्वी पर कैसे रहेंगे? इसका उत्तर यह है कि जिन हमारे पितरों ने यहां शरीर छोड़ा और फिर वे कर्मानुसार इसी पृथ्वी पर किसी योनि में आ गये "पृथिविषद्भ्यः" मंत्रमें उनका ग्रहण है। (१) तो स्वर्ग और अन्तरिक्ष में जो पितर गये हैं वे पितृ शरीर छोड़ कर गये हैं, उनका पृथ्वी वाले पितरों से साहचर्य है वे भी मरे हुये तो ये भी मृतक। (२) इस मंत्र से स्वधा लेकर अग्नि में छोड़ा जाता है, अग्नि में छोड़ी हुई आहुति ईश्वर द्वारा मृतक पितरों की तृप्ति कर सकती है, जीवितों की नहीं अतएव मानना पड़ेगा कि इन तीन प्रकार के पितरों के ग्रहण में मृतक पितरों का ही ग्रहण है।

जिस मनुष्य के सन्तान न होती हो उसको सन्तान उत्पन्न करने के हेतु श्राद्ध करना लिखा है। इस श्राद्ध में तीन पिण्ड होते हैं। मध्यम पिण्ड को पत्नी खाती है। इसके ऊपर गृह्यसूत्र लिखता है कि—

आधत्त पितरो गर्भमिति मध्यमं पिण्डं पत्नी प्राश्नीयात्।

आचार्य तो "आधत्त पितरो गर्भम्" इस मंत्र को पढ़े और श्राद्ध करने वाले की पत्नी मध्यम पिण्ड को भक्षण करे।

इसके ऊपर मनु जी लिखते हैं कि—

पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी ॥२६२॥
आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम्।
धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकं धार्मिकं तथा ॥ २६३ ॥

मनु० अ० ३

पितृपूजन में तत्पर विवाहित पतिव्रता पुत्र की इच्छा करने वाली स्त्री "आधत्त पितरो गर्भम्" इस मंत्र के उच्चारण होते हुये मध्यम पिण्ड को भक्षण कर आयुवाले यशवान्, बुद्धिमान्, धनी, सात्विक, धर्मात्मा पुत्र को उत्पन्न करती है।

इस श्राद्ध में पिण्ड भक्षण के समय आचार्य जिस मंत्र का उच्चारण करता है वह मन्त्र यह है।

आधत्त पितरा गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।
यथेह पुरुषो सत् ॥

यजु० २। ३३

हे पितरो ! जैसे इस ऋतु में देव मनुष्य पितरों के अर्थ का पूर्ण करने वाला होवे वैसे पुष्पमाला पहिनने वाला गुणवान् पुत्ररूप गर्भ को संपादन करो।

अभिप्राय इस मंत्र का यह है कि इस मन्त्र वाले श्राद्ध में पितरों से यह प्रार्थना करते हैं कि ऐसी कृपा करो जिससे हमारी स्त्री को गर्भ रहे। यह प्रार्थना मृतकपितरों से तो कर सकते हैं किन्तु जीवितों से नहीं कर सकते। क्या जीवित पितरों से यह कह सकते हैं कि आप लोगों ने भोजन तो खा लिया जरा हमारी स्त्री को भी··············।

इस श्राद्ध से कोई भी मनुष्य.जीवित पितरों का श्राद्ध नहीं कह सकता वरन् यह मानना पड़ेगा कि यह श्राद्ध मृतक पितरों का है।

अथर्व वेद श्राद्ध के पितरों का निवास स्थान बतलाया हुआ लिखता है कि

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥

अथर्व० १८।२।२

आकाश के तीन विभाग हैं, पृथ्वी से लेकर जहां तक जल के कण उड़ कर जाते हैं उस आकाश का नाम उदन्वती है अर्थात् जल कण रखने वाला प्रथम भाग है। इसके ऊपर जो आकाश विभाग है उसका नाम पीलु है क्योंकि यहां तक परमाणु जाते हैं। इसके ऊपर का तीसरा भाग प्रद्यौ कहलाता है, इस भाग में उन पितरों का निवास है जिनका श्राद्ध में आवाहन होता है।

यहां पर यह ज्ञान रखना चाहिये कि जो पुण्यात्मा पितर हैं वे पितृ तथा स्वर्गादि लोकोंमें जाते हैं और जिनका पुण्य कुछ कम है वे याम्यागतिको पहुँच कर कर्मानुसार अनेक योनियों में चले जाते हैं। जो पितर पितृलोक प्रभृति लोकों में निवास करते हैं वेद ने उनका आवाहन लिखा है और जो पितर कर्मानुसार योनियों में गये हैं उनको ईश्वरद्वारा श्राद्ध कर्म का फल उन्हीं योनियों में पहुँचता है। जब श्राद्ध में बुलाये जाने वाले पितर "प्रद्यौ" तृतीय आकाशमें रहते हैं और वे ही श्राद्ध में आकर भोजन करते हैं तो फिर जीवित पितरों का श्राद्ध कैसे माना जावेगा ?

श्राद्धविधि में पितृयज्ञ द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराना लिखा है। मन्त्र ये हैं–

इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु,
विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्।

स मे मात्तेष्ट स्वधया पिन्वमानो,
विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ॥

अथर्व० ४ । ३४ । ८

इस ओदन [अन्न] को मैं ब्राह्मणों के समक्ष या ब्राह्मणों में रखता हूँ, वह विस्तृत है, लोकजित है और स्वर्ग में पहुँचने वाला है । जल के द्वारा बढ़ाया हुआ वह ओदन हमको अनन्त फल देने वाला हो और कामधेनु के समान मुझको समस्त मनोवांछित फल दे ।

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु,
या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके,
जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥

अथर्व० ६ । ५ । १६

हे अग्ने ! जो ओदन हमने ब्राह्मणों के समक्ष में परोसा है, जिसको यथा विभाग विभक्त किया, जो उसके बनाने में विन्दु उड़े उन सबको स्वर्गलोक में ले जाओ, जान जान कर हमारे पितरों को दो, मार्ग में सावधान होकर लेजाओ ।

इसके ऊपर मनु जी लिखते हैं कि—

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ॥

मनु० १ । ६५

जिसके मुख से खाई हुई हवि को देवता और कव्य को पितर खाते हैं इससे अधिक और क्या ब्राह्मण शक्ति होगी ।

यदि श्राद्ध जीवित पितरों का होता तो फिर पित्र्यन्न को ब्राह्मणों को खिलाने की और ब्राह्मणों द्वारा खाये हुये अन्न को पितरों को पहुँचाने की कोई आवश्यकता नहीं थी पितरों को खिला देते, उनका पेट भर जाता, ब्राह्मणों को पित्र्यन्न का खिलाना और उनके द्वारा उस अन्न का फल पितरों को मिलना जो वेद ने बतलाया है यह मृतक पितृश्राद्ध को ही सिद्ध करता है ।

श्राद्धविधि में मृतकपितरों का ही श्राद्ध लिखा है ।

पिता प्रेतः स्यात्पितामहो जीवेत्पित्रे पिण्डं निधाय।
पितामहात्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यादिति।

काठीय श्रौत सूत्र।

जिसका पिता मर गया हो और पितामह जीवित हो तो पिता का पिण्ड रख कर पितामहको छोड़ पितामह से ऊपरके जो दो पितर हैं उनके नामके पिंड रक्खे।

इसकी पुष्टि में मनु जी लिखते हैं कि

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः।
पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम्॥

मनु० ३। २२१

जिसका पिता मर गया हो और पितामह (बाबा) जीता हो वह मनुष्य श्राद्ध में पिता का नाम लेकर फिर प्रपितामह (पर बाबा) का नाम उच्चारण करे अर्थात् जो पितामह जीवित है उसके निमित्त पिण्डदान न दे।

वेद भी मृतक पितरों के श्राद्ध को ही कहता है। प्रमाण यह है।

अथामृताः पितृषु संभवन्तु। ४८।

अथर्व० १८। ४

मृतक पुरुष ही पितृ स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

वेद में श्राद्ध के कम से कम सात सौ मंत्र हैं जिनमें मृतक पितृ श्राद्ध का उल्लेख है। उनमें से कुछ थोड़े से मंत्र हमने यहां नमूने के तौर पर दिखलाये हैं, जिनको समस्त देखने हों वे यजुर्वेद का १६ वां अध्याय और अथर्ववेद का १८ वां काण्ड देख लें।

आर्यसमाज।

"पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् "श्रत्" सत्य का नाम है "श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत्क्रियतेतच्छ्राद्धम्" जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्ध है। और "तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्" जिस जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायं उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिये है मृतकों के लिये नहीं"। सत्यार्थ० समु० ४ पृ० ६७।

"ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थ विद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः" जो परमात्मा और पदार्थ विद्या में निपुण हों वे सोमसद। "यैरग्नेर्विद्युतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः" जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जानने वाले हों वे अग्निष्वात्त। "ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः" जो उत्तम विद्या वृद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों वे बर्हिषद्। 'ये सोममैश्वर्यमोषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः" जो ऐश्वर्य के रक्षक और महौषधि रस का पान करने से रोग रहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक औषधों को दे के रोगनाशक हों वे सोमपा। "ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुंजते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः" जो मादक और हिंसाकारक द्रव्योंको छोड़ के भोजन करने हारे हों वे हविर्भुज। "य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति त आज्यपाः" जो जानने के योग्य वस्तुके रक्षक और घृत दुग्धादि खाने और पीने हारे हों वे आज्यपा। "शोभनः कालो विद्यते येषान्ते सुकालिनः" जिनका अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो वे सुकालिन्। "ये दुष्टान्यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशः" जो दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करने हारे न्यायकारी हों वे यम। "यः पाति स पिता" जो सन्तानों का अन्न और सत्कार से रक्षक वा जनक हो वह पिता। "पितुः पिता पितामहः पितामहस्य पिता प्रपितामहः" जो पिता का पिता हो वह पितामह और जो पितामह का पिता हो वह प्रपितामह। "या मानयति सा माता" जो अन्न और सत्कारोंसे सन्तानों का मान्य करे वह माता " या पितुर्माता सा पितामही पितामहस्य माता प्रपितामही" जो पिता की माता हो वह पितामही और पितामह की माता हो वह प्रपितामही। अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बन्धी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस २ कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस २ कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है।

सत्यार्थ० समु० ४ पृ० ६८

विवेचन।

सत्यार्थप्रकाश में श्राद्ध-तर्पण जीवितों का लिखा है मृतकों का नहीं "जीवितों का श्राद्ध करना मृतकों का नहीं" इसकी पुष्टि में स्वामी जी ने कोई प्रमाण भी नहीं लिखा, केवल हुक्म लिख दिया और हुक्म लिख कर सात सौ वेद मन्त्रों का गला घोट डाला है। वेद के सात सौ मन्त्र मृतक पितरों के श्राद्ध को कह रहे हैं और स्वामी जी जीवितों का बतलाते हैं। अब उन सात सौ मन्त्रों को वेद में से

फाड़ कर अलाहिदा फेंक दें या यह कह दें कि ये वेद मन्त्र ईश्वर के बनाये नहीं, किसी ब्राह्मण ने बना कर वेद में घसोड़ दिये अतएव क्षेपक हैं ? अथवा इन मन्त्रों को लवेद मन्त्र कह दें इन सात सौ मन्त्रों का क्या हो ? अंग्रेजी पढ़े लिखों की हुज्जतबाजी को अन्तःकरण में रख उससे जीवित पितरों का श्राद्ध मानना और वेद के सात सौ मन्त्रों को पोपजाल एवं उनके निर्माता ईश्वर को पोप मान बैठना यह स्वा० दयानन्द और आर्यसमाज की घोर नास्तिकता है। वेद का खण्डन करके नकली ईसाई धर्म आर्यसमाज का चलाना एवं फिर उसको वैदिक धर्म बतलाना वे ही आर्यसमाजी इस बात को मान सकते हैं कि जिनकी सात पीढ़ी ने भी वेद का अक्षर नहीं देखा ?

"ये निखाता" "आयन्तुनः पितरः" "ये चेह विद्मः" "ये अग्निष्वात्ताः" "ये अग्निदग्धाः" "अधामृताः" प्रभृति जब वेद के मन्त्र शास्त्रार्थ में रख दिये जाते हैं तब आर्यसमाजी ऐसे कांपते हैं जैसे कि जूड़ी बुखार का मरीज बुखार के आगमन में कांपा करता है। बनावटी जाल में फंसने का कंपकंपी का शिकार होना ही फल है। कानपुर के शास्त्रार्थ में ब्रजमोहन झा और छपरा के शास्त्रार्थ में विद्यानन्द तथा मीरपुर (काश्मीर स्टेट) के शास्त्रार्थ में रामगोपाल एवं लाहौर के शास्त्रार्थ में राजाराम जी शास्त्री प्रभृति समाजी पंडितोंने इतनी कच्ची खाई कि ये पण्डित फिर आज तक शास्त्रार्थ करने के लिये प्लेटफार्म पर नहीं आये।

यहाँ पर "सोमसदः" पदका अर्थ किया कि 'जो पदार्थ विद्या में निपुण हैं वे सोमसद पितर हैं, स्वामी जी जानते हैं कि आज कल यूरोप वाले पदार्थ विद्या में निपुण हैं इस कारण यूरोपवालों का श्राद्ध तर्पण लिख दिया। आर्यसमाजी हिन्दुस्तानियों को छोड़ कर यूरोपवालों का जो श्राद्ध-तर्पण नहीं करते इसका कारण यही है कि उनकी दृष्टि में भी 'सोमसदः' का अर्थ स्वामी जी ने गलती किया। स्वामी जी "अग्निष्वात्ताः" का अर्थ करते हैं कि 'जो अग्निविद्या में निपुण हैं वे अग्निष्वात्त पितर हैं" इस नियम से हिलवाई, लुहार, इंजन के ड्राइवर और भड़-भूजे ये सब आर्यसमाजियों के पितर होंगे ? इनका श्राद्ध-तर्पण करना प्रत्येक आर्य समाजीका वैदिक धर्म है, जो नहीं करता वह पापी है। "बर्हिषद"का अर्थ किया है "जो उत्तम व्यवहार में निपुण हों' कौन हैं। उनका पता नहीं बतलाया, संभव है कि पौलसीबाजों को आर्यसमाजियों के पितर बनाया हो ?। 'सोमपाः, का अर्थ 'डाक्टर किया, भारतवर्ष में जितने भी डाक्टर हैं, चाहे वे पार्सी हों या यहूदी ? ईसाई हों या मुसलमान ? वे सब आर्यसमाजियों के पितर हैं। 'हविर्भुज, पद का अर्थ यह किया

कि 'जो मादक द्रव्य और हिंसावाले पदार्थों को छोड़ कर अन्य पदार्थ खावे वह हविर्भुज, आर्यसमाज के पितर हैं। यह मालूम नहीं, वे हैं कौन ? विजिटीरियन सोसाइटी के मेम्बर हैं या गाय, भैंस, हिरण, बकरी, हैं जिनका आर्यसमाज श्राद्ध-तर्पण करेगी। ये सब मांस और मादक वस्तुओं का सेवन नहीं करते। और 'जो रक्षा करें एवं साथ ही में केवल घी पीते हों वे आर्यसमाजियों के आज्यपा पितर हैं। हमको तो एक भी मनुष्य या जानवर ऐसा न मिला जो घी पीकर ही जीवन धारण करता हो ? जब ऐसा कोई संसार में है ही नहीं फिर आर्यसमाजी उसका श्राद्ध कैसे करेंगे यह समझ में नहीं बैठता, संभव है अब आर्यसमाजी विस्तर बांध कर आज्यपा पितरों की खोज में उतरें क्योंकि जब संसार यह कह देता है कि आज्यपा पितर भूतल पर हैं ही नहीं तब आर्य्यसमाजियों को लज्जित होना पड़ता है। ये दिव्य पितरों की संज्ञायें हैं, दिव्य पितरों को मिटाकर ये संज्ञायें मनुष्यों की बनाई जाती हैं। यह वेद के साथ घोर अन्याय है। श्राद्ध में वेद ने लिखा है कि—

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥

अथर्व० १८।२।१

यम के अर्थ सोम किया जाता, यम के वास्ते हवि किया जाता और मन्त्र द्वारा अग्निदूत ही यज्ञ से यम के प्रति हवि ले जाता है।

इस मंत्र का कतल करते हुये स्वामी जी लिखते हैं कि 'न्यायाधीश का नाम यम है, न्यायाधीशों का ही श्राद्ध-तर्पण करो। जितने भी मजिस्ट्रेट संसार में हैं वे सब आर्यसमाजियों के पितर हैं। बात तो बनाई किन्तु बना न जानी। इस मन्त्र में लिखा है कि अग्नि दूत बन कर हवि को यम के वास्ते पहुँचाता है, भला अग्नि मजिस्ट्रेटों के पास खाने के पदार्थ कैसे पहुँचा देगा ? इसी शंका पर आर्यसमाजियों के छक्के छूट जाते हैं। वेद ऐसी वस्तु नहीं है कि उसके अर्थ को कोई आनन-फानन में उड़ादे और यम का अर्थ मजिस्ट्रेट करके वेद के असली भाव को गायब करदे। जिस यम को हवि दी जाती है वह कौन है इसका निर्णय करता हुआ वेद लिखता है कि—

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां
यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम्।

वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥

अथर्व० । १८ । १३

जो प्राणियों को पहिले मारता है, जो इस लोक (मनुष्य) को पहिले लेजाता है उस विवस्वान् सूर्य के पुत्र जीवों को वश में करने वाले राजा यम को हम हवि से तृप्त करते हैं।

अब आर्य्यसमाजी बतलावें कि वेद में जिस यम को हवि देना लिखा है और वह हवि अग्नि के द्वारा जिस यम को मिलती है वह मृत्प्राणियों पर निग्रह एवं अनुग्रह करने वाला राजा यम है या आनरेरी मजिस्ट्रेट ? क्या मजिस्ट्रेट प्राणियों को मारते हैं और फिर मार कर इस लोक से अन्य किसी लोक में ले जाते हैं ? क्या सभी आनरेरी मजिस्ट्रेट विवस्वान सूर्य के पुत्र हैं ? यदि ये घटनायें आनरेरी मजिस्ट्रेटों में नहीं हैं तो फिर यम से तुम आनरेरी मजिस्ट्रेटों को कैसे लेते हो ?

आर्य्यसमाजियो ! याद रक्खो दयानन्द जाल बनाकर उस जाल में तुम को बेवकूफ समझ फांस रहे हैं जिससे कि तुम दीन दुनियां कहीं के न रहो ? किन्तु इतना समझलो कि संसार में लिखे पढ़े मनुष्य भी मौजूद हैं और उनके जरिये से स्वामी दयानन्द जी के बनावटी जाल का भण्डा फोड़ अवश्य होगा तब संसार में तुम्हारी बेइज्जती होगी और वेदार्थ के धोखा देने का अपराध तुम्हारे ऊपर लगाकर ये ही यम रौरव आदि अनेक वेटिंग रूमों में तुम को कुछ दिन के लिये आराम करवावेंगे। सोचो, समझो, कुछ पढ़ो, बुद्धि का विचार करो, हाथ में वेद ले ईश्वर की शपथ खाकर कहो वेद में श्राद्ध मृतक पितरों का है या जीवितों का ?

शूद्रे वेदानधिकार.

वेद।

वेद ने जिन वर्णों को यज्ञ करने का अधिकार दिया है उन्हीं को वेद पढ़ने का भी अधिकार दिया है। वेद लिखता है कि—

स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्रचोदयन्ता पावमानी द्विजानाम्।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं,
ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्वा व्रजतु ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व० । १६ । ७१ । १

मैंने वर देने वाली वेदों की माता गायत्री की स्तुति की है वह द्विजों को पवित्र करने वाली मुझे शुभ कर्म में नियुक्त करे और आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मतेज मुझे देकर ब्रह्मलोक को गमन करे।

इस मन्त्र में गायत्री द्वारा द्विजों का ही पवित्र होना लिखा है। मन्त्र में यह स्पष्ट है कि गायत्री द्विजों को ही पवित्र करती है, द्विजेतर शूद्र यदि रात दिन गायत्री जपें वह तब भी शूद्रों को पवित्र नहीं करती। अब पाठक समझ गये होंगे कि गायत्री का अधिकार किस को है? इसी भाव को लेकर मनु जी लिखते हैं कि—

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥१॥

मनु० अ० १० ।

अपने कर्म में स्थित द्विजाति तीन ही वर्ण वेद पढ़ें, इन तीन वर्णों में से ब्राह्मण ही अध्यापक हो और इतर क्षत्रिय-वैश्य अध्यापक न हों यह हमारा निश्चय है।

मनु जी इस विषय पर कुछ और भी लिखते हैं देखिये—

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति ।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥१२६॥
धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।
मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥१२७॥

मनु० अ० १० ।

शूद्र को लहशन आदि भक्षणका पाप नहीं और न शूद्र को सोलह संस्कारों का अधिकार ही है, वेदप्रतिपाद्य यागादिधर्ममें इसका अधिकार नहीं एवं साधारण सत्य भाषणादि धर्म का इसको निषेध नहीं किन्तु उसका अधिकार है। १२६। अपने धर्म को जानने वाले शूद्र धर्म की इच्छा करतेहुये त्रैवर्णिक लोगों के आचार जो शूद्र को निषिद्ध नहीं है उनमें स्थित होकर केवल नमस्कार शब्द से ही वैदिक मन्त्रों को छोड़

कर पञ्चयज्ञों को करें ऐसा करने से शूद्र निन्दित नहीं होते किन्तु प्रशंसा को प्राप्त होते हैं।

मनु ने इस प्रकरण में यह स्पष्ट दिखला दिया कि शूद्र वेद मन्त्र का उच्चारण न करे, केवल प्रणाम करता हुआ मन्त्रवर्जित पञ्चयज्ञों को पूर्ण करें। मनु के विरुद्ध शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार कोई कैसे दे सकता है? इसी विषय में वेदान्त दर्शन लिखता है कि—

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च।

अ० १ पा० ३ सू० ३६

संस्कार का अभाव होने से और अभिलाप से शूद्र वेद विद्या पढ़ने का अधिकारी नहीं है। और भी पढ़िये–

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च।

शा० अ० १ पा० ३ सूत्र ३८

स्मृति से शूद्र का वेद श्रवण और अध्ययन का निषेध है।

जिसको मनुस्मृति ने लिखा था कि वेदाध्ययन, वेदोच्चारण और वेदश्रवण शूद्र का अधिकार नहीं है उसी को सत्य सिद्ध करने के लिये वेदान्तदर्शन ने ये दो सूत्र दिये हैं। कोई भी न्यायशील, धार्मिक विवेकी यह नहीं कह सकता कि शूद्र को वेद पढ़ना वेदाज्ञा है और इस पठन से शूद्र का कल्याण होगा।

आर्यसमाज।

(प्रश्न) क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है, जैसा यह निषेध है।

स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः।

स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है (उत्तर) सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्या ँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥

यजु० अ०। २६। २

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने हारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो । यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही को वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है स्त्री और शूद्रादि वर्णों का नहीं । (उत्तर) (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अतिशूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुना कर विज्ञान को बढ़ाके अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों कहिये अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की ? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है । इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा । क्यों कि "नास्तिको वेदनिन्दकः" वेदों का निन्दक और न मानने वाला नास्तिक कहाता है । क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता ? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों को सुनने पढ़ने का शूद्रों के लिये निषेध और द्विजों के लिये विधि करे ? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता । जैसे परमात्माने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चन्द्र सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिये बनाये हैं वैसेही वेद सबके लिये प्रकाशित किये हैं । और जहाँ कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है ।

सत्यार्थ० समु० ३ पृ० ७०

विवेचन ।

स्वामी जी शूद्रों को भी वेद पढ़ाना चाहते हैं । स्वामी जी इतने भोले हैं कि अपने लिखे को आप ही भूल जाते हैं । सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३८ में लिख आये हैं कि "शूद्र मपिकुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके-सुश्रुत । और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे यह मत किन्हीं आचार्यों का है ।" फिर आपने सत्यार्थ प्रकाश के पृ०२८ में लिखा कि" शूद्रादिवर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेजदें । स्वामी जी ने संस्कार विधिमें केवल द्विजों का ही उपनयन लिखा है शूद्रोंका नहीं बिना उपनयन के

वेदारम्भ होता नहीं इस कारण उपनयन निषेधसे शूद्रोंके वेदाध्ययनका भी निषेध कर दिया। अब शूद्रों के वेद पढ़ाना लिखते हैं, वैदिक धर्म न ठहरा एक बाजारू दिल्लगी ठहरी जो मिनट मिनट पर रंग बदल दे? क्यों न हो मतलबी महर्षि ही तो ठहरे, जहां जिससे प्राप्ति हुई वहाँ वैसा ही सिद्धान्त लिख दिया? शोक है इन आर्यसमाजियों पर जो चालिसवर्ष में यहभी निर्णय न करसके कि स्वामीजी ने जो शूद्रोंके उपनयन और वेद पठन का निषेध किया वह सत्य है? या यहाँ पर जो वेद पढ़ने की विधि लिखी है यह सत्य है? अजी साहब, छान-बीन तो वह करे जो धार्मिक बने और धर्म का आचरण करे, जब आर्यसमाजियों को वेद वेद चिल्ला कर नकली ईसाई ही बनाना है तब उनको सत्यार्थ प्रकाश और वेद से क्या मतलब?

स्वामी जी बड़े मधुर भाषी हैं, क्या लिखते हैं कि" तुम कुआ में पड़ो और श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पित है"। स्वामी जी ने केवल शतपथ ब्राह्मणको देखा उसमें वह श्रुति नहीं है इस कारण कपोलकल्पित लिख दिया किन्तु केवल शतपथ ही ब्राह्मण नहीं हैं, शतपथ से भिन्न भी वेदों के अनेक ब्राह्मण हैं जो इस समय मिलते नहीं। जो यह श्रुति उन ब्राह्मणों में निकल आवे तब तो कपोल कल्पित नहीं? बिना समस्त ब्राह्मणों के देखे जबर्दस्ती से श्रुति को कपोल कल्पित कहना यह स्वामी जी की घोर नास्तिकता है।

चलिये, जाने दीजिये, यह श्रुति तो कपोल कल्पित है किन्तु "स्तुता मया वरदा वेद माता" यह मन्त्र तो कपोल कल्पित नहीं है? यह तो तीन ही वर्णों को गायत्री और वेदका अधिकार देता है फिर तुम वेदाज्ञाके विरुद्ध शूद्रोंको वेद पढ़ाओगे कैसे? जिस समय यह मन्त्र शास्त्रार्थ में आर्यसमाजियों के आगे रक्खा जाता है उस समय आर्यसयाजियों की वही दशा होती है जो बिच्छू के काटे हुये मनुष्य की होती है। जब एक मन्त्र दयानन्द की मिथ्या कल्पना को धूल में मिला देता है तो फिर शूद्रोंको वेद पढ़ाना आर्यसमाजियो की निर्लज्जता एवँ नास्तिकता नहीं है तो और क्या है?

रही बात "यथेमां वाचं कल्याणीम्" की। आज तक जितने भी वेदज्ञाता हुये उन सबने इस मन्त्र का यह अर्थ माना कि पूर्व मन्त्र में भूतसाधनी वाणी का-वर्णन है, उस भूतसाधनी वाणी का इस मन्त्रमें भी अध्याहार होता है। अर्थ देखिये-

"मनुष्य को दान देने के लिये जैसे भूतसाधनी 'भोजन दो' इस वाणी को सब मनुष्यों के लिये मैं नम्रता से कहता हूं ऐसे ही तुमभी कहो यह बात यज्ञकर्ता अपने भृत्योंसे कहता है। वह कल्याणकारिणी वाणी ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, तथा वैश्य, स्वीय भृत्य, अति शूद्र से बोलो इन सबको मधुर वचनों के साथ सुन्दर भोजन खाने को दो

मनुष्य मात्र को भोजनादि देने से मैं देवता और परमेश्वर का प्रिय बनूँगा । धन पुत्र लाभ जो मेरा कार्य है यह समृद्धि को प्राप्त हो और मुझे परलोक सुख मिले । मन्त्र में "दक्षिणायै" इससे दक्षिणा और "दातुः" इससे दान स्पष्ट है अर्थात् सब को भोजन दक्षिणा दो ।"

यह मन्त्र का अर्थ है । स्वा० दयानन्द जी ने मूर्ख आर्यसमाजियों को जाल में फांसनेके लिये ऐसा मनमाना अर्थ किया कि जो आर्यसमाजके सिद्धान्त तथा प्रत्यक्ष के ही विरुद्ध है ।

जब ईश्वर निराकार है तब वह ब्राह्मणादिक मनुष्यों को वेद कैसे पढ़ा देगा ? निराकार का अध्यापक बनना सर्वथा प्रत्यक्ष विरुद्ध है, आर्यसमाजी बतलावें कि वह निराकार ईश्वर ब्राह्मणादि मनुष्योंको वेद कब या किस स्थानमें पढ़ा देता है और ईश्वर ने जिनको वेद पढ़ाया वे कितने मनुष्य भूतल पर विद्यमान हैं ? यदि निराकार ईश्वर पढ़ाने का काम उत्तम रीति से अन्जाम देता है तो यूनीवर्सिटियां और कालेज तथा हाईस्कूलों में मास्टर क्यों नौकर रक्खे गये ? सब जगह निराकार ईश्वर से ही पढ़ाने का काम क्यों नहीं लिया जाता ? आर्यसमाजी बुद्धि के शत्रु हैं वे भले ही निराकार ईश्वर का अध्यापक बनना स्वीकार करलें किन्तु विचार शील मनुष्य इस प्रत्यक्ष विरुद्ध बात के मानने को कभी भी तैयार न होगा ।

फिर वेदको यहां पर वाणी कह दिया । ताल्वादि स्थानों में जब जीभ आघात करती तब वाणी पैदा होती है, ईश्वर जब निराकार है, उसके तालु-कंठ, मूर्धा दन्त ओष्ठ, एवं जीभ है ही नहीं तो फिर वेदको "वाचम्" कहना क्या प्रत्यक्ष विरुद्ध नहीं है ? इन पागलपन की बातों को पशु भले ही मानलें किन्तु मनुष्य नहीं मान सकते ।

"स्वाय" पदका अर्थ इस मन्त्र के वेद भाष्य में स्वा० दयानन्दजी ने लिखा है कि "अपनी स्त्री और सेवकको भी मैं वेद पढ़ाता हूं । जब ईश्वर आर्यसमाज के मत में सर्वथा निराकार है तो फिर निराकार ईश्वर के स्त्री और नौकर कैसे ? यह तो आर्यसमाज के सिद्धान्त के ही विरुद्ध है चलो आर्यसमाजके एक सिद्धान्त ईश्वर के निराकार होनेका चकनाचूर होगया और ईश्वर वेद पढ़ाता है यह भी सिद्ध न हुआ जाली अर्थों में यही मजा रहता है । शास्त्रार्थ के समय इन दो दोषों को सुन कर आर्यसमाजी ऐसे भागते हैं जैसे बन्दूकको देखकर जंगली जानवर भागा करते हैं ।

स्वामीजी लिखते हैं कि जो इस अर्थको न माने वह नास्तिक, । क्यों स्वामी जी जो वेद का गला घोट कर मन्त्र के अर्थ का अनर्थ कर डाले वह आस्तिक होता है ? गुरु तो गुर किन्तु चेला चीनी होगये स्वा० दयानन्द जी ने तो इस मन्त्र का अर्थ

बदला था किन्तु अब आर्यसमाजियों ने देवता भी बदल दिये ? इस मन्त्रका देवता "वाणी" है किन्तु आर्यसमाजियोंने ईश्वर बना दिया, यह और भी मजा टपक निकला स्वामी जी लिखते हैं कि "यदि ईश्वर को शूद्रोंको वेद पढ़ाना न होता तो वह इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रियां क्यों रचता, । श्रोत्र इन्द्रियां तो पशु पक्षियों के भी हैं फिर आप उनको वेद क्यों नहीं पढ़ाते ? वाक् इन्द्रिय से स्पष्टवर्णात्मक शब्द निकालने वाले तोता-मैना को भी वेद पढ़ने का अधिकार ईश्वर ने "यथेमांवाचम्" मन्त्र में क्यों नहीं दिया। पूर्व कर्मानुसार वेद पढ़ने का अधिकार जिन आर्यसमाजियों को ईश्वर ने नहीं दिया, जो आज भी निरक्षर हों उनको श्रोत्र वाक् इन्द्रियाँ क्यों दीं ? क्या इन प्रश्नों का उत्तर कोई आर्यसमाजी दे सकता है ?

फिर आप लिखते हैं कि 'जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिये बनाये हैं वैसे ही वेद भी सबके लिये प्रकाशित किये हैं, आपकी यह बात भी गलत है। गो आदि कई एक पशुओं के लिये सूर्य हितकर है किन्तु भैंसों के लिये घाम में चलना आफत होजाती है पक्षियों में चिड़ियाँ आदि अनेक पक्षियों को सूर्य ज्योति वाला कर देता है किन्तु बाज और उल्लू के दोनों फाटक बन्द होजाते हैं। अग्नि में समस्त पक्षी भस्म होजाते हैं किन्तु एक पक्षी विशेषका अग्नि भक्ष्य पदार्थ है। इसी प्रकार भैंस आदि को जल हितकारी और बकरी प्रभृति कई एक पशुओं को हानिकारक है, फिर एकसा कहां हुआ ?

आप लिखते हैं कि, जहां कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ानेसे कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है इस लेख में आपने यहतो मान लिया कि शूद्रको वेद पढ़ानेका निषेध वेदादि सच्छास्त्रों में आता है। रही बात यह कि जिसको पढ़ानेसे न आवे वह शूद्र, यह चण्डूखाने की गप्प और आर्यसमाजियोंके मानने के लायक है। पढ़ा लिखा मनुष्य इसको नहीं मान सकता क्योंकि वेद स्मृति दर्शन पुराण इतिहास प्रभृति किसी भी संस्कृत के ग्रन्थ में यह नहीं लिखा कि, जिसको पढ़ाने से कुछ न आवे वह शूद्र होता है" तुमने जो "यथेमां वाचं कल्याणीम्,, मन्त्र से शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार दिया है क्या यह उसी मनुष्य को दिया है जिसको पढ़ानेसे कुछ भी न आवे ? यदि ऐसा है तबतो दो बातों में से एक ही सच्ची रहेगी। यदि पढ़ाने से कुछ नहीं आता तो ऐसे शूद्र को वेद कैसे पढ़ाया जावेगा ? और यदि पढ़ा दिया गया तो फिर यह बात उड़गई कि "पढ़ाने से कुछ नहीं आवे" इस परस्पर विरोधका क्या समाधान है ? स्वा० जी ! इन तुम्हारे बेहोशीपन के लेखों को वही सत्य मानेगा जो अपनी बुद्धिको बूट से कुचल

आर्यसमाज के रजिस्टरमें नाम लिखवा चुका हो किन्तु ईश्वरने जिन लोगों को थोड़ी सी भी अक्ल दी है वे तुम्हारी बेसमझी के चक्कर और जबर्दस्ती को जानकर तुम्हारे लेखों से घृणा ही करेंगे ।

वेदे स्त्रियोऽनाधिकार

वेद

वेद प्रथम उपनयन बतलाता है और उपनयन के पश्चात् वेदाध्ययन, वेद के इस सिद्धान्त पर स्मृति लिखती है कि—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १४० ॥

मनु० अ० २

जो द्विज शिष्य का उपनयन करके कल्प और रहस्य के साथ वेद पढ़ावे उसको आचार्य कहते हैं ।

सिद्ध हो गया कि उपनयन होने के अनन्तर ही वेदाध्ययन होता है और स्त्री के लिये उपनयन की विधि नहीं ? मनु जी लिखते हैं

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ६७ ॥

मनु० अ० २

स्त्रियों को केवल वैवाहिक विधि ही वैदिक संस्कार कहा है और पति सेवा करना ही उनका गुरुके कुल में निवास है, घर का कृत्य करना उनका अग्निहोत्र है ।

जब उपनयनादि वैदिक संस्कारों में से केवल विवाह संस्कार ही स्त्री को कहा गया है, शेष संस्कारों का मनु निषेध करते हैं तो मनु के विरुद्ध स्त्री का उपनयन संस्कार कैसे होगा ? और विना उपनयन के हुये स्त्री वेद कैसे पढ़ेगी ? उपनयन के बाद वेदारम्भ है, जब तक उपनयन न होगा, वेदारम्भ कभी हो ही नहीं सकता । जब स्त्रियों को उपनयन संस्कार ही नहीं कहा तो फिर वेदाध्ययन का अपने आप निषेध हो गया ।

आर्यसमाज

जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता, और निर्बुद्धिता का प्रभाव है, देखो वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

अथर्व० कां० ११ प्र० २४ अ० ३ मन्त्र १८

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवति, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवति होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये (प्रश्न) क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें ? (उत्तर) अवश्य, देखो श्रौतसूत्रादि में—

इमं मंत्रं पत्नी पठेत्।

अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वर सहित मंत्रों का उच्चारण और संस्कृत भाषण कैसे कर सके।

सत्यार्थ० समु० ३ पृ० ७१

विवेचन

क्या मजा है धोखेबाज हों तो ऐसे ही हों ? मंत्र में तो "ब्रह्मचर्येण युवानम्" यह "पति" का विशेषण है किन्तु स्वामी जो "ब्रह्मचर्येण" इस पद को "कन्या" में लगाते हैं।, यह धोखा है। "युवानम्" किसका विशेषण है ? मानना पड़ेगा कि "पतिम्" का अर्थात् "कन्या युवानं पतिं विन्दते" कन्या युवान पति को प्राप्त करती है। यहां पर "युवानम्" में "ब्रह्मचर्येण" हेतु है अर्थात् ब्रह्मचर्य से युवान हुये पति को कन्या प्राप्त करती है। "पतिम्" पुल्लिंग है उसका विशेषण "ब्रह्मचर्येण युवानम्" यह भी पुल्लिंग है फिर कोई लिखा पढ़ा मनुष्य यह कैसे मान लेगा कि "ब्रह्मचर्येण" इस हेतु को कन्या में लगाओ ? क्या हमको यह मानना पड़ेगा कि स्वामी जी को हेतु का ज्ञान नहीं ? या हम मानलें कि स्वामी जी को अभी तक लिंग का ज्ञान न हुआ ? वीर्य रक्षा का नाम "ब्रह्मचर्य" है ? वीर्य पुरुषमें ही होता है इस कारण ब्रह्मचर्य का साधन पुरुष ही कर सकता है स्त्री के शरीर में "वीर्य" नहीं होता "रज" होता है, रज को शास्त्र ने कहीं पर भी ब्रह्मचर्य के नाम से

स्मरण नहीं किया फिर कन्या में ब्रह्मचर्य का लगाना शास्त्रानभिज्ञता और पागलपन नहीं तो और क्या है । "ब्रह्मचर्येण युवानम्" स्वामी जी को यह मन्त्र क्या मिला भानमती का पिटारा मिल गया । इसी मंत्र से तो कन्याओं का वेद पढ़ना निकल बैठा और इसी मंत्र से ही कन्याओं की बढ़ी अवस्था होने पर विवाह टपक पड़ा यह खैंचातानी केवल इस लिये हुई है कि कन्याएं यूरोपीय लेडियों का आचरण करें ।

रही बात यह कि "इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्" यह लेख किसी भी गृह्यसूत्र और श्रौतसूत्र में कहीं पर भी नहीं है ! मालूम होता है कि संसार की आंख में धूल झोंकने के लिये स्वामी जी ने अपने आप बनाया और श्रौतसूत्र के नाम से सत्यार्थ-प्रकाश में लिख दिया, ऐसे २ दयानन्द जी के अन्यायों को आर्य्यसमाज वैदिक धर्म समझे तो फिर हम भी आर्य्यसमाजियों को पशु ही समझेंगे ? है किसी आर्य्यसमाजी में हिम्मत जो "इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्" इसको श्रौतसूत्र में दिखला दे ? दिखलाने का जब नाम लिया जाता है तब आर्य्यसमाजियों का चेहरा लकवा मारे हुये मनुष्य के चेहरे के समान बन जाता है ।

स्त्रियों को केवल मन्त्र भागके पढ़ने का निषेध है, अन्य शास्त्रोंका नहीं ? गार्गी प्रभृति जितनी भी विदुषियां भारतवर्ष में हुई हैं ये सब शास्त्रों की विदुषी थीं किन्तु मन्त्र भाग से सब की सब अनभिज्ञ थीं फिर स्त्रियों का वेद पढ़ना तो इतिहास से भी सिद्ध नहीं ? स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में जो लिखा है कि "जो स्त्रियां नहीं पढ़ेंगी वे गृहस्थ का काम कैसे चलावेंगी" यह स्वामी जी की विलक्षण बुद्धि की कल्पना है । वेदादि सच्छास्त्रों में स्त्रियों के लिये केवल मंत्र भाग के पढ़ने का निषेध है अन्य शास्त्रों का नहीं ?

जाति भेद.

वेद ।

संसार में ईश्वर ने जितनी भी जातियां रची हैं उन सब में भेद रक्खा है । सब से पहिले संसार में तृण जाति की उत्पत्ति हुई किन्तु उस तृण जाति में भी ईश्वर ने अनेक भेद दिखाये । तृण एक जाति है किन्तु उसमें दूब, मुसेल, धुरियाँ, मोथा आदि अनेक जाति भेद दीखते हैं । तृण के पश्चात् ईश्वर ने अन्न जाति की

उत्पत्ति की। अन्न-अन्न एक जाति, किन्तु अन्न एक जाति में भेद प्रतिपादक सैकड़ों अवान्तर जातियाँ,दृष्टि गोचर होती हैं, धान, ज्वार, बाजरा, मकई, कोदों, सावां, उर्द, मूंग, रवांस, चना, जौ, गेहूं, मटर, मसूर, अरहर। इसके पश्चात् वृक्ष जाति की उत्पत्ति की। वृक्ष-वृक्ष एक जाति, किन्तु उसमें वट, पीपल, नीम, आम, जामुन खजूर, ताल, तमाल, शाल, सागौन, साखू, शीशम, बबूर, गूलर, पिलखन अर्जुन प्रभृति अनेक भेद सिद्ध करने वाली अवान्तर जातियाँ ईश्वर ने ही रचीं। वृक्ष के अनन्तर पक्षी जाति की उत्पत्ति हुई। पक्षी-पक्षी एक जाति, किन्तु इस पक्षी एक जाति में चील, काक, कोयल, गीध, बाज, सिखरा, सारस, तीतर, बटेर, बगुला, हंस, चिड़िया, उल्लू प्रभृति भेद सिद्ध करने वाली अनेक अवान्तर जातियां सृष्टि के आरम्भ में ही रची गईं। पक्षी जाति के बाद पशु जाति उत्पन्न हुई। इसमें भी भैंस, गौ, बकरी, हिरण, भेड़, ऊँट, घोड़ा, गधा, जबरा, रोज, शाबर प्रभृति अनेक अवान्तर जातियाँ भेद सिद्ध करने वाली मौजूद हैं।

शास्त्र कहता है कि पशुजाति के पश्चात् देव जाति की उत्पत्ति हुई। देव-देव एक जाति, किन्तु उस में भी विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत ये दश अवान्तर जातियां हैं। भाव यह है कि कीट-पतंग-वनचर, नभचर, जलचर आदि समस्त जातियों में अवान्तर जाति भेद अवश्य होते हैं। ये जाति भेद जड़ पदार्थों में भी पाये जाते हैं। पत्थर-एक जाति रहने पर भी उस पत्थरमें संगे असवद. संगमूसा, संग मरमर एवं लाल पत्थर तथा सुफेद पत्थर आदि अनेक जाति भेद हैं। इसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में रची हुई मनुष्य जातिमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि अनेक भेद पाये जाते हैं। ये अनादि हैं, ईश्वरकृत हैं, इनमें अन्य जातियों की भांति परिवर्तन रहित भेद हैं। मनुष्यों की उत्पत्ति स्थान में ही भेद प्रतिपादन करता हुआ वेद लिखता है कि—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ᳪ शूद्रो अजायत ॥११॥

यजु० अ० ३१

इस यज्ञ पुरुष के मुख से ब्राह्मण हुये और बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य तथा पैरों से शूद्र।

हमने जो "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" का अर्थ किया है यह अन्य लोगों की भांति बनावटी अर्थ त्रिशंकु नहीं है जो अधर बीच में ही लटका रहे। जिनको जाति

भेद शेर की भांति भयङ्कर खूंख्वार दीख पड़ता है वे ऐसे बनावटी अर्थ करते हैं कि जिनकी पुष्टि में एक शब्द भी प्रमाण नहीं मिलता और अन्त में उनकी जालसाजी एवं ईमानदारी का जाल खुल जाता है फिर उनको लिखे पढ़े मनुष्य वेद का शत्रु समझ कर लेखक और लेख दोनों से घृणा करने लगते हैं ।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" इस मंत्र का जो अर्थ हमने किया है वेद मन्त्र का अनुवाद मनुस्मृति के श्लोक में बद्ध करते हुये मनु जी हमारे ही अर्थ को लिखते हैं पढ़िये—

लोकानान्तु विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥

मनु० अ० १ । ३१ ।

लोकों की वृद्धि के लिये प्रजापति ने मुख, बाहु, ऊरु, पाद से क्रम पूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को उत्पन्न किया ।

हमारे अर्थ की सत्यता में केवल मनु ही प्रमाण नहीं है वरन् शतपथ लिखता है

यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त !

ये ब्राह्मण चारों वर्णों में मुख्य हैं इसकारण इनको उत्तमाङ्ग मुख से रचा ।

मुख सब अंगों में उत्तम है इस बात को दिखलाते हुये मनु जी लिखते हैं कि—

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ट्याद्ब्रह्मणश्चैव धारणात् ।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ९३ ॥

मनु० अ० १

उत्तम अंग से उत्पन्न होने और सबसे प्रथम उत्पन्न होने तथा वेदाध्ययन में परिपक्व होने से इस समस्त संसार का ब्राह्मण धार्मिक प्रभु है ।

अब सिद्ध हो गया कि शरीर में उत्तम अंग मुख है और मुख से ही ब्राह्मणों की उत्पत्ति बतलाकर शतपथ हमारे अर्थ की सत्यता का साक्षी है । इतना ही नहीं वरन् हमारे अर्थ की पुष्टि करते हुये ऋषि हारीत लिखते हैं कि

यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान्ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् ।
असृजत्क्षत्रियान्बाह्वोर्वैश्यानप्यूरुदेशतः ॥ १२ ॥

शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः।

यथा प्रोवाच भगवान्ब्रह्मयोनिः पितामहः॥ १३॥

हारीत स्मृति अ० १

यज्ञ की सिद्धि के लिये ईश्वर ने मुख से ब्राह्मणों को तथा भुजा, ऊरु से क्षत्रिय, वैश्यों को रचा और पैरों से शूद्रों को रचकर ईश्वरावतार ब्रह्मा बोले।

इसका नाम है अर्थ, जिसकी पुष्टि में अनेक शास्त्रों के प्रमाणों पर प्रमाण मिलते चले जांय। हमारा अर्थ इतना पुष्ट है कि चार लाख मनुष्य परिश्रम करें, अपनी खोपड़ियां फोड़ लें तब भी अर्थ की असत्यता सिद्ध नहीं कर सकते।

कई एक मनुष्यों का यह कथन है कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" इस मन्त्र से प्रथम "मुखं किमस्यासीत्" इस दशवें मंत्र में यह प्रश्न किया गया था कि ईश्वर का मुख क्या है? तथा भुजा, ऊरु और पाद क्या हैं? वेद को चाहिये था कि उत्तर में ईश्वर के मुख, बाहु, ऊरु, पाद बतलाता। ऐसा तो वेद ने किया नहीं वरन् वेद यह कहने लगा कि ईश्वर के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और पाद से शूद्र हुये। प्रश्न कुछ और-और उत्तर कुछ और? ऐसा तो कोई मूर्ख मनुष्य भी नहीं कर सकता-यह वेद ने किया क्या?

ये दोनों मंत्र यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा के इकत्तीस के अध्याय के हैं। इस अध्याय में पुरुषमेध यज्ञ है और इस अध्याय का नाम पुरुष सूक्त है। पुरुष सूक्त तीन विषयों का वर्णन करता है इसका प्रथम विषय इतिहास है। द्वितीय विषय पुरुषमेध यज्ञ का क्रम, तृतीय विषय सृष्टिरचना है। जो इसको नहीं जानते वे इस अध्याय को अपना शत्रु समझते हैं। इतिहास देखिये—

यं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥ ६॥

यजु० अ० ३१

उस सब से प्रथम प्रकट होने वाले यज्ञपुरुष का देवता, ऋषि और साध्यों ने पूजन किया।

इस मन्त्रमें तो इतिहास है। फिर इसके आगे "मुखं किमस्यासीत्" इस मन्त्र में पुरुषमेध के लिये निराकार पुरुष के अंगों का प्रश्न है कि पुरुष का मुख, बाहु, ऊरु, पाद क्या हैं? इसके आगे "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" यह मन्त्र है। इस मन्त्र में मुख, बाहु, ऊरु ये तीन पद प्रथमान्त हैं। जैसे ये प्रथमान्त हैं ऐसे ही पाद शब्द

भी प्रथमान्त होना चाहिये था किन्तु वह "पंचम्यन्त" है। इसका मतलब यह है कि इस मंत्र के दो अर्थ होंगे। अर्थ में मुख, वाहु, ऊरु, पाद ये चारों शब्द प्रथमान्त लिये जावेंगे और दूसरे अर्थ में "पद्भ्यां" इस निर्देश से चारों शब्द पंचम्यन्त माने जावेंगे। विभक्ति भेद से दो अर्थ हो जावेंगे देखिये।

ब्राह्मण इस पुरुष का मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य ऊरु, शूद्र पाद यह अर्थ हुआ। इस अर्थ से प्रथम मन्त्र के प्रश्नों का उत्तर भी होगया और जहां वेद ने ईश्वर के मुख का पूजन लिखा है। वहां ब्राह्मण का पूजन होगा, क्योंकि ब्राह्मण ईश्वर का मुख है। जहां ईश्वर की भुजाओं का पूजन होना है वहां क्षत्रियों का और ईश्वर के ऊरु पूजन में वैश्यों का पूजन तथा पाद के पूजन में शूद्रों का पूजन हो जावेगा। इस अर्थ से पुरुषमेध का पूजन क्रम निकला।

दूसरे अर्थ में मुख, वाहु, ऊरु इन तीन पदों को वैसे ही पंचम्यन्त बनाना पड़ेगा जैसे पद्भ्यां पंचम्यन्त है। ऐसा करने पर अर्थ यह होगा कि ईश्वर के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, उरु से वैश्य, पैरों से शूद्र मन्त्र के अन्त में "अजायत" क्रिया पड़ी है जिसका अर्थ है "उत्पन्न हुये" यह सृष्ट्युत्पत्ति का अर्थ है। इस प्रकार वेद का ठीक अर्थ करनेपर इतिहास और "मुखं किमस्यासीत्" से पुरुषमेध यज्ञ में ईश्वर के मुखादि अङ्गों का पूजन तथा सृष्टि क्रम तीनों ही निर्विवाद सिद्ध हो जाते हैं, फिर शङ्का कैसी?

कई एक मनुष्यों का कथन है कि सृष्टि के आरम्भ में तो जाति भेद था किन्तु अब उसमें बिना पढ़े ब्राह्मण को शूद्र और पढ़े हुये शूद्र को ब्राह्मण बनाना इतना परिवर्तन कर देना चाहिये।

तृण, अन्न, वृक्ष, पक्षी, पशु, देव, पाषाण प्रभृति किसी भी जातिमें गुणाधिक्य और गुणाभावसे परिवर्तन नहीं होता फिर मनुष्य जाति में कैसे होगा? जाति मुफ्त में नहीं मिली जो बदल डालोगे, वेद लिखता है कि:—

यथा हि रमणीयाचरणा अभ्याशोह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्। ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयाचरणा अभ्याशोह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन्। श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा॥

छान्दो० वा० उप० प्र० ५ ख० १०

जो शुभकर्मों को करता है वह शुभ शरीर पाता है, ब्राह्मण बनता है, क्षत्रिय बनता है, वैश्य बनता है और जो पापकर्म करता है वह पाप योनि को धारण करता है कुत्ता बनता है, सूकर बनता है, चाण्डाल बनता है।

कल्पना करो एक मनुष्य ने पहिले जन्म में ऐसे कर्म किये कि जिन कर्मों से वह शूद्र योनि में उत्पन्न हुआ और उसका नाम झगड़ू रक्खा गया। अब वह पढ़ गया, पढ़ने पर ब्राह्मण बनना चाहता है, कैसे बनेगा? क्या वह पं० चन्द्रशेखर के पूर्व जन्मों के कर्मों से बन जावेगा? वह पूर्व जन्म के कर्म किसके पूर्वकर्म से बदल डालेगा? जो लोग जाति बदलना मानते हैं वे वेद के परम शत्रु हैं, उनकी दृष्टि में पूर्व जन्म के कर्म झूठे और "य इह कपूयाचरणा" यह श्रुति झूठी, उनके भीतरी भाव तो ये हैं कि ईश्वर है ही नहीं? वेद कोई चीज ही नहीं? पूर्व जन्म होता ही नहीं बस मनमानी ढपली बजालो? "य इह कपूयाचरणा" इस श्रुति में कहे हुये पूर्वकर्मानुसार शरीर मिलता है और उन प्रारब्ध कर्मोंकी समाप्ति पर ही यह शरीर अलग होता है। जाति नाम शरीर का है वह बदलेगा कैसे? हरगिज नहीं बदलता। इसके ऊपर योगदर्शन लिखता है कि:—

जिस कर्म से जाति, आयु, भोग मिले हैं जब तक उस कर्म को नहीं भोग लिया जावेगा जाति, आयु, भोग बदल नहीं सकते।

वेद में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार ही जातियां नहीं हैं वरन् अनेक जातियां हैं, उदाहरण के लिये कुछ जातियों को अवलोकन कराता हूँ।

"निषादेभ्यो नमः [यजु० १६। २८] इस मन्त्रमें निषाद जाति का वर्णन है। नमः क्षतृभ्यः [यजु० १६। २६] इस मन्त्र में क्षत्ता जाति का वर्णन है तक्षभ्यो नमो रथकारेभ्यो नमः कुलालेभ्यो नमः [यजु० १६। २८] इस मन्त्र में तक्ष, रथकार (बढ़ई) कुलाल (कुम्हार) ये तीन जातियाँ लिखी हैं। अकायाय अयोगूमतिक्रुष्टाय मागधम् [यजु० ३०। ५] इस मन्त्र में अयोगू, मागध इन दो जातियों का नाम है। नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं मेधायै रथकारम् [यजु० ३०। ६] इस मन्त्र में सूत, शैलूष और रथकार इन तीन जातियों का निर्देश है। रूपाय मणिकारम् [यजु० ३०। ७] इस मन्त्र में मणिकार जाति का वर्णन है. यह जाति मणियों को बींधती है। नदीभ्यः पौंजिष्टम् [यजु० ३०। ८] इस मन्त्र में पौंजिष्ट, (धानुक) जाति लिखी है। अर्मेभ्यो हस्तिपं जवाय अश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्याय अविपालं तेजसे अजपालं कीलालाय सुराकारम् [यजु० ३०। ११] इस मन्त्र में हस्तिप (पीलवान्) अश्वप (सईस) गोपाल, अजपाल (अहीर-गड़रिया) सुराकार (कलार) जाति

के नाम मौजूद हैं । सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशंताभ्यो बैन्दमवाराय कैवर्तं गुहाभ्यः किरातम् [यजु० ३० । १६] इस मन्त्र में धैवर, दाश, बैन्द, कैवर्त (मलाह) और किरात इतनी जातियां स्पष्ट मिलती हैं । वर्णाय हिरण्यकारम् [यजु० ३० । १७ इस मन्त्र में हिरण्यकार (सुनार) और महसे वीणावादमानन्दाय तलवम् [यजु० ३० । २०] इस मन्त्र में वीणावाद जाति का नाम है जो पूर्वकाल में हिन्दू जाति थी और सारंगी बजाया करती थी तथा तलव जाति का नाम है जो तबला बजाती थी । वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वंशनर्तिनम् [यजु० ३० । २१] इस मन्त्र में चाण्डाल (भंगी) और वंशनर्तन (नट) जाति का वर्णन है । मेधाय वाजः पल्पूली प्रकामाय रजमित्रीम् [यजु० ३० । १२] इस मन्त्र में वासः पल्पूली (धोबी और रजयित्री (रंगरेज) जाति का उल्लेख है । साध्येभ्यश्चर्मम्नम् [यजु० ३० १५] मन्त्र में चर्मम्न (चमार) जातिका वर्णन और "स्वनेभ्यः पर्णकम् [यजु० ३० । १६] इस मन्त्र में पर्णक (भील) जाति का वर्णन है । मन्यवे अयस्तापम् [यजु० ३० । १४ इस मन्त्र में अयस्ताप (लुहार) जाति का नाम मौजूद है ।

यदि गुणाधिक्य और गुण हीनता के आधार पर चार ही जातियां बन सकतीं हैं तो फिर वेद ने इन विविध जातियों का उल्लेख क्यों किया ? इसका कोई भी उत्तर जाति भेद को मिटाने वालों के पास नहीं है ।

कई एक सज्जनों का कथन है कि कार्यवाही (पेशे) से जातियां ली जाती हैं । इस कथन में किंचित् भी सार नहीं, सार है तो केवल इतना है कि पेशे से जाति बतलाने वालों ने श्रुति-स्मृति को नहीं देखा । औशनस प्रभृति स्मृतियों ने पहिले जाति की उत्पत्ति बतलाई और उत्पत्ति के बाद जाति का पेशा लिखा । जाति का आधार पेशा नहीं है किन्तु रज-वीर्य है, फिर हम कैसे मानलें कि जाति पेशे से बनती है । उदाहरण के लिये देखिये औशनस स्मृति में लिखा है कि:—

ब्राह्मण्यां वैश्यसंसर्गाज्जातो मागध उच्यते ।
वन्दित्वं ब्राह्मणानांच क्षत्रियाणां विशेषतः ॥ ७ ॥

ब्राह्मणी में जो वैश्य के संसर्ग से उत्पन्न हो उसे मागध कहते हैं यह ब्राह्मणों तथा विशेष कर क्षत्रियों का बन्दी (स्तुति करने वाला) होता है ।

एक मागध जाति का ही यह नियम नहीं है वरन् जितनी भी जातियां स्मृतियों ने दिखलाई हैं पहिले उन जातियों की उत्पत्ति का कारण, फिर जाति का नाम, नाम के पश्चात् जाति का पेशा बतलाया है । इस व्यवस्था को देख कर कोई भी न्याय शील मनुष्य यह नहीं कह सकता कि पेशे से जातियां बनती हैं ।

वंध्या गौ न प्रसूता होती है और न दूध ही देती है किन्तु जाति की वह गौ रहती है-यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसी प्रकार ब्राह्मण ब्राह्मण का कार्य न कर सकने भी ब्राह्मण ही रहता है इसको महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि पसपसान्हिक भाष्य लिखते हैं कि:—

तपः श्रुतंच योनिश्चेत्येतद्ब्राह्मणकारकम्।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः॥

तप, विद्या योनि इन तीन से पूर्ण ब्राह्मण बनता है। विद्या और तप इन दो से हीन रहा ब्राह्मण जाति का ब्राह्मण है।

मनु जी भी बिना पढ़े ब्राह्मण को जाति का ब्राह्मण ही मानते हैं देखिये—

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥ ९६॥
ब्राह्मणेषु च विद्वान्सो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषुब्रह्मवेदिनः॥ ९७॥

मनु० अ० १

भूतों में प्राणी श्रेष्ठ हैं और प्राणियों में बुद्धिमान् प्राणी श्रेष्ठ हैं, जितने भी बुद्धिजीवी प्राणी हैं उनमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं तथा विद्वानों में वे श्रेष्ठ हैं जो शास्त्र कर्तव्य को अनुष्ठेय मानते हैं, उनमें भी वे श्रेष्ठ हैं जो शास्त्रोक्त अनुष्ठान करते हैं और अनुष्ठान करने वालों में जो ब्रह्मज्ञाता हैं वे श्रेष्ठ हैं।

इस श्लोक में साफ लिखा है कि मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ और ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ। बिना पढ़े ब्राह्मण होते हैं तब तो मनु ने दो प्रकार के ब्राह्मण माने, एक बिना पढ़े और एक विद्वान्।

श्रुति और स्मृति जाति के बदलने का घोर निषेध करती है। जो जाति बदलने के पक्ष को लिये हैं वे श्रुति और स्मृति की संगति नहीं बिठला सकते। संगति तभी बैठेगी जब जाति जन्म से मानी जावे? जाति जन्म से मानना यह वेद और धर्म शास्त्र का अकाट्य सिद्धान्त है, इस सिद्धान्त के विरुद्ध एक भी प्रमाण नहीं। कोई भी युक्ति इसका खण्डन नहीं कर सकती।

आर्यसमाज ।

पाश्चात्य दूषित शिक्षाके झोकों से घबराये हुये कृश्चियन धर्म लोलुप दया जी इस विषय में यह लिखते हैं ।

विवाह वर्णानुक्रम से करें और वर्णव्यवस्था भी गुण कर्म स्वभाव के अनुस होनी चाहिये । (प्रश्न) क्या जिसके माता-पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी ब्राह्म होता है और जिसके माता पिता अन्यवर्णस्थ हों उनका सन्तान कभी ब्राह्मण सकता है ? (उत्तर) हां बहुत से होगये होते हैं और होंगे भी जैसे छान्दोग्य उ निषद् में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातङ्ग ऋषि चाण्डाल कुल से ब्राह्मण होगये थे । अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला वही ब्राह्मण के योग्य है और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसाही आगे भी होग (प्रश्न) भला जो रज-वीर्य से शरीर हुआ है वह बदल कर दूसरे वर्ण के योग्य कैसे हो सकता है ? (उत्तर) रज-वीर्य के योगसे ब्राह्मण शरीर नहीं होता किन्तु-

स्वाध्यायेन जपैर्होमै-स्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

मनु० २ । २८

इसका अर्थ पूर्व कर आये हैं अब यहां भी संक्षेप से कहते हैं (स्वाध्यायेन) पढ़ने पढ़ाने (जपैः) विचार करने कराने, नाना विध होम के अनुष्ठान, सम्पूर्ण वेदों को शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारण सहित पढ़ने पढ़ाने (इज्यया) पौर्णमासी इष्टि आदि के करने (सुतैः) पूर्वोक्त विधिपूर्वक धर्म से सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञै-श्च) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ,वैश्वदेवयज्ञ, और अतिथि यज्ञ (यज्ञैश्च) अग्निष्टोमादि यज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार, सत्यभाषण, परोपकारादि सत्यकर्म और सम्पूर्ण शिल्प विद्यादि पढ़ के दुराचार छोड़ श्रेष्ठाचार में वर्तने से (इयम्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का (क्रियते) किया जाता है । क्या इस श्लोक को तुम नहीं मानते ? मानते हैं । फिर क्यों रज-वीर्य के योग से वर्णव्यवस्था मानते हो ? मैं अकेला नहीं मानता किन्तु बहुत से लोग परम्परा से ऐसा ही मानते हैं । (प्रश्न) क्या तुम परम्परा का भी खण्डन करोगे ? (उत्तर) नहीं परन्तु तुम्हारी उलटी समझ को नहीं मानके खण्डन भी करते हैं । (प्रश्न) हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है इसमें क्या प्रमाण ? (उत्तर) यही प्रमाण है कि जो तुम पाँच सात पीढ़ियों के वर्तमान को सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद

तथा सृष्टि के आरंभ से आजपर्यन्त की परम्परा मानते हैं। देखो जिसका पिता श्रेष्ठ वह पुत्र दुष्ट और जिसका पुत्र श्रेष्ठ वह पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ वा दुष्ट देखने में आते हैं इसलिये तुम लोग भ्रम में पड़े हो देखो मनु महाराज ने क्या कहा है।

येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते॥

मनु० ४। १७८

जिस मार्ग से इसके पिता, पितामह चले हों उसी मार्ग में सन्तान भी चलें परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता पितामह हों उन्हीं के मार्ग में चलें और जो पिता-पितामह दुष्ट हों तो उनके मार्ग में कभी न चलें क्यों कि उत्तम धर्मात्मा पुरुषों के मार्ग में चलने से दुःख कभी नहीं होता इसको तुम मानते हो वा नहीं? हां २ मानते हैं और देखोजो परमेश्वर की प्रकाशित वेदोक्त बात है वही सनातन और उसके विरुद्ध है वह सनातन कभी नहीं हो सकती ऐसा ही सब लोगों को मानना चाहिये वा नहीं? अवश्य चाहिये। जो ऐसा न माने उससे कहो कि किसी का पिता दरिद्र हो और उसका पुत्र धनाढ्य होवे तो क्या अपने पिता की दरिद्रावस्था के अभिमान से धन को फेंक देवे? क्या जिसका पिता अन्धा हो उसका पुत्र भी अन्धा हो उसका पुत्र भी अपनी आखों को फोड़ लेवे? जिसका पिता कुकर्मी हो क्या उसका पुत्र कुकर्म ही करे? नहीं २ किन्तु जो जो पुरुषों के उत्तम कर्म हों उनका सेवन और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देना सबको अत्यावश्यक है। जो कोई रज-वीर्य के योग से वर्णाश्रम व्यवस्था माने और गुण-कर्मों के योग से न माने तो उससे पूछना चाहिये कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चीन, मुसलमान हो गया हो उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते? यहाँ यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ हो के नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये।

(प्रश्न)

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳪ शूद्रो अजायत॥

यह यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय का ११ वां मन्त्र है। इसका यह अर्थ है कि

ब्राह्मण ईश्वर के मुख, क्षत्रिय बाहु, वैश्य ऊरु और शूद्र पगों से उत्पन्न हुआ है इसलिये जैसे मुख न बाहू आदि और बाहू आदिन मुख होतेहैं इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते (उत्तर) इस मन्त्र का अर्थ जो तुमने किया वह ठीक नहीं क्योंकि यहाँ पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है। जब वह निराकार है तो उसके मुखादि अंग नहीं हो सकते । जो मुखादि अंग वाला हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं वह सर्वशक्तिमान्, जगतका स्रष्टा धर्ता, प्रलयकर्ता, जीवों के पुण्य पापों की जान के व्यवस्था करनेहारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषण वाला नहीं हो सकता इसलिये इसका यह अर्थ है कि जो (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (बाहू) "बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्यम्" शतपथ ब्राह्मण । बल बीर्य का नाम बाहु है वह जिसमें अधिक हो सो (राजन्यः) क्षत्रिय (ऊरू) कटिके अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भागका ऊरु नाम है । जो सब पदार्थों और सब देशोंमें ऊरुके बलसे जावे आवे प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् नीचे अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र है । अन्यत्र शतपथ ब्राह्मणादि में भी इस मंत्र का ऐसा ही अर्थ किया है जैसे ।

यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त इत्यादि-

जिससे ये मुख्य हैं इससे मुख से उत्पन्न हुये ऐसा कथन संगत होता है अर्थात् जैसा मुख सब अङ्गों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त होने से मनुष्य जाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है । जब परमेश्वर के निराकार होने से मुखादि अङ्ग ही नहीं हैं तो मुख आदिसे उत्पन्न होना असम्भव है जैसा कि बन्ध्या स्त्री के पुत्र का विवाह होना ? और जो मुखादि अङ्गों से ब्राह्मण उत्पन्न होते तो उपादान कारणके सदृश ब्राह्मणादि की आकृति अवश्य होती । जैसे मुख का आकार गोल माल है वैसे ही उनके शरीर का भी गोल माल मुखाकृति के समान होना चाहिये । क्षत्रियों के शरीर भुजा के सदृश, वैश्यों के ऊरू के तुल्य और शूद्रों के शरीर पग के समान आकार वाले होना चाहिये ऐसा नहीं होता और जो कोई तुमसे प्रश्न करेगा कि जो २ मुखादि से उत्पन्न हुये थे उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा हो परन्तु तुम्हारी नहीं क्योंकि जैसे और सब लोग गर्भाशय से उत्पन्न होते हैं वैसे तुम भी होते हो । तुम मुखादि से उत्पन्न होकर ब्राह्मणादि संज्ञा का अभिमान करते हो

इसलिये तुम्हारा कहा अर्थ व्यर्थ है और जो हमने अर्थ किया है वह सच्चा है। ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है जैसा

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥

मनु० १० । ६५

जो शूद्र कुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाय। वैसेही जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र होजाय, वैसे क्षत्रिय वा वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण ब्राह्मणी वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी होजाता है अर्थात् चारों वर्णों में जिस जिस वर्ण के सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २ उसी वर्ण में गिनी जावे।

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः
पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १ ॥
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो
जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ २ ॥

ये आपस्तम्ब के सूत्र हैं। अर्थ-धर्माचरण से निकृष्टवर्ण अपने से उत्तम २ वर्णों को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस २ के योग्य होवे ॥ १ ॥ वैसे अधर्माचरण से पूर्व २ अर्थात् उत्तम २ वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे वाले वर्णों को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे ॥ २ ॥

जैसे पुरुष जिस जिस वर्ण के योग्य होता है वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिये। इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने २ गुण कर्म स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं अर्थात् ब्राह्मण कुल में कोई क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के सदृश न रहे और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं अर्थात् वर्ण संकरता प्राप्त न होगी इससे किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी।

सत्यार्थ० समु० ४ पृ० ८२ से ८६ तक

विवेचन ।

स्वामी जी गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण व्यवस्था बतलाते हैं और फिर अपने मत को वैदिक कहते हैं यही आश्चर्य है? श्रुति-स्मृति में कहीं पर भी गुण, कर्म,

स्वभाव से वर्णव्यवस्था नहीं लिखी, मालूम होता है कि इस विषय में किसी पादरी ने स्वामी जी को कुछ अधिक भुका दिया इस कारण जाति में गुण, कर्म, स्वभाव का झूठा अडंगा लगाकर हिन्दुओं का जाति बन्धन विगाड़ना चाहते हैं ।

सत्यकाम, विश्वामित्र और मतङ्ग को बतलाया है कि ये तीनों अब्राह्मण से ब्राह्मण बन गये ? स्वामी जी जानते हैं कि आर्यसमाजी न कभी ग्रन्थ देखते हैं और न आगे को देखेंगे केवल हमारे ही लेख को सत्य मान लेंगे इसी आधार पर स्वामी जी ने झूंठ बोल कर संसार को अपने जाल में फांसने का यत्न किया है । सत्य कामादि का अब्राह्मण से ब्राह्मण बनजाना लिखना सुफेद झूंठ है, आप क्रम से कथाओं को देखिये ।

सत्यकाम ।

किं गोत्रो नु सौम्यासीति, सहोवाच नाहमेतद्वेद, भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरꣳ सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जवालातु नामाहमस्मि सत्यकामो नामत्वमसीति सो हꣳसत्यकामो जावालोस्मि भो इतितꣳहोवाच नैतद्ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधꣳ सौम्याहरेति ॥

छान्दोग्य प्र० ४ खण्ड ४

सत्यकाम विद्याभ्यास और उपनयन के लिये महर्षि गौतमके पास गया और प्रार्थना की कि भगवन् ? मेरा उपनयन करो तथा विद्या पढ़ाओ । गौतम ने पूछा सौम्य ! तुम्हारा क्या गोत्र है ? सत्यकाम बोला मैं नहीं जानता मेरा गोत्र क्या है ? मैंने अपनी माता से पूछा था वह मुझसे बोली कि युवावस्था में घर आये अतिथिरूप ऋषियों की मैं सेवा किया करती थी, युवावस्था में तू उत्पन्न हुआ, फिर तुम्हारे पिता तपस्या को चले गये, मैं गोत्र नहीं पूछ पाई, मैं नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है । मैं इतना जानती हूं कि मेरा नाम जवाला है और तेरा नाम सत्यकाम है । ऋषे ! मैं सत्यकाम जावाल हूं । इतना सुनकर गौतम ने कहा कि ब्राह्मणसे भिन्न अन्य कोई ऐसा वचन नहीं कह सकता । मैं जान गया तू ब्राह्मण है, समिधा लेआ मैं तेरा उपनयन करूंगा ।

इस समय सत्यकाम वेद का विद्वान् नहीं, विद्वान् होना दूसरी बात है, अभी वेद का उसने पढ़ना भी आरम्भ नहीं किया। वेदारम्भ के लिये जो वेदारम्भ से पहिले उपनयन संस्कार हुआ करता है अभी वह भी नहीं हुआ, फिर सत्यकाम में कौन विद्या का गुण आगया ? और विना वेद पढ़े कौन कौन उसने वैदिक कर्म किये जिससे वह गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मण बना ? यहां पर तो उपनयन संस्कार होने से पहिले ही गौतम ने सत्यकाम से कह दिया "मैं जानता हूँ" तू ब्राह्मण है। ब्राह्मण के विना ऐसी बात कोई नहीं कह सकता। फिर सत्यकाम का गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मण बतलाना संसार की आंख में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है ? आर्यसमाजियों को महर्षि के झूंठ लिखने और जाल बनाने पर किंचित् भी लज्जा नहीं आती यह बड़े शोक की बात है ?

विश्वामित्र।

विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना वे लोग मानेंगे कि जिन्हों ने विश्वामित्र की गाथा को न पढ़ा हो। अनुशासन पर्व के आरम्भ में भीष्मने राजा युधिष्ठिर से कहा कि कर्म के द्वारा कोई अन्य जाति ब्राह्मण नहीं बन सकती। इसको सुनकर राजा युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि—

ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्राप्यं त्रिभिर्वर्णैर्नराधिप।
कथं प्राप्तं महाराज क्षत्रियेण महात्मना ॥ १ ॥
विश्वामित्रेण धर्मात्मन्ब्राह्मणत्वं नरर्षभ।
श्रोतुमिच्छामि तत्वेन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥

महाभा० अनुशासन प० अ० ३

भगवन् नरेश भीष्म ! यदि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये तीन वर्ण किसी प्रकार से भी ब्राह्मण नहीं हो सकते तो फिर विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण कैसे बन गये ? यह हम याथातथ्य सुनना चाहते हैं, आप कृपा करके हमसे कहें।

युधिष्ठिर के इस प्रश्न पर भीष्म विश्वामित्र की कथा का आरम्भ करते हैं पढ़िये। राजा गाधि के सत्यवती नाम की एक कन्या थी वह ऋचीक ऋषि को विवाही गई। सत्यवती की माता ने एक दिन सत्यवती से कहा कि तुम्हारे पति ऋचीक अलौकिक शक्तिवान् हैं ऐसे पति से तुम प्रार्थना करो कि भगवन् ! न तो मेरे ही पुत्र है और न मेरी माता के ही पुत्र है यदि उनका ध्यान इधर को आकर्षि

हुआ और उन्होंने कृपा की तो फिर मेरे और तेरे दोनों के ही पुत्र होंगे । माता के इस कथन को सुनकर सत्यवती ने एक दिन प्रसन्न चित्त ऋचीक ऋषि से यह प्रार्थना की कि भगवन् ! आप सामर्थ्यवान् ऋषि हैं किन्तु इतने पर भी न तो मेरे ही सन्तान है और न मेरी माता के ही है । इसको सुन कर ऋषि बोले कि अच्छा जब तुम्हारी माता ऋतुमती हों तब ऋतुस्नान से निवृत्त होकर अश्वत्थ को भेंटे और तुम गूलर को भेंटो । समय आने पर ऐसा करके ऋषि को सुनाया गया । ऋषि ने दोनों के लिये पृथक् पृथक् चरु पकाया । एक चरु सत्यवती को दे दिया और समझा दिया कि यह चरु तेरा है इसको तू खाना एवं यह दूसरा चरु तेरी माता का है इसको वह खावे । जब सत्यवती उस चरु को लेकर अपनी माता के पास गई तब माता ने कहा कि बेटी ! तेरा चरु उत्तम मंत्रों से मंत्रित हुआ होगा इस कारण यह चरु मुझे देदे और मेरा चरु तू लेले, यदि इसमें कुछ कसर भी होगी तो उस कसर को ऋषि फिर दूर कर देंगे । माता के इस कथन को सुन कर कन्या ने अपना चरु माता को दे दिया और माता का आप ले लिया, ऐसा करके दोनों ने खा लिया । केवल चरु मात्र के भक्षण से दोनों को गर्भ रहा । एक दिन सत्यवती को देख कर ऋषि ने कहा कि तैंने चरु बदल डाला और तुमने वृक्ष भी व्यत्यय से ही भेंटे हैं । हमने तुम्हारे चरु में समस्त ब्रह्मतेज स्थापित किया था और तुम्हारी माता के चरु में क्षात्रतेज रक्खा था अब तुमने व्यत्यय कर लिया उसका फल यह होगा कि—

तस्मात्सा ब्राह्मणं श्रेष्ठं माता ते जनयिष्यति ॥ ४० ॥
क्षत्रियं तूग्रकर्माणं त्वं भद्रे जनयिष्यसि ॥ ४१ ॥

अनुशासनप० अ० ४

चरु के व्यत्यय से तुम्हारी माता ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण को उत्पन्न करेगी और तू उग्रकर्मा क्षत्रिय को पैदा करेगी ।

यह बहुत बुरा हुआ कि तैंने माता के प्रेम में आकर चरु को बदल डाला । ऋषि के इस कथन को सुन कर सत्यवती घबरा गई और बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । होश आने के पश्चात् उठी और ऋषि से बोली कि भगवन् ! मैं अपराधिनी हूं, दीन हूं, शरण में आई हूं, उग्रकर्मा मेरा पौत्र भले ही हो किन्तु पुत्र इस प्रकार का कदापि न हो । ऋषि ने इस दीना की प्रार्थना को सुना और अपने तपोबल से उग्रकर्मत्व तथा क्षत्रियत्व का दूरीकरण किया, समय आने पर इस सत्यवती के जमदग्नि नाम वाला ऋषि उत्पन्न हुआ ।

गाधि की भार्या ने भी पुत्रोत्पन्न किया, उसके प्रकरण में भीष्म कहते हैं कि—

विश्वामित्रं चाजनयद् गाधिभार्या यशस्विनी।
ऋषेः प्रसादाद्राजेन्द्र ब्रह्मर्षिं ब्रह्मवादिनम् ॥ ४७ ॥

अनुशा० प० अ० ४

हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! यशवती गाधि की पत्नी ने ऋषि के प्रसाद से वेद को कथन करने वाले ब्रह्मर्षि विश्वामित्र को उत्पन्न किया।

अब कौन मनुष्य कह सकता है कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया। विश्वामित्र की कथा कहने वाले महाभारत ने तो उत्पन्न होते ही विश्वामित्र को ब्रह्मवक्ता एवं ब्रह्मर्षि कहा है फिर इसका क्षत्रिय होना मानेगा कौन? यह गाधि के वीर्य से उत्पन्न नहीं हुआ केवल चरु मात्र से गर्भ रहा है। चरु में क्षत्रियपन था ही नहीं, चरु के सर्वांश में ब्रह्मतेज था अतएव विश्वामित्र जन्मसे ही ब्राह्मण उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण से जो क्षत्रिय कन्या में उत्पन्न होता है उसमें माता के रज से कुछ क्षत्रियत्व विकार रहता है इसी कारण मन्वादि धर्मशास्त्रों ने ऐसी सन्तान को पूर्ण ब्राह्मण न लिखकर मूर्धाभिषिक्त लिखा है। विश्वामित्र ने अपने घोर तप से मातृरज को अपने शरीर से निकाल दिया, निकालने के पश्चात् वह पूर्ण ब्राह्मण बन गया। जब तक उसमें मातृरज का दोष रहा वशिष्ठ विश्वामित्र को राजर्षि कहते रहे। मातृ रजोदोष न रहने से वशिष्ठ ने विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि कह दिया। इस कथा में जब चरु ब्रह्मवीर्य से युक्त था और महाभारत ने उत्पन्न होते ही विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि मान लिया, इतना होने परभी विचारशील मनुष्य यह नहीं मान सकता कि विश्वामित्र क्षत्रिय के वीर्य से पैदा हो विद्या पढ़ कर ब्राह्मण बन गया। जो ऐसा मानता है या तो वह विश्वामित्र की गाथा नहीं पढ़ा या जान बूझ कर महाभारत का गला घोट मनुष्यों की आंखों में धूल झोंकता है।

किसी किसी मनुष्य का यह कथन है कि पुरुष के भोग किये बिना केवल चरु मात्र से गर्भ नहीं रह सकता, यह निरी गप्प है?

इसके उत्तर में हम यह कहेंगे कि चरु मात्र से गर्भ रहना यह हमने नहीं बतलाया महाभारत ने बतलाया है। यदि महाभारत गप्प है तब तो गाधि का होना गप्प और गाधि के स्त्री के विश्वामित्र का होना गप्प तथा विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना गप्प, फिर इस गप्प युक्त विश्वामित्र की कथा को तुमने क्यों सत्य माना? और क्यों लिखा कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया? यह स्वामी

दयानन्द जी की खुल्लमखुल्ला चालबाजी है। जब उनको प्रमाण देना हो तब ग्रन्थ सत्य होजाय और यदि दूसरा मनुष्य प्रमाणमें देदे तो फिर वही ग्रन्थ गप्पा बनजाय।

जिन लोगों ने वेद का अध्ययन नहीं किया वे वेद वेद चिल्लाते हुये भी वेद के महत्व को पैरों के नीचे कुचल डालते हैं। सर्व वेद भाष्यकार सायण भाष्य करते हुये वेद भाष्य भूमिका में लिखते हैं कि—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतद्वदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

जो उपाय प्रत्यक्ष में नहीं आता और जो अनुमति अकलिया दलील में नहीं बैठता वह वेद के अनुष्ठान से मिल जाता है यही वेद की वेदता है।

वेदोक्त पुत्रेष्टि यज्ञ होने पर केवल चरु मात्र से पुत्र उत्पन्न होता है इसको न्याय दर्शन ने माना है कि त्रिपिण्डी श्राद्ध के मध्यम पिण्ड के भक्षण से स्त्री को गर्भ रहता है यह भी एक वेद का महत्व है इसको मनु ने भी लिखा है। कात्यायन श्रौत सूत्र में इसकी विधि है।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।

हे पितरो! तुम गर्भ स्थापन करो और कमल की माला पहिनने वाला इस स्त्री के पुत्र पैदा हो।

यह स्वतः वेद कहता है। इसी प्रकार के वेदमें अनेक अनुष्ठान ऐसे हैं जिनसे असम्भव बातें संभव बन जाती हैं फिर हम कैसे मानलें कि चरु से गर्भ नहीं रहता, किसी बात को बिना विचारे असंभव बतला देना यह मूर्खता है। यह सिद्ध होगया कि विश्वामित्र की उत्पत्ति केवल चरु से है और चरु में ब्रह्मतेज भरा है फिर यह बात कोई भी नहीं कह सकता कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण होगये? रही बात मतंग की। मतंग का इतिहास यह है।

मतंग।

किसी ब्राह्मण का पुत्र मतंग नामक था, उसके पिता ने मतंग को यज्ञ कराने के लिये नियत किया। वह एक दिन दो गधा जिसमें लगे हुये थे ऐसे रथ पर चढ़ के जा रहा था, उसने रथ में जुड़े गधे की नासिका में निर्दयता से बार बार प्रतोद (पैना) छेदा, जिससे उसकी नाक में घाव हो गया। इस दशा को देख कर दूसरी ओर रथ में जुड़ी हुई उस गधे की माँ गर्दभी बोली कि हे पुत्र। तू शोक मत कर,

इस रथ पर छेदने वाला चाण्डाल बैठा है। ब्राह्मण में दया होती है ऐसा निर्दय होकर ब्राह्मण कभी नहीं मार सकता और यह रथ पर बैठा चाण्डाल पापयोनि होने से अपने निर्दयता के स्वभाव को छिपा भी नहीं सकता। जैसे पूर्वजन्म के किसी नीच कर्म से वह गर्दभी बनी और किसी उत्तम धर्मानुष्ठान से उसको ऐसा ज्ञान भी था वैसे ही चाण्डाल योनि मतंग भी पूर्वजन्म के उत्तम संस्कार से गर्दभादि की बोली समझता था (अर्थात् इतिहास में साधारणों की कथायें नहीं लिखी गईं किन्तु सिद्धों के इतिहास लिखे गये हैं) मतंग ने गर्दभी के कथन को सुन और समझ के रथ से उत्तर कर गर्दभी से पूछा कि मेरा ब्राह्मणपन कैसे नष्ट हुआ, मेरी माता ने क्या पाप किया, मैं चाण्डाल कैसे हो गया? ठीक ठीक मुझे बतला दे। गर्दभी ने कहा कि तुम कामातुर मत्त ब्राह्मणी में नाई से पैदा हुये हो अर्थात् तुम्हारी माता ने नाई से संयोग किया उससे तुम पैदा होने के कारण चाण्डाल (मेहतर) हो। मतंग ने यह सब सुनके पिता के पास जाकर समस्त वृत्तान्त कहा और वहाँ से निकल कर तप करने को चला गया। तप करते करते इन्द्र देवता ने आकर कहा कि हम प्रसन्न हैं तू वर मांग मतंग ने कहा मैं ब्राह्मण होना चाहता हूं।

ब्राह्मण्यं प्रार्थयानस्त्वमप्राप्यमकृतात्मभिः।
विनशिष्यसि दुर्बुद्धे तदुपारममाचिरम् ॥ २८ ॥
श्रेष्ठतां सर्वभूतेषु तपोऽर्थं नातिवर्तते।
तदग्र्यं प्रार्थयानस्त्वमचिराद्विनशिष्यसि ॥ २९ ॥
देवतासुरमर्त्येषु यत्पवित्रं परं स्मृतम्।
चाण्डालयोनौ जातेन न तत्प्राप्यं कथं चन ॥ ३० ॥

महा० अनुशासन पर्व अ० २७

मतंग! जिन्होंने पुण्यपुञ्ज का संग्रह नहीं किया उनसे अप्राप्य ब्राह्मणत्व ी तू प्रार्थना करता है, तू दुर्बुद्धि है इस ब्राह्मणत्व की इच्छा से तू उपराम कर, हीं तो तू नष्ट हो जावेगा ॥ २८ ॥ सब प्राणियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण जाति तप से प्राप्त हीं हो सकती उस ब्राह्मणजातीय उत्तमता को चाहता हुआ तू शीघ्र नष्ट होजायगा ९॥ देवता, असुर और मनुष्यों में ब्राह्मणपन परम पवित्र माना गया है, उस ब्राह्मण- को चाण्डाल योनि में उत्पन्न हुआ कदापि प्राप्त नहीं हो सकता।

मतंग ने दो तीन बार उग्र तप किया और इन्द्र देवता ने आकर वैसा ही समझाया, अन्त में इन्द्र ने मतंग से कहा कि—

तदुत्सृज्येह दुष्प्रापं ब्राह्मण्यमकृतात्मभिः ॥ १२ ॥
अन्यं वरं वृणीष्व त्वं दुर्लभोऽयं हि ते वरः ॥ १३ ॥

अनुशासन पर्व अ० । २६ ।

इस कारण से अशुद्ध शरीर वालों को जो प्राप्त नहीं हो सकता ऐसे ब्राह्मणपन के वर छोड़ कर तुम अन्य वर मांगो। तुम्हारे लिये यह वर दुर्लभ है, तुम किसी प्रकार ब्राह्मण नहीं हो सकते।

इतना कह कर इन्द्र चला गया, मतंग पूर्ववत् चाण्डाल बना रहा, यह मतंग का इतिहास है। इस कथा से मतंग का ब्राह्मण होना लिखना सर्वथा अन्याय है। इन कथाओं को देख कर कोई भी न्यायशील मनुष्य इनसे वर्ण परिवर्तन सिद्ध नहीं कर सकता। फिर भी जब कोई अवलम्ब वर्ण परिवर्तन का नहीं मिला तो स्वामी जी ने झूठ ही लिख मारा। क्या झूठ लिखना भी कोई न्याय या धर्म है? इस प्रकार की झूठी बातों को लेकर जो आर्य्यसमाज चला है वह कितने दिन संसार में ठहर सकेगा।

फिर स्वामी जी ने लिखा है कि "स्वाध्यायेन" इस श्लोक में जो स्वाध्याय, जप, होम, त्रिविद्या, इज्यया, धर्म से सन्तानोत्पत्ति, महायज्ञ, यज्ञ है, इनसे यह शरीर ब्राह्मी बनाया जाता है अर्थात् ब्राह्मण हो जाता है।

लेख गलत है। प्रथम तो यह श्लोक मनु का है, किसी भी वेद मंत्र के अनुकूल नहीं? स्वामी दयानन्द जी वेदानुकूल मनु को मानते हैं। जब यह वेदानुकूल ही नहीं तो फिर आर्य्यसमाज को प्रमाण कैसे होगा? (२) यज्ञ स्वामी जी ने वेदों से उड़ा दीं, अब अग्निष्टोमादि यज्ञ जब वेद में रहे ही नहीं तो आर्य्यसमाजी करेंगे कहां से? (३) "ब्राह्मीयं" का अर्थ "ब्राह्मण" नहीं हो सकता। इस अर्थ में वेद, धर्मशास्त्र, पुराण-इतिहास, दर्शन और अंग सब जबाव दे बैठते हैं। 'ब्राह्मीयं' का 'ब्राह्मण' अर्थ करना पीनक की दशा को सिद्ध करता है। "ब्राह्मीयं-ब्रह्मप्राप्तियोग्येयं तनुः क्रियते" इन अनुष्ठानों से ब्रह्मप्राप्ति के योग्य शरीर बनता है। कुल्लूक भट्ट आदि जितने भी संस्कृत या भाषा के टीकाकार हैं सभी ने यह अर्थ किया है कि इन अनुष्ठानों से शरीर ब्रह्म प्राप्ति के योग्य हो जाता है। (४) स्वामी जी ने पाठ भी बदल लिया, आपने "व्रतैर्होमैः" का "जपैर्होमैः" बना लिया? यहां पर जप को

उत्तम कर्म मान बैठे, यह याद न रहा कि मूर्ति पूजा में हमने ही लिखा है कि जैसे मिसरी २ कहने से मुँह मीठा नहीं होता, वैसे राम २ कहने से क्या होगा? 'जप' बार बार उच्चारण का नाम है, उसका आप मूर्ति पूजा में खण्डन कर चुके, यहां पर उसको ही शुभ कर्म बतला दिया, महर्षि के इस गोरखधन्धे पर आर्य्यसमाजियों को ध्यान देना चाहिये। पाठ बदला था इस लिये कि 'व्रत' रखने का अडंगा न लग जावे, वह तो छूट गया किन्तु 'जप' का अड़ंगा आर्य्यसमाजियों के पीछे दौड़ पड़ा।

(५) इस श्लोक में कई बातें ऐसी हैं जिनको आर्य्यसमाज वैदिक ही नहीं मानता। ठीक अर्थ देखिये—

स्वाध्याय पढ़ना-पढ़ाना, व्रत मधु-मांस वर्जनादि नियम, होम सावित्र चरु का सायं प्रातःकाल हवन, त्रैविद्याख्य व्रत, इज्या ब्रह्मचर्यावस्था में देवर्षि-पितृ तर्पण गृहस्थावस्था में सुतोत्पादन, महायज्ञ, ब्रह्म यज्ञादिक पांच, यज्ञ ज्योतिष्टोमादि-इतने कर्तव्यों से यह शरीर ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है-यह मनु का कथन है। मनु ने "अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः १०। १" इस श्लोक में केवल द्विजातियों को ही स्वाध्याय कहा है वह आर्य्यसमाजियों को स्वीकार नहीं। सावित्री द्वारा चरु का होम भी आर्य्यसमाज के मत के विरुद्ध है। आर्य्यसमाज में जो हवन होता है उसमें चरु पकाया नहीं जाता और न चरु से हवन होता है एवं न ही आर्य्यसमाज में चरु के होम की कहीं विधि है? त्रिविद्याख्य व्रत आर्य्यसमाजी कोई करता नहीं और न आर्य्यसमाजी ग्रन्थों में यह बतलाया गया कि यह कौन बलाय है? इज्या ब्रह्मचर्या-वस्था में देवर्षि पितृ तर्पण जो मनु ने लिखा है वह इन्द्रादि देव और ब्रह्मादि ऋषि एवं यमादि पितरों का है, वह तर्पण आर्य्यसमाज के मत के विरुद्ध है? यज्ञ ज्योति-ष्टोमादि आर्यसमाज के मत से वेद में हैं ही नहीं इस कारण श्लोक का जाली अर्थ बना कर स्वामी जी आर्य्यसमाजियों को अपने जाल में लेते हैं। बस सिद्ध हुआ कि आर्य्यसमाज के मत में यह श्लोक वेदानुकूल नहीं। श्लोक में कहे हुये कर्तव्य भी आर्य्यसमाज के मत के विरुद्ध हैं? 'ब्राह्मीयं' का अर्थ ब्राह्मण हो नहीं सकता फिर झूठे पैंतरे बदल कर स्वामी जी ने जो शूद्रों का ब्राह्मण होना लिख दिया इस कपट जाल में वे ही चिड़ियां फंसेंगी जो सर्वथा मूर्ख होने के कारण आर्य्यसमाज के रजि-स्टर में नाम लिखवा चुकी हों? पढ़े लिखे मनुष्यों पर किसी का कपट जाल नहीं चल सकता।

स्वामी जी-पिता-पितामहादिक इस आपके नकली ईसाई मार्ग से नहीं चले वरन् वर्णव्यवस्था का न बदलना यही वेद का सिद्धान्त है। तुम क्या गजब करते हो

वेद को, झूठा ठहरा कर लोभवश अपने मन में पैदा किये गपोड़े को वैदिक बतलाते हो ? वर्ण का बदलना न वेद में है और न धर्मशास्त्र में ?

स्वामी जी यह भी लिखते हैं कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ मुसलमान ईसाई होगया हो उसको तुम पहिले ब्राह्मणादिक वर्ण में क्यों नहीं मानते ? स्वामी जी ? आपका शास्त्र समझा हुआ नहीं है। जो ब्राह्मण या क्षत्रिय ईसाई मुसलमान होगया वह अब भी जाति का ब्राह्मण क्षत्रिय ही है, जाति तो शरीर के पतन पर बदलेगी ? यदि कहो उससे खान-पान और विवाहादि सम्बन्ध क्यों नहीं करते ? वह भ्रष्ट हो गया है इस कारण उसका जाति में ग्रहण नहीं होता ? सभी मनुष्य लड्डू खाते हैं किन्तु जो लड्डू मैलेसे भिड़ गया उसको कोई नहीं खायगा क्योंकि वह भ्रष्ट होगया। इसी प्रकार ब्राह्मण-क्षत्रिय-ईसाई हो जाने से जाति के ब्राह्मण रहने पर भी भ्रष्ट हो जाते हैं अतएव उनका व्यवहार छोड़ दिया जाता है। स्वामी जी ! आप यह क्या धोखा देते हैं जो "ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्" इस मन्त्रमें निराकार ईश्वर की अनुवृत्ति बतलाते हैं ? इस अध्याय में तो निराकार ईश्वर कहा ही नहीं। फिर तुम अपने दिमाग की झूठी बातों को वेद के नाम से क्यों लिखते हो ? इस अध्याय में तो "सहस्रशीर्षापुरुषः" इस मन्त्र द्वारा साकार विराट् का वर्णन है ? आगे चल कर "तं यज्ञम्" इस मन्त्र में यह वर्णन किया कि जो सबसे पहिले पैदा हुआ था उस यज्ञ पुरुष विराट् का ऋषियों ने पूजन किया फिर यहां निराकार कहाँ से धंस बैठा ? आप वेद के प्रत्येक मन्त्र के गले पर छुरा चला रहे हैं, आपका यह कर्तव्य अत्यन्त घृणास्पद है ? आपने जो "ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्" का अर्थ किया वह नुमाइस में इनाम पाने के लायक है। आपका यही तो अर्थ है कि 'जो सब में उत्तम हो वह ब्राह्मण, ? आपके हिसाब से राजा ब्राह्मण, मंत्री ब्राह्मण, पहलवान् ब्राह्मण गायक शिरोमणि ब्राह्मण, खूब सूरत ब्राह्मण तथा रण्डी ब्राह्मण, ? जो उत्तम होंगे वे सब ब्राह्मण होंगे ? इनमें कुछ न कुछ उत्तमता अवश्य रहती है ? फिर आप लिखते हैं कि 'जिसमें बल वीर्य अधिक हो वह क्षत्रिय, पहलवान् क्षत्रिय, शेर क्षत्रिय और भैंसा क्षत्रिय। आप यहां पर शतपथ की धमकी भी देते हैं, प्रत्यक्ष विरुद्ध शतपथ नहीं कहेगा ? तुम्हीं कहो। यह भी खूब कही कि, ऊरु के बल से जो देश विदेश जावे वह वैश्य, यदि कोई आर्यसमाजी पण्डित पेशावर से पैदल चलकर कलकत्ते पहुंच जावे तो वह आपकी दृष्टि में वैश्य क्योंकि ऊरु के बल से आया है। आपके इस लक्षण से तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हाथी, घोड़ा, ऊंट, गधा, गाय, भैंस भेड़ बकरी सभी

वैश्य हो जावेंगे क्योंकि ये सब ऊरु के बल से चलते हैं ? आपकी अनर्गल बातों को वे ही मानेंगे जिनको बुद्धि का अजीर्ण होगया है। विचार शील नहीं मान सकते ? आप यह भी खूब लिखते हैं कि, जो पैर के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र आपकी दृष्टि में पैर मूर्ख है। और भुजा चारों वेद पढ़ी हैं, पेट दर्शनों का पण्डित है और ऊरु वैयाकरण हैं। यह आप कहाँ की अक्ल खर्च कर रहे हैं ? पैर बोलते नहीं तो भुजा, पेट, और ऊरु भी तो सत्यार्थ प्रकाश नहीं बांचते ? यदि आप कहें कि भुजा लिखने पढ़ने का काम करती है, पेट अन्न पचाने का काम करता है तो पैर भी तो चलने का काम करते हैं। क्रिया करने की शक्ति सब में है किन्तु है ईश्वरदत्त पृथक् २ ? फिर आप पैरोंको मूर्ख और जंघादिकों को धुरंधर विद्वान् कैसे मानते हैं ? आप कुछ तो सोच समझ कर लिखा करें कि सभी जगह असम्बद्ध प्रलाप लिखोगे ? एवं फिर आपने यह अर्थ कहां से निकाला ? क्या किसी वेद मन्त्र का अनुवाद है या तुम्हारे मन का हुक्म ?

आप कहते हैं कि शतपथ भी ऐसा ही मानता है। शतपथ का जो आपने प्रमाण दिया वह तो हमारे सिद्धान्त की पुष्टि करता है शतपथ का अर्थ यह है कि ब्राह्मण सबमें मुख्य हैं इस लिये इनको विराट् के मुख से रचा"। इस अर्थ से हमारे सिद्धान्त की पुष्टि है या आपके सिद्धान्त की ? शाबास है बुद्धिमान् हों तो ऐसे ही हों। जिस सिद्धान्त का खण्डन करें उसी की पुष्टि में प्रमाण लिखदें ?। आप जबर्दस्ती यह अपने मन में धसा हुआ गुण, कर्म स्वभाव प्रमाणों के अर्थों में क्यों मिलाते जाते हैं क्या आप ईश्वरकी भूल को पूरा कर रहे हैं ?। आप विराट को भी निराकर मानते हैं यह आपकी विलक्षण बुद्धि है। संभव है आपकी दृष्टि में आर्यसमाजी और आर्यसमाजियों के मकान भी निराकार हों ? ऐसी बुद्धि की बलिहारी है।

हमें आश्चर्य होता है कि आप इस किस्म के अर्थ लिखते हैं जिनको बच्चे भी स्वीकार न करें। आपका लेख है कि "ब्राह्मण ईश्वर के मुख से पैदा होते तो ये गोलमटोल होते और जमीन पर लुढ़कते फिरते यदि भुजा से क्षत्रिय होते तो लम्बे २ ताड़ कैसे लट्ठे बनते। वैश्य ऊरु से पैदा होते तो ऊपर से मोटे, नीचे से पतले कुछ चिकने २ बनते। इसी प्रकार शूद्र पैरों से उत्पन्न होते तो पीछे से पतले, आगे से चौड़े कुछ गांठों वाले बनते क्यों कि कार्य उपादान कारण के सदृश होता है"। स्वामी जी ! आप विना पढ़े ही दर्शनों में दौड़ते हैं ? यदि कार्य उपादान कारण के सदृश होता है तो फिर यह मनुष्य पानी से पैदा होता है, यह कठिन शरीर का क्यों होगया ? वट का वृक्ष जरा से गोल बीज से

उत्पन्न होता है तो फिर यह फिर बीज के सदृश क्यों नहीं ? गोल सरसों का पेड़ लम्बा क्यों ? यह भी कारण के सदृश होना चाहिये ? संसार में आप एक ही दार्शनिक ऐसे हुये जो प्रत्यक्ष विरुद्ध कार्य को कारण के सदृश मानते हैं। ये तुम्हारे गपोड़े आर्यसमाजी आंख बन्द करके भलेही मानलें किन्तु विचारशील संसार नहीं मान सकता ?

स्वामी जी लिखते हैं कि "सृष्टि के आरम्भ में जो लोग मुख से पैदा हुये थे वे ब्राह्मण थे किन्तु आज कल के ब्राह्मण तो मुख से पैदा नहीं हुये फिर ये ब्राह्मण कैसे" ?। स्वामी जी की चालबाजी न छूटी, प्रत्येक लेख में आप चालबाजी से ही काम लेते हैं। ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही होता है जैसे बैल का पुत्र बैल और ऊंट का पुत्र ऊंट। इसी प्रकार जब घोड़े का पुत्र घोड़ा और गधे का पुत्र गधा होता है तो फिर ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण और क्षत्रिय का पुत्र क्षत्रिय एवं वैश्य का पुत्र वैश्य और शूद्र का पुत्र शूद्र कैसे न होगा ? सभी जातियों में बाप के सदृश पुत्र होता है फिर आपने ब्राह्मणादि मनुष्यों के विषय में इस सड़ियल दलील को क्यों लगाया ? जो व्याकरण पढ़े हैं वे जानते हैं कि "ब्राह्मणस्य पुत्रः पुमान्ब्राह्मणः" किन्तु इस बात को वही समझेगा जो लिखा पढ़ा हो।

अब रही बात "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" इसकी, यहाँ पर इसके पहिले "शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः" श्लोक है। इन दोनों श्लोकों का इकट्ठा अर्थ होता है। (१) एक श्लोक को छोड़ा और एक को लिया यह प्रथम दोष (२) दोनों श्लोक वेद के किसी मन्त्र से नहीं मिलते, वेदानुकूल न होने पर भी दोनों श्लोकों को स्वामी जी ने वेदानुकूल मान लिया यह दूसरा दोष। (३) इन दोनों श्लोकों में कहीं पर गुण, कर्म, स्वभाव नहीं है, इन तीनों को स्वामी जी ने अपनी तरफ से श्लोकों के अर्थों में मिला दिया, यह तीसरा दोष। (४) इन श्लोकों का भाव यह है कि शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण से यदि कन्या पैदा हो और वह कन्या बराबर ब्राह्मणों में विवाही जावे तो सातवीं पीढ़ी में माता के रज के परमाणु बिल्कुल निकल जावेंगे, सप्तम कन्या शुद्ध ब्राह्मणी हो जावेगी। इसी प्रकार ब्राह्मणी में यदि शूद्र से सन्तान पैदा हो और उसका सम्बन्ध शूद्र जाति में होता जावे तो सप्तम कन्या सर्वांश में शूद्र हो जावेगी यह श्लोकों का अर्थ है। पूर्ण अर्थ वेदानुकूलता के प्रकरण पृष्ठ १२६ में हम लिख आये है वहाँ देखलो। जैसे २ रज वीर्य की शुद्धि या अशुद्धि होती जावेगी वैसे ही वैसे सन्तान में पवित्रता और अपवित्रता बढ़ेगी यहां तो रज-वीर्य से ही शूद्र का ब्राह्मण बनना और ब्राह्मण का शूद्र बनना लिखा है फिर कौन कहता है कि इन

श्लोकों में गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था है ? स्वामी जी की चालबाजियों पर ध्यान देना यह पाठकों का कर्त्तव्य है।

स्वामी जी आपस्तम्ब के दो सूत्र प्रमाण देते हुये जाति का बदल जाना लिखते हैं किन्तु "जातिपरिवृत्तौ" पद के अर्थ को दबा लेते हैं। अर्थ यह होता है "धर्माचरण से छोटे वर्ण बड़े २ वर्ण को प्राप्त होते हैं जाति बदल जानेपर। अधर्माचरण से बड़े वर्ण छोटे २ वर्णों को प्राप्त होते है जाति बदल जाने पर"। जाति शरीर में रहती है। शरीर बदलने पर जाति बदलती है और दोनों सूत्र जाति बदलने पर ही वर्ण बदलना मानते हैं किन्तु स्वामी जी दो बार आये हुये "जातिपरिवृत्तौ" शब्दों का अर्थ ही नहीं करते। अब पूछना यह है कि यहां पर आपस्तम्ब के सूत्र से वर्ण बदलना सिद्ध है या स्वामी दयानन्द जी की की हुई चोरी के बल पर ? सूत्र तो कहते हैं कि शरीर के बदल जाने पर वर्ण बदल जाता है और स्वामी जी सूत्रों के दो पद चुराकर तुरंत ही वर्ण बदल देते हैं। सूत्रों के पदों को चुरा कर सूत्रों का अर्थ करना आर्यसमाज के लिये क्या लज्जा की बात नहीं है? इसको आर्य्यसमाजी सोचें। भाव यह है कि वेदादि सच्छास्त्रों में से कहीं पर भी वर्ण बदलने की स्वीकारता नहीं है, स्वामी जी ने जाल बना, चालबाजी कर, चोरी का आश्रय ले वर्ण बदलनेका सिद्धान्त उठाया किन्तु विद्वानों की विवेचना से यह पबलिक पर जाहिर होगया कि स्वामी जी वेदशास्त्रों के गले घोट एक नया सिद्धान्त चलाते हैं। विचार के आगे इस कल्पित सिद्धान्त की धज्जियां उड़ जाती हैं।

चेले।

स्वा० दयानन्द जी के चेले भी इस बात को जान गये कि स्वामी जी ने जो वर्णव्यवस्था पर प्रमाण उठाये वे दयानन्द के सिद्धान्त से ही विरोध रखते हैं और उनको लेकर जो समाजी पंडित शास्त्रार्थ करेगा वह तत्काल हार जावेगा यह अनुभव कर दयानन्द जी के प्रमाणों का अब चेले कुछ भी जिक्र नहीं करते किन्तु अब इन्होंने कुछ ऐसे प्रमाण खोले हैं जो शास्त्रार्थ में सनातनधर्मियों के आगे रक्खे जाते हैं। हैं वे भी असत्य, उनको रख कर भी आर्यसमाज को हारना पड़ता है तो भी दयानन्द गृहीत प्रमाणों को नहीं रखते, अपने ही प्रमाणों को रखते हैं। इनका कथन यह है कि "ब्राह्मण शूद्र होजाता है"। इसकी पुष्टि में श्लोक देते हैं कि:—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ १०३ ॥

मनु० अ० २

जो मनुष्य प्रातः और सांय संध्या नहीं करता वह समस्त द्विज कर्म से शूद्र की भाँति बाहर कर देने योग्य है ।

इस श्लोक को आगे रख कर आर्यसमाजी कहते हैं कि देखो द्विजाति भी शूद्र हो जाता है ? यहां पर "शूद्र" पद नहीं है वरन् "शूद्रवत्" है । शूद्र का अर्थ जो होता है वही ये लोग 'शूद्रवत्, का कर लेते हैं किन्तु यहां पर तुल्य अर्थ में वतुप् प्रत्यय है, इस कारण शूद्रवत्, का अर्थ 'शूद्र तुल्य' होता है अर्थात् जो ब्राह्मण संध्या नहीं करता उसको द्विज कर्म से ऐसे निकाल दो जैसे शूद्र निकाल दिया जाता है । कहो, यहां ब्राह्मण शूद्र हुआ कि शूद्र की तरह निकाला गया ? यदि वही ब्राह्मण संध्या न करने का प्रायश्चित्त करदे तो फिर द्विज कर्म में शामिल हो जाय। जाति नहीं बदलती यह तो दण्ड है । आर्यसमाजियो ? तुम 'शूद्र' और 'शूद्रवत्' में घपला डाल कर मूर्खों को जाल में फाँस सकते हो विद्वान् को नहीं ? फिर नहीं मालूम संसार में जिनका कपट खुल जावे ऐसी चालाकियों का आश्रय तुम क्यों लेते हो ?

कई एक आर्यसमाजी कहते हैं कि सत्यकाम, मतंग, विश्वामित्र का इतिहास तो आर्यसमाज के सिद्धान्त को पुष्ट नहीं कर सकता, हाँ-कई इतिहास ऐसे हैं जिनसे वर्ण बदलना सिद्ध है । जैसे कहारी का लड़का महर्षि वेदव्यास और वेश्या का पुत्र वशिष्ठ ब्रह्मर्षि, एवं भील का लड़का बाल्मीक ब्राह्मण होगया । यदि वर्ण न बदलता होता तो ये तीनों ब्राह्मण कैसे बनते ।

उत्तर—वेदव्यास कहारी का लड़का नहीं क्षत्रिय कन्या का पुत्र है । वसिष्ठ मित्रावरुण से उर्वसी विजली में अयोनिज मानसिक पुत्र है । वाल्मीक किसी भील का लड़का नहीं किन्तु ब्रह्माके पुत्र महर्षि प्रचेता का पुत्र है, क्रम से इतिहास देखिये ।

व्यास ।

महाभारत आदि पर्व अध्याय ६३ में कथा इस प्रकार है कि उपरिचर वसु नाम के राजा के एक पुत्री और एक पुत्र हुआ । पुत्री दास को पालने को दे दी और लड़का आप रख लिया ।

तयोः पुमांसं जग्राह राजोपरिचरस्तदा ।
स मत्स्यो नाम राजासीद्धार्मिकः सत्यसंगरः ॥

उन दो मेंसे लड़के को राजाने ले लिया वह लड़का मत्स्य नाम का धार्मिक और संग्राम विजेता राजा हुआ ।

जब सत्यवती उपरिचर वसु नामक राजा के वीर्य से उत्पन्न हुई तब हम उसको दास की पुत्री किस प्रकार मानलें।

वसिष्ठ।

अब हम बसिष्ठ के दो जन्म की कथा दिखला कर वसिष्ठ के इतिहा यह सिद्ध करेंगे कि वसिष्ठ कभी गणिका के गर्भ से उत्पन्न ही नहीं हुये। जन्म में वसिष्ठ अयोनिज मानसिक ब्रह्मा के पुत्र हैं। इस विषय में श्रीमद्भ का लेख है कि:—

मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः॥

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और ना दश ब्रह्मा के पुत्र हैं।

श्रीमद्भागवत ने वसिष्ठ को ब्रह्मा का पुत्र बतलाया। मनुजी भी यही लि हैं कि:—

मरीचिमत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च॥ ३५॥

मनु० अ० १

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ भृगु और ब्रह्मा ने इन दश पुत्रों को उत्पन्न किया।

इस जन्म में बसिष्ठ अयोनिज है अतएव यह गणिका का पुत्र हो ही सकता। इसी वसिष्ठ को निमिने यज्ञ करवाने केलिये निमन्त्रित किया, वसिष्ठ निमिसे कहा कि इन्द्र ने आपसे पहिले मुझे यज्ञ करवानेको निमन्त्रित किया है इन्द्रकी यज्ञ करा आऊं फिर आपका यज्ञ आरम्भ होगा इतना कहकर वसिष्ठ इन्द्र यज्ञ करवाने को चले गये। निमि बसिष्ठ के आनेकी आशामें रहे। एक दिन नि के चित्त में यह आया कि बहुत दिन होगये अभी वसिष्ठ नहीं आये, यदि उ अधिक समय लग गया और मेरे शरीर का पात होगया तब तो हानि होगी अ यज्ञ अवश्य होना चाहिये। वसिष्ठ नहीं आये तो न सही किसी और ऋषि यज्ञ हो, इस विचार को निश्चय कर निमि ने दूसरे ऋषियों द्वारा यज्ञारम्भ दिया। यज्ञ हो ही रहा था कि वसिष्ठ इन्द्र का यज्ञ समाप्त करके निमि के यहां गये। यज्ञारम्भ को देखकर वसिष्ठ को क्रोध आया कि देखो निमि ने यज्ञ के

मुझे निमन्त्रित कर दूसरे ऋषियों से यज्ञारम्भ कर दिया, यह प्रथम ही मुझसे क
देता कि आप इन्द्र का यज्ञ करवाओ, हम दूसरों से करवा लेंगे, इसने अप
वचन का पालन नहीं किया अतएव यह दण्डनीय है, यह सोच कर निमिको मृत्
प दे दिया। मृत्यु के शाप को सुन कर निमि को क्रोध आया, निमि ने वसिष
मृत्युका शाप दे दिया यह कथा श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध के तेरहवें अध्या
है। दोनों ने ही शरीर छोड़ दिये। वसिष्ठ ने मृत्युके पश्चात् दूसरा शरीर धार
किया। इसके ऊपर श्रीमद्भागवत लिखता है कि:—

मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥

श्रीमद्भा० स्कं० ६ अ० १३

मित्रावरुण के सकाश से वसिष्ठ ने उर्वशी में जन्म धारण किया।

यह कथा पुराण में ही नहीं किन्तु वेद में भी है। वेद इसका विवेच
ते हुये लिखता है कि:—

विद्युन्न या पतन्ती दविद्यो-
द्भरन्ती मे अप्या काम्यानि।
जनिष्ठो अपो नर्यः सुजातः
प्रोर्वशी तिरतदीर्घमायुः ॥

इस ऋचा का निरुक्त देखिये:—

विद्यु दिव या पतन्त्यद्योतत हरन्ती मे अप्या काम्यान्युदकान्यन्तरिक्षलोकस
दा नूनमयं जायेताद्भ्योऽध्यप इति नर्यो मनुष्यो नृभ्यो हितो नरापत्यमिति वा सुजात
जातत‌रोऽथोर्वशी प्रवर्धयते दीर्घमायुः।

नि० दैवत कां० अ० ५ पाद ४

अब विद्युत होकर गिरती हुई अन्तरिक्ष में होने वाली काम्यवस्तुओं (जलों
लाती हुई जो चमकती है, उत्पन्न हुआ है उससे मनुष्यों के लिये हितकारी शु
न्मवाला जल, इस प्रकार जल और जल से अन्न द्वारा वह दीर्घ आयु बढ़ाती है
बिजली की नाईं जो गिरती हुई चमकती है लाती हुई मेरे लिये प्यारे अन्तरिक्ष
जल जब तब निःसन्देह यह मेघ पुरूरवा प्रकट होता है जलों से। मनुष्यों के लि
हितकारी अथवा मनुष्यकी सन्तान। बहुत अच्छा उत्पन्न हुआ। तब उर्वशी बढ़ा
दीर्घ आयु। इस प्रकरण में निरुक्त ने उर्वशी को देवता मानकर उससे दीर्घायु व

प्रार्थना की है। जब उर्वशी मध्यस्थानीय देवता है तो फिर इसको गणिका मान
शास्त्रानभिज्ञता है या नहीं ?

वेद ने उर्वशी को अप्सरा बतलाया है इसका व्याख्यान निरुक्त इस प्र
लिखता है।

उर्वश्यप्सरा उर्वभ्यश्नुत ऊरुभ्यामश्नुत ऊरुर्वा वशोऽस्याः। अप्सरा अप्सा
णयपि वाप्स इति रूपनामाप्सातेरप्सानीयं भवति। आदर्शनीयं व्यापनीयं वा स्प
दर्शनायेति शाकपूणिर्यदप्स इत्यभक्तस्याप्सो नामेति व्यापिनस्तद्रा भवति रूपवती त
नयात्तमिति वा तदस्यै दत्तमितिवा। तस्या दर्शनान्मित्रावरुणयो रेतश्चस्कन्द। त
भिवादिन्येषर्ग्भवति।

नि० नैगमकां० अ० ५ पाद ३

उर्वशी अप्सरा है, बहुत यश को व्याप्त होती है अथवा ऊरुओं से व्य
होती है अथवा बड़ी इसकी कामना है। अप्सरा जल में जलने वाली अथवा अप
रूप का नाम है, भक्षण के योग्य नहीं होता है किन्तु पूरी तरह देखने योग्य होता
अथवा स्पष्ट देखने के लिये व्यापने योग्य होता है-यह शाकपूणि मानता है।
अभक्ष्य हमने खाया है यहां अप्स अभक्ष्य का नाम है और अप्सो नाम व्यापने वा
है, यहाँ अप्सस् व्यापने वाले का नाम है सो अप्सस् रूपवाली अप्सरा होती
अर्थात् रूपवती अथवा वह रूप इसने ग्रहण किया है अथवा वह अप्सस् इस
दिया गया है, उस उर्वशी के दर्शन से मित्र और वरुण का रेतस् गिरा उ
कहने वाली यह ऋचा है।

हमने वेद और निरुक्त से उर्वशी का अप्सरा होना सिद्ध कर दिया।
इस देवता उर्वशी के द्वारा वसिष्ठ की उत्पत्ति वेद से दिखलाते हैं।

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठो—
वंश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन,
विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥

इसका निरुक्त यह है—

अप्यसि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः। द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्म
दैव्येन। द्रप्सः सम्भृतप्सानीयो भवति। सर्वे देवाः पुष्करे त्वाऽऽधारयन्त। पुष्क

न्तरिक्षं पोषति भूतानि। उदकं पुष्करं पूजाकरं पूजयितव्यम्। इदमपीतरत्पुष्कर-
तस्मादेव पुष्करं वपुष्करं वा पुष्यं पुष्यतेः। वयुनं वेतेः कान्तिर्वा प्रज्ञा वा॥
नि० नैगमकां० अ० ५ पा० ३

हे वसिष्ठ! तू मित्रावरुण का पुत्र है। ब्रह्मन्! उर्वशी से मन से तू उत्पन्न हुआ मानस पुत्र है। मित्रावरुण का जब वीर्य गिरा तब सारे देवताओं ने दिव्य ब्रह्म से तुझको पुष्कर जल वा अन्तरिक्ष में धारण किया और तू है मित्रावरुण का पुत्र। हे वसिष्ठ! हे ब्रह्मन्! उर्वशी से मन से तू उत्पन्न हुआ है। गिरे ब्रह्मको दिव्य ब्रह्म से पुष्ट हुआ है, भक्षण योग्य स्त्री के लिये अपने शरीर में धारने योग्य होता है। सारे देवताओं ने पुष्कर में तुझको धारण किया। पुष्कर अन्तरिक्ष है, पुष्ट करता भूतों को वायु वृष्टि आदि के देने से। जल पुष्कर होता है। पूजा का साधन अथवा पूजने योग्य होता है। जो दूसरा पुष्कर कमल है यह भी इसी से है पूजा का साधन वा पूजने योग्य होता है अथवा शरीर को सजाने वाला है। कमल के ग से पुष्प का निर्वचन करते हैं। वयुन है कान्ति वा प्रज्ञा।

पुराण ने वसिष्ठ के द्वितीय जन्म को सूक्ष्मरूप में लिखा था वेद ने विस्तार में लिखा है। इस जन्म में वसिष्ठ द्युस्थानीय देवता उर्वशी से मित्रावरुण के द्वारा मानसिक उत्पत्ति है। उर्वशी को वेद ने अप्सरा लिखा है इस अप्सरा शब्द धोके में आकर वसिष्ठ को गणिकापुत्र बतला दिया गया, वास्तव में तो यहाँ मित्रावरुण का मानसिक पुत्र वसिष्ठ उर्वशी देवता में उत्पन्न हुआ है। प्रथम में वसिष्ठ ब्रह्मा का पुत्र है, द्वितीय जन्म में उर्वशी देवता से इसकी मानसिक त्ति है, तीसरा जन्म वसिष्ठ का किसी भी श्रुति-स्मृति, पुराण, इतिहास में वा ही नहीं फिर हम वसिष्ठ को गणिका पुत्र मानें तो कैसे मानें?

बाल्मीकि।

बाल्मीकि को भील का लड़का कहना जान बूझ कर लोगों की आंख में धूल कना है। ब्रह्मा का पुत्र महर्षि प्रचेता और प्रचेता का पुत्र वाल्मीकि। ब्रह्मा का पुत्र ता है इस विषय में मनुस्मृति का प्रमाण हम वसिष्ठके प्रसंग में दे चुके हैं। अब ता का पुत्र वाल्मीकि है इस विषय में वाल्मीकीय रामायण का अन्तिम क लिखता है कि—

एतदाख्यानमायुष्यं सभविष्यं सहोत्तरम्।
कृतवान्प्रचेतशः पुत्रस्तद्ब्रह्माप्यन्वमोदत॥

यह आख्यान आयु का बढ़ाने वाला भविष्य और उत्तर सहित प्रचेता के पुत्र बाल्मीकि ने निर्माण किया और ब्रह्मा ने इसका अनुमोदन किया है।

कौन कह सकता है कि बाल्मीकि भील का लड़का है। वर्णव्यवस्था, गुण, कर्म, स्वभाव से न वेद मानता है, न धर्मशास्त्र। इतिहास पुराण में भी ऐसे उदाहरण नहीं हैं जिनसे किसी शूद्र या वैश्य का ब्राह्मण होना सिद्ध होता हो। इन सब बातों को जान कर भी जो गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था बतलाई जाती है उस का अभिप्राय यह है कि हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था नष्ट हो और यह जाति जल्दी से जल्दी ईसाई धर्म में प्रवेश करे।

विवाह काल।

विवाह गर्भाधानादि सोलह संस्कारों के अन्तर्गत है। सोलह संस्कारों का वर्णन वेद में नहीं है वरन् धर्मशास्त्रों में इनका विधान है। जब समस्त सोलह संस्कारों का विधान स्मार्त है तो विवाह भी स्मृति प्रतिपाद्य ही हुआ। धर्मशास्त्रों में कन्याओं का विवाह काल जो वर्णन किया है उसको हम नीचे उद्धृत करते हैं। देखिये—

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥१॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥२॥

अंगिरा स्मृति।

आठ वर्ष की कन्या की गौरी और नौ वर्ष की रोहिणी तथा दश वर्ष की कन्या की कन्या संज्ञा होती है, दश वर्ष के पश्चात् कन्या रजोधर्म वाली होती है। माता और पिता तथा जेठा भाई यदि रजस्वला होने तक कन्या का विवाह न करें तो ये तीनों नर्क को जाते हैं।

आगे पढ़िये—

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६ ॥
प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति।
मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयम् ॥७॥

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥८॥
यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः।
असंभाष्यो ह्यपांक्तेयः सविप्रो वृषलीपतिः ॥९॥

पाराशर स्मृति अ० ७।

छठा और आठवाँ ये दो श्लोक उसी बात को कह रहे हैं जिस बातको अंगिरा स्मृति ने कहा है। सातवां श्लोक यह विशेष कहता है कि जो बारहवें वर्ष में कन्या का विवाह नहीं करता उस कन्या के जो मास २ में ऋतुधर्म द्वारा शोणित प्रस्रवित होता है उस शोणित को उसके पितर स्वयं पीते हैं। नवम श्लोक में महर्षि पाराशर ने यह खोल कर कह दिया कि बारह वर्ष की कन्या होने के पश्चात् जो वर ब्राह्मण कन्या से विवाह करता है वह मद मोहित है उसके साथ में कभी बोलना न चाहिये, उसको पंक्ति में भोजन न खिलाना चाहिये, उसको वृषलीपति समझो।

और पढ़िये—

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६६ ॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥६७॥
तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्।
विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ ६८ ॥

संवर्त स्मृति।

६६। ६७ ये दो श्लोक तो वे ही हैं जो अंगिरा ने लिखे हैं। ६८ के श्लोक में महर्षि संवर्त कहते हैं कि कन्या को ऋतुमती होने से पहिले विवाह दे और कन्या के अष्टम वर्ष में विवाह करना बहुत ही श्रेष्ठ है।

आगे अवलोकन कीजिये—

यावन्तः ऋतवस्तस्याः समतीयुः पतिं विना।
तावन्त्यो भ्रूणहत्याः स्युस्तस्य यो न ददाति ताम् ॥

नारद स्मृति।

पति के बिना कन्या की जितनी ऋतुयें बीतती हैं उतनी ही भ्रूणहत्या का पाप उसको लगता है जो ऋतुकाल से पहिले कन्या का विवाह नहीं करता। अब निर्णय सिन्धु के लेख को भी पढ़िये—

कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद्गृहे ।
ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥
तस्मादुद्वाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ।

यमस्मृति ।

ये श्लोक संगृहीत निर्णय सिन्धु ग्रन्थ ने यमस्मृति के उद्धृत किये हैं। इनका अर्थ है कि बारह वर्ष तक बिना ब्याही हुई कन्या के घर में रहने से उस कन्या के माता पिता को ब्रह्महत्या लगती है इस कारण ऋतुमती होने से पहिले ही कन्या को विवाह दे।

और भी पढ़िये—

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥९४॥

मनु० अ० ९

तीस वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की मनोहर कन्या के साथ ब्याह करे अथवा चौबीसवर्ष का पुरुष आठवर्ष की कन्या को विवाहे और शीघ्रता करने वाला गृहस्थ धर्म में दुःख पाता है।

जो द्विज चौबीस वर्ष की अवस्था में वेदाध्ययन छोड़े उसको आठवर्ष की कन्या के साथ विवाह करना योग्य है क्योंकि वेदाध्ययन छोड़ने से दूसरे दिवस ही अग्निहोत्र लेना पड़ेगा और अग्निहोत्र बिना स्त्री के होता नहीं इस कारण आठ वर्ष की कन्या से विवाह होना शास्त्र ने लिखा है इस बात को मनु ने भी स्पष्ट कर दिया है। तीस वर्ष की अवस्था में जो वेदाध्ययन छोड़े वह बारह वर्ष की कन्या के साथ विवाह करे शास्त्र कन्याओं का विवाह थोड़ी उम्र में और पुरुषों का विवाह अधिक उम्र में लिखता है। शास्त्र ने यह भी लिखा कि स्त्रियों का विवाह यदि अधिक उम्र में किया जाय तो रजस्वला होने के पहिले हो, इसके बाद शास्त्र सम्मत नहीं। भारतवर्ष में गर्मी सर्दी की अधिकता और न्यूनता से देश भेदानुसार कन्या रजस्वला शीघ्र और देर में होती हैं अतः समस्त देशों में रजस्वला होने से पहिले ही विवाह की विधि है। विवाह अन्य जातियों की भांति स्त्री सुख का

साधन नहीं क्यों कि धर्मशास्त्रों ने इसको संस्कार और भुक्ति मुक्ति का दाता माना है । पुरुष के उपनयन संस्कार का अष्टम वर्ष से आरम्भ होकर द्वादश वर्ष तक समय रहता है । स्त्रियों के उपनयन संस्कार है नहीं, किन्तु उपनयन संस्कार के स्थान में विवाह संस्कार है इस कारण स्त्रियों के विवाह का समय पुरुषों के उपनयन के होने से मिलता जुलता रक्खा है और यही शास्त्रों का अभिप्राय भी है किन्तु समय के परिवर्तन से आज इस अवस्था के विवाह को अयोग्य समझा जाता है और यह कहा जाता है कि ऐसे विवाह की सन्तान कमजोर होती है । शास्त्रकारों ने यह काल विवाह काल नियत किया है, यह सहवास काल नहीं । सहवास काल स्त्री की सोलह वर्ष की अवस्था से पाया जाता है । इतिहास में सोलह वर्ष से पहिले भी गर्भस्थिति हुई है ऐसा भी लेख मिलता है । इस विषय में अभिमन्यु उत्तरा प्रभृति के अनेक उदाहरण हैं फिर हम किस तरह से मानलें कि सन्तान कमजोर होती है ? परीक्षितादि थोड़ी अवस्था के रहने पर भी जो गर्भ में आये वे कमजोर नहीं थे । इससे भिन्न शास्त्रदृष्टि से सहवास में कन्या की उम्र सोलह वर्ष की ली है और पुरुष की पच्चीस वर्ष के ऊपर, फिर कमजोर सन्तान का प्रश्न ही नहीं रहता किन्तु आज भारतवासी इंगलैन्ड की पद्धति से भारतवर्ष की पद्धति को मिला देते हैं अर्थात् विवाह काल को ही सहवासकाल समझ लेते हैं इसीसे यह छोटी उम्र में गर्भाधान का सवाल खड़ा हो जाता है, यदि इसका अच्छी तरह विचार किया जावे और विवाह के पश्चात् शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्य तथा द्विरागमन की पद्धति को लोक में प्रचलित रक्खा जावे तो फिर यह प्रश्न ही उड़ जाता है । जो लोग इसको नहीं समझते वे हिन्दुओं के विवाह को बुरी दृष्टि से देखते हैं ।

सत्यार्थप्रकाश ।

(प्रश्न) विवाह का समय और प्रकार कौनसा अच्छा है (उत्तर) सोलहवें वर्ष से ले के चौवीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से ले के अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है । इसमें जो सोलह और पच्चीस में विवाह करे ? तो निकृष्ट, अठारह बीस की स्त्री तीस पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का मध्यम, चौबीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह होना उत्तम है । जिस देश में इसी प्रकार विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य विद्याग्रहण रहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है क्योंकि

ब्रह्मचर्य विद्या के ग्रहण पूर्वक विवाह के सुधार ही से सब बातों का सुधार और बिगड़ने से बिगाड़ हो जाता है। (प्रश्न)

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैवच।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥

ये श्लोक पाराशरी और शीघ्रबोध में लिखे हैं। अर्थ यह है कि कन्या की आठवें वर्ष विवाह में गौरी नवमें वर्ष रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा होती है ॥ १ ॥ जो दशवें वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को माता पिता और बड़ा भाई ये तीनों देख के नरक में गिरते हैं। (उत्तर)

❀ ब्रह्मोवाच ❀

एकक्षणा भवेद् गौरी द्विक्षणे यन्तु रोहिणी।
त्रिक्षणा सा भवेत्कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥
माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥

यह सद्योनिर्मित ब्रह्मपुराण का बचन है। अर्थ—जितने समय में परमाणु एक पलटा खावे उतने समय को क्षण कहते हैं। जब कन्या जन्मे तब एक क्षण में गौरी, दूसरे में रोहिणी, तीसरे में कन्या और चौथे में रजस्वला होजाती है ॥१॥ उस रजस्वला को देख कर उसके माता, पिता, भाई, मामा और बहिन सब नरक को जाते हैं ॥ २ ॥

(प्रश्न) ये श्लोक प्रमाण नहीं (उत्तर) क्यों प्रमाण नहीं ? क्या जो ब्रह्मा जी के श्लोक प्रमाण नहीं तो तुम्हारे भी प्रमाण नहीं हो सकते (प्रश्न) वाह वाह पराशर और काशीनाथ का भी प्रमाण नहीं करते (उत्तर) वाह जी वाह क्या तुम ब्रह्मा जी का प्रमाण नहीं करते, पराशर काशीनाथ से ब्रह्मा जी बड़े नहीं हैं ? जो तुम ब्रह्मा जी के श्लोकों को नहीं मानते तो हमभी पराशर काशीनाथ के श्लोकों को नहीं मानते (प्रश्न) तुम्हारे श्लोक असम्भव होने से प्रमाण नहीं क्योंकि सहस्र क्षण जन्म समय ही

बीत जाते हैं तो विवाह कैसे हो सकता है और उस समय विवाह करने का कुछ फल भी नहीं दीखता (उत्तर) जो हमारे श्लोक असम्भव हैं तो तुम्हारे भी असंभव हैं क्योंकि आठ, नौ और दशवें वर्षमें भी विवाह करना निष्फल है क्योंकि सोलहवें वर्ष के पश्चात् चौबीसवें वर्ष पर्यन्त विवाह होने से पुरुष का वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ, स्त्री का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बलयुक्त होने से सन्तान उत्तम होते हैं । जैसे आठवें वर्ष की कन्या में सन्तानोत्पत्ति का होना असम्भव है वैसे ही गौरी, रोहिणी नाम देना भी अयुक्त है । यदि गौरी कन्या न हो किन्तु काली हो तो उसका नाम गौरी रखना व्यर्थ है । और गौरी महादेव की स्त्री, रोहिणी वासुदेव की स्त्री थी उसको तुम पौराणिक लोग मातृ समान मानते हो । जब कन्यामात्र में गौरी आदि की भावना करते हो तो फिर उनसे विवाह करना कैसे संभव और धर्मयुक्त हो सकता है ! इसलिये तुम्हारे और हमारे दो २ श्लोक मिथ्या ही हैं क्योंकि जैसा हमने "ब्रह्मोवाच" करके श्लोक बना लिये हैं वैसे वे भी पराशर आदि के नाम से बना लिये हैं इसलिये इन सबका प्रमाण छोड़ के वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो । देखो मनु में—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥

मनु० ९ । ९०

कन्या रजस्वला हुये पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे । जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ वार रजस्वला हुये पश्चात् विवाह करना योग्य है इससे पूर्व नहीं ।

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥

मनु० ९ । ८९

चाहे लड़का लड़की मरण पर्यन्त कुमारे रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिये । इससे सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त समय से प्रथम वा असदृशों का विवाह होना योग्य है ।

सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ७७ से ८० तक

विवेचन ।

स्वामी जी वेदोक्त पद्धति के मिटाने और हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिये

विवाह काल को इस प्रकार नियत करते हैं कि जो पद्धति आजकल योरुप आदि दे
में प्रचलित है और फिर उस पद्धति को वैदिक सिद्ध करते हैं यह जाल है । अ
लिखते हैं कि सोलह वर्षके ऊपर कन्याका विवाह होना चाहिये इसका आधार सुश्रु
है। सुश्रुत लिखता है कि—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ ४७॥
जातो वा न चिरंजीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ४८ ॥

सुश्रुत शरीरस्थान अ० १०

सोलह वर्ष से न्यून वय वाली स्त्री में पचीस वर्षसे न्यून आयु वाला पुरुष
गर्भ को स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता अर्थात् पू
काल तक गर्भाशय में रहकर उत्पन्न नहीं होता। ४७। अथवा उत्पन्न हो तो चि
चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो इस कारण से अति बाल्यावस्थ
वाली स्त्री में गर्भ स्थापन न करे। ४८।

स्वामी जी की हर बात में चालबाजी रहती है। इन श्लोकों में भी चालब
जियों का आश्रय लिया गया है (१) जब स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश में यह लि
आये हैं कि वेदानुकूल होने से सुश्रुत प्रमाण है तो फिर अब इन श्लोकों के लि
वेदानुकूलता का झगड़ा क्यों उड़ा दिया गया? वेद के किसी मंत्र में भी यह न
लिखा कि गर्भाधान के समय पुरुष की आयु पच्चीस वर्ष स्त्री की आयु सोलह व
की हो? (२) जब वेद इस विषय में कुछ भी नहीं लिखता फिर ये श्लोक वेदानुकू
कैसे? "ऊनषोडशवर्षायाम्" इस श्लोक की जगह अनेक पुस्तकों में "ऊनद्वादश
र्षायाम्" पाठ है उस पाठ को स्वामी जी ने क्यों नहीं लिया? केवल इस लिये न
लिया कि जो हम "ऊनद्वादशवर्षायाम्" पाठ ले लेंगे तो हमारे प्राण प्यारे शि
आर्यसमाजी ईसाई न बन सकेंगे इस कारण ईसाइयों में जैसा रिवाज है उस
मुताबिक पाठ ले लिया। (३) इन श्लोकों में विवाहकाल कब कहा है? इनमें
गर्भाधान काल है? गर्भाधान काल को विवाहकाल उन्हीं मनुष्यों को समझा स
हैं जो सर्वांश में नरपशु हों? कोई लिखा पढ़ा मनुष्य गर्भाधान काल को विवाहक
नहीं समझेगा? (४) स्वा० दयानन्द जी ने सुश्रुत में कहे हुये विवाहकाल

ौरी की यह प्रमाण संसार के सामने आने नहीं दिया इसके आने से स्वा० दया-
न्द जी के जाल का भेद खुलता था। पाठ यह है—

अथास्मै पंचविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षीं पत्नीमावहेत्। सुश्रुत

विद्या सम्पन्न पुरुष को जिसकी अवस्था २५ वर्ष की हो उसको बारह वर्ष
ाली कन्या विवाहे।

यहां पर स्वामी जीने सुश्रुत के विवाहकाल को छिपाया और गर्भाधान काल
ो विवाहकाल बनाया इस प्रकार बिना लिखे पढ़े आर्यसमाजियों को समझा
ृया कि सोलह वर्ष से पहिले कन्या का विवाह करना वेद विरुद्ध है। ये विचारे
र शास्त्र के शत्रु समझ बैठे कि ठीक है, यही वेद है और हम कन्या बड़ी होने पर
विवाह करेंगे।

स्वामी जी यह लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य धारण कर योग्य होकर विवाह करे,
ह बात ठीक ही है। शास्त्र ने कब लिखा है कि कन्या का विवाह अयोग्य से करो
लड़का ब्रह्मचारी न बने? आप "अष्टवर्षाभवेद्गौरी" प्रभृति श्लोकों की मिट्टी
ीद करते हुये लिखते हैं कि "एकक्षणा भवेद्गौरी" ठीक ही है, वेद की मिट्टी कूट-
स्वामी जी और आर्यसमाजियों का परम धर्म है। यह गौरी संज्ञा केवल शीघ्र
ही नहीं करता वरन् स्मृतियां कहती हैं? केवल स्मृतियां ही नहीं कहतीं किन्तु
ेद लिखता है कि—

सोमो गौरी अधिश्रितः। ऋग्वेद

सोम गौरी का उपभोग करता है।

वेद का अभिप्राय यह है कि पहिले कन्या के ऊपर चन्द्रमा का आधिपत्य
है फिर गन्धर्व का गन्धर्व के पश्चात् अग्नि का, बादमें कन्या का विवाह होकर
कन्या मनुष्यके आधिपत्यमें चली जाती है। इस विषयको 'सोमोददद् गन्धर्वाय'
मन्त्र में कहा है। जिस समय कन्या की गौरी संज्ञा होती है उस समय कन्या
ैर चन्द्रमा का आधिपत्य रहता है अब मानना पड़ेगा कि कन्या की गौरी संज्ञा
कही है। गौरी संज्ञा की मिट्टी पीटने के बहाने से वेद की मिट्टी पीट देना
द के परम शत्रु दयानन्द और आर्यसमाजियों का जो मुख्य धर्म है वह केवल
ीये है कि हिन्दू लोग वेद को कुचल कर किसी प्रकार ईसाई बन जावें।

सोलह वर्ष में कन्या का विवाह हो इसमें स्वामी दयानन्द जी "त्रीणि वर्षा-
क्षेत्" का प्रमाण देते हैं, जरा उसका भी चित्रपट देखिये। मनु जी लिखते
:—

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ ८८ ॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥

मनु० अ० ९

कुलाचार में उत्तम स्वरूपवान् समान जाति के वर को विवाह के योग्य न हुई आठ वर्ष की कन्या भी विवाह दे । ८८ । कन्या मरणपर्यन्त घरमें बिना विवाही चाहे रहे किन्तु गुणहीन पुरुष से विवाह कन्या का न करे । ८९ ।

मनुने लिखा है कि कन्या का विवाह पिता करे ।

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लंघयेत् ॥ १५१ ॥

मनु० अ० ५

जिसे इसको पिता दे वा पिता की अनुमति से भ्राता दे दे उसकी यावज्जीवन सेवा करती रहे और मरने पर श्राद्धादि करे, कुल के वशीभूत रहे और मर्याद को न लंघन करे ।

"उत्कृष्टाय" इस श्लोक में कन्या का विवाह करना कन्या के आधीन नहीं किन्तु अन्य के आधीन लिखा गया है । इसी प्रकार "काममामरणात्तिष्ठेत्" इस श्लोक में भी अयोग्य पुरुष के साथ कन्या का विवाह न करना सिद्ध करता है कि कन्या का विवाह करना किसी अन्य के आधीन है "यस्मैदद्यात्" मनुके इस श्लो में स्पष्ट लिखा है कि कन्या का विवाह कन्या का पिता या भ्राता करे । यदि दोनों ही कन्याका विवाह न करें तो फिर कन्या क्या करे ? इसके ऊपर लिखाहै कि

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ९० ॥

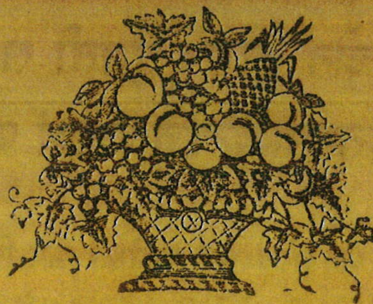
मनु० अ० ९

कन्या ऋतुकाल होने पर तीन वर्ष प्रतीक्षा करे कि मेरा कोई विवाह करता या नहीं ? जब इन तीन वर्षों में भी कोई विवाह न करे तब कन्या अपने सदृश योग पुरुष को अपने आप वरण कर ले ।

मनु का अभिप्राय यह है कि आठ वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक कन्या

विवाह उसके पिता या भाई आदि अवश्य कर दें। यदि वे न करें तो ऋतुकाल होने के पश्चात् तीन वर्ष तक कन्या प्रतीक्षा करे पश्चात् किसीके साथ विवाह कर ले। मनु के इस अभिप्राय को नष्ट करके ईसाई बनाने के लिये "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत" इसके आश्रय से जो सोलह वर्ष की उम्र में समस्त कन्याओं का विवाह लिख दिया यहाँ पर स्वामी जी ने संसार को बेवकूफ बनानेका साहस किया है निःसन्देह स्वामी जी का यह कार्य घृणित है।

(१) जब "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत" मनु का श्लोक वेदानुकूल नहीं है तब इसके प्रमाण मानने का दयानन्द और आर्य्यसमाज को क्या हक है? (२) मनु जी ने "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्याम्" श्लोक में जो २४ वर्ष का पुरुष आठ वर्ष की कन्या और ३० वर्ष का पुरुष १२ वर्ष की कन्या से विवाह करे लिखा है इसको स्वा० दयानन्द जी ने क्यों छिपाया? केवल इसलिये कि जब तक यह शास्त्र पद्धति न उड़ेगी तब तक आर्य्यसमाजी ईसाई न बन सकेंगे? स्वामी दयानन्द जी के जितने भी धर्म निर्णय के लेख हैं उन सब में चालबाजी धोखा, वेदों के गले पर छुरा चलाना ये तीन काम प्रबल हैं। इन तीन को छोड़ कर स्वामी जी के लेख में और कुछ सार ही नहीं? बिना पढ़े मनुष्य इनके जाल में या चालबाजी में फंसकर स्वा० दयानन्द के पुष्ट किये हुये ईसाई धर्म को वैदिकधर्म मानलेते हैं किन्तु संस्कृत के ज्ञाता स्वा० दयानन्दके लेख को धर्मनाशक, वेदों पर कुठाराघात करने वाला समझ कर उससे घृणा करते हैं।



242

आर्यसमाज का मृत्यु ।

संसार में यह देखा गया है कि कोई भी अन्य पुरुष किसी की उन्नति और अवनति नहीं कर सकता वरन् मनुष्य के कर्म दुःख सुख के कारण होते हैं इसी प्रकार मुसलमान, ईसाई, जैनी और सनातनधर्मी आर्य्यसमाज का बाल भी बांका नहीं कर सके किन्तु आर्य्यसमाजियों ने ही ऐसे आचरण किये कि जिससे आर्य्य-समाज का सर्वांश में मृत्यु हो गया ।

आर्य्यसमाज के संसार में रहने के दो आधार थे । एक स्वामी दयानन्द जी का लेख और दूसरे वेदों के प्रमाण । आर्य्यसमाजियों ने स्वा० दयानन्द जी के लेखों को भूठ समझा, उनके मानने से जी ही नहीं चुराया वरन् उन लेखों को देख कर स्वा० दयानन्द जी के ऊपर कटु शब्दों की वर्षा करने लगे । इसी प्रकार वेदों के अर्थ बदले, वेद मंत्रों को दूर फेंक कर यूरोप की पद्धति को वेद समझ लिया, वेदों की मसखरी उड़ाई, बनावटी दलीलों से वेदों का कचूमर निकाल वेद के वे घोर शत्रु बने कि जैसे आज तक वेद के शत्रु संसार में हुये ही नहीं । पूर्वोक्त दोनों आधारों का सफाया हो गया और अब आर्य्यसमाज के नवीन सिद्धान्त दो ही रह गये । (१) जो ईसाई मानते हों वह आर्य्यसमाजियों का वैदिक धर्म (२) जितने मनुष्य उतने ही उन के मत । इस पर भी स्थायी नहीं ? इसमें भी बारह बजे आर्य-समाजियों का वैदिक धर्म कुछ और और पाँच बजे कुछ और, गिरगिट की भाँति जल्दी २ रंग बदल कर आर्य्यसमाजी मजहब हीन हो गये बस इन्हीं दो बातों को हम यहां दिखलावेंगे कि (१) तो आर्य्यसमाजी दयानन्द के लेख को बिल्कुल नहीं मानते (२) वेदों की मिट्टी पीटते हैं ।

दयानन्द ।

स्वामी जी ने अपने लेख में ईश्वरावतार, मूर्तिपूजा, विधवा विवाह निषेध, जन्म से वर्णव्यवस्था, फलित ज्योतिष् की प्रामाणिकता, मनुष्यों से भिन्न देवजाति, इतिहास-पुराण इनकी वैदिकता मानी है । लम्बे चौड़े लेख लिख कर इनको वैदिक सिद्ध किया है आप यदि यह जानना चाहते हैं तो इसी ग्रन्थ का आरंभिक प्रकरण "वैदिकता" पढ़ें । यह संभव है कि स्वा० दयानन्द जी के इन लेखों को अन्य धर्म

वाला भले ही प्रामाणिक मानलें किन्तु वे आर्य्यसमाजी कि जो स्वामी जी को रात दिन श्री १०८ स्वामी जी महाराज, परिव्राजक, वेदोद्धारक, महर्षि कहते हैं वे ही स्वा० दयानन्द के इन लेखों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, मौका पड़ने पर इन लेखों के ऊपर स्वामी जी को गालियाँ देने लगते हैं। यह कैसे आश्चर्य की बात है कि इन्हीं के मान्य धर्म पुस्तकों में जो लेख लिखे हुये हैं उनको यह बिल्कुल न मानें? और उनके लिखने वाले अपने पूज्य महर्षि को गालियाँ देते हुये उन लेखों को घृणा की दृष्टि से देखें? क्या हजरत मोहम्मद के लेख को घृणा की दृष्टि से देखने वाला कोई मनुष्य मुसलमान कहलाने का हक रखता है? क्या ईसामसीह के लेख को असत्य कहलाने वाला कोई मनुष्य ईसाई बनने की डिगरी पा सकता है? यदि ये दोनों ही मुसलमान और ईसाई नहीं हो सकते तो फिर दयानन्द के लेखों को घृणा की दृष्टि से देखने वाले आर्य्यसमाजी किस प्रकार आर्य्यसमाजी कहला सकते हैं?

शास्त्रार्थ के समय वैदिकता प्रकरण में आये हुये स्वा० दयानन्द जी के लेख जब पेश किये जाते हैं तब आर्य्यसमाजियों के छक्के छूट जाते हैं और वे जो उत्तर देते हैं उनको हम क्रम से लिखते हैं। देखिये—

सब से प्रथम इनका कथन होता है कि (१) स्वा० दयानन्द जी के लेख का यह अभिप्राय नहीं? जब इसके उत्तर में पूर्वा पर लेख पढ़ और स्वा० दयानन्द के अन्य लेख से पुष्टि कर दी जाती है कि नहीं नहीं स्वा० दयानन्द जी के लेख का यही अभिप्राय है तब इनकी चालबन्द हो जाती है और कहने लगते हैं (२) छापेखाने की गलती से ऐसा छप गया? जब अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध किया जाता है कि यहां छापेखाने की गलती नहीं किन्तु स्वामी जी इस सिद्धान्त को वैदिक मानते हैं और इसके वैदिक होने में अमुक अमुक पुष्टियां मिलती हैं तब विवश होकर कहते हैं कि (३) स्वामीजी के मरने पर किसी धूर्तने यह पाठ उनके लिखे सत्यार्थ-प्रकाशादि ग्रन्थों में मिला दिया? जब दयानन्द के ग्रन्थों की कई आवृत्तियां दिखला कर यह सिद्ध किया जाता है कि यह लेख किसीने नहीं मिलाया किन्तु स्वा० दयानन्द जी की लेखनी का लिखा है तब इस चालबाजी कबड्डी को भूल जाते हैं और कहने लगते हैं कि (४) स्वामी जी भंग पीते थे और उसके नशे में कुछ का कुछ भी लिख देते थे? यह बात हनुमानप्रसाद स्वतंत्र आर्योपदेशक शिवली ने कई शास्त्रार्थ में कही। जब इसके ऊपर शर्म दिलाई जाती है कि तुम महर्षि को इस प्रकार बदनाम करते हो और इतने पर भी लज्जित नहीं होते? तब कहने लगते हैं कि (५) स्वा० दयानन्द जी भी एक मनुष्य थे भूल गये? मनुष्य का काम भूलना है ही? तब क

जाता है कि तुम बेहोशी की बातें मत करो, स्वा० जी को आर्य्यसमाज वेदज्ञाता, महर्षि और आप्त मानती है। आप्त के माने ही ये हैं कि जिनका एक भी लेख असत्य न हो। आप्त के लेख को मिथ्या बतलाने वाले साधारण मनुष्य तुम उनकी गलती पकड़ने का क्या स्वत्व रखते हो।? जब यहां पर इनकी अक्ल कूंच कर जाती है तब कहने लगते हैं कि (६) तुम प्रकरण विरुद्ध दयानन्द जी का जिक्र लाते हो? आज शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा का है, मूर्ति पूजा वेद से सिद्ध करो? इसके उत्तर में जब हम यह कह देते हैं कि मूर्तिपूजा स्वामी जी ने वेद से सिद्ध कर अपने ग्रन्थों में लिखी है फिर हम क्यों सिद्ध करें? तुम्हारे ग्रन्थ ही तुम्हारे आगे क्यों न रखदें? यहां पर जब इनका मस्तिष्क जवाब दे जाता है तब कहते हैं कि (७) दयानन्द से और आर्यसमाज से कोई सम्बन्ध नहीं? आर्यसमाज न दयानन्द को माने और न दयानन्द के पिता को, आर्यसमाज तो वेद को मानती है? ये बातें रामचन्द्र सुनार देहलवी और बुद्धिदेव पंजाबी कई बार कह चुके। जब इसके उत्तर में कहा जाता है कि तुम पिण्ड छुड़ाने के लिये ये बातें कहते हो। यदि आर्यसमाज दयानन्द को नहीं मानती तो दयानन्द की शताब्दि में लक्षों रुपया क्यों खर्च किया? जाने द हमें अधिक बहस नहीं करनी, समस्त आर्य प्रतिनिधियों से यह ऐलान निकलव दो कि हम दयानन्द के लेख को नहीं मानते—बस फिर हम दयानन्द के लेख को प्रमाण में न देंगे? यहाँ पर जब आर्यसमाजियों को कुछ नहीं सूझता तब कहने लग हैं कि (८) हम दयानन्द की बेवकूफी की बात थोड़े ही मान लेंगे? चाहे हमा गरदन पर छुरी चलजाय वह हमको मंजूर है किन्तु दयानन्द के इन गपोड़ों को ह हरगिज २ नहीं मानेंगे, यह बात कोंच के प्रश्नोत्तर में वैश्य रामदीन पहारिया तीन बार कही थी जो अब ब्रह्मानन्द नामक संन्यासी बने हुये हैं। जब यहां पर भ युक्तियों द्वारा यह सिद्ध किया जाता है कि स्वामी जी की बात आर्यसमाज माननी होगी? तब आर्यसमाजी स्वा० दयानन्द जी को गालियां देने लगते है शिकारपुर सिन्ध के शास्त्रार्थ में शास्त्रार्थ करते हुये मुल्तान निवासी लोकना आर्यसमाजी ने दो बार स्वामी जी को गालियां दी थीं जिनको हम लिख नह सकते? इसी प्रकार भूतपूर्व सेक्रेटरी आर्यसमाज कानपुर पं० सूर्यप्रसाद जी यह बात कही थी कि आज कल हम दयानन्द की मूर्खता पर उनकी जान को र हैं उनको यह क्या सूझा जो विधवाओं के विवाह का खण्डन कर गये? भाव य है कि आर्यसमाजी चालाकी चलेंगे, फांसी चढ़ने को तैयार होंगे, स्वामी जी गालियाँ देने लगेंगे, इन सब अयोग्य कृत्यों को तो ये धर्म समझते है किन्तु स्व

दयानन्द जी के लेख को मानना आर्यसमाजियों की दृष्टि में घोर महापाप है। जो मनुष्य अपने महर्षि की इस प्रकार मिट्टी पलीद करे उसको मनुष्य और आर्यसमाजी कहना घोर पाप नहीं तो और क्या है? दयानन्द के ऊपर आर्यसमाजियों की कितनी श्रद्धा है इसको पाठक अपने मन में विचार लें।

दयानन्द की आज्ञायें

स्वामी जी ने बार बार वेदों का अवलोकन कर उनसे आर्यसमाजियों के लिये कुछ नये नये सिद्धान्त निकाले हैं और वे सब सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में लिख दिये हैं। आर्यसमाजी स्वामी जी के लेखों को वेदानुकूल तो बतलाते हैं किन्तु स्वामी जी ने जिन वैदिक कृत्यों का आर्यसमाजियों को उपदेश किया है उनको नहीं करते। हाँ-शास्त्रानुसार छिड़ जाने पर उनको चालबाजी से वैदिक

[illegible] खर्च किया? जाने दो जब आचरण या मानने का काम पड़ता [illegible] यह ऐलान निकलवा [illegible]न्तों को ढपोलशंखी सिद्धान्त या पोप [illegible] दयानन्द के लेख को उनको कर्तव्य में नहीं लाते। हम कुछ [उ]दाहरण इस विषय के पाठकों के आगे रखते हैं पढ़ने की कृपा करें।

नियोग।

स्वामी दयानन्द जी ने द्विजातियों की स्त्रियों के लिये नियोग करना धर्म [लि]खा है। इस नियोग को हमने इस ग्रन्थ के प्रमाण पंचक प्रकरण नं० २४ से ३० [त]क में दिखलाया है। आर्यसमाजी इस नियोग को वैदिक मानते हैं और वैदिक [सि]द्ध करने के लिये शास्त्रार्थ भी करते हैं किन्तु आज तक किसी भी आर्यसमाजी [ने] चार प्रकार के नियोगों में से एक भी नियोग अपनी किसी बहू-बेटी को नहीं [क]रवाया, अब आपही बतलाइये आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द जी के भक्त हैं या [औ]र शत्रु? सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी के द्वारा लिखे हुये नियोग जब आर्यसमाजी [न] करेंगे तो क्या ईसाई मुसलमान करेंगे? जब स्वामी जी ने नियोग को धर्म लिखा []तो धर्म से दूर भागना क्या आर्यसमाजियों को स्वार्थी सिद्ध नहीं करता।

दूध पिलाना।

स्वामी जी ने गहरी दृष्टि से जब वेद को पढ़ा तब उसमें यह निकला कि [ब]च्चे को ६ रोज माता दूध पिलावे और फिर धायी। इसको हमने प्रमाण पंचक के

३८ नं में दिखलाया है। आर्यसमाजी कहते हैं कि स्वामी जी का यह लेख वैदिक किन्तु कर्तव्यता के समय कोई भी आर्यसमाजी इसको आचरण में नहीं लाता सभी आर्यसमाजियों के यहां बच्चे को माता दूध पिलाती है। जब स्वामी जी क लेख वैदिक था तो धायी का दूध पिलाना आर्यसमाजियों ने क्यों छोड़ा ? समभ गये कि स्वामी जी गपोड़े हांकते हैं।

पुत्र बदलना।

स्वामी जी ने लिखा है कि यदि शूद्र का लड़का विद्वान होजावे तो राजसभ उस लड़के को ब्राह्मण को दे दे और ब्राह्मण का लड़का यदि मूर्ख रहे तो उसको किसी शूद्र को दे दे उसको हमने प्रमाणपंचक के नं० ३६ में लिखा है आर्यसमाजी इसको वैदिक कहते हैं, इसके ऊपर शास्त्रार्थ भी करते हैं किन्तु आज तक किसी भी आर्यसमाजी ने पुत्र नहीं बदला ? किसी भी आर्यसमाजी ब्राह्मण ने पढ़े हुये भंगी चमार के लड़के को अपना पुत्र नहीं बनाया और किसी भी महाशय अपने मूर्ख पुत्र को भंगी को नहीं दिया ? स्वामी के लिखे हुये पुत्र बदलने सिद्धान्त पर आर्यसमाजियों की कितनी श्रद्धा है इसको पाठक समझें।

फोटू और जीवन चरित्र।

स्वा० दयानन्द जी ने वर वधू के विवाह को फोटू और उनके जीवन चरि के आधार पर करना लिखा है, हमने इसको प्रमाण पंचक के नं ४० में दिखला है। किन्तु आज तक किसी भी आर्यसमाजी ने अपनी कन्या तथा लड़के का स जीवन चरित्र तैयार नहीं किया और न उस जीवन चरित्र और फोटू के जरि से अपनी कन्या तथा पुत्र का विवाह ही किया फिर स्वा० दयानन्द जी के लिखे इ वैदिक विवाह को क्या गधे और कुत्ते आचरण में लावेंगे ? इस लेख को आर्य जियों ने ऋषिलिखित वैदिक होने पर भी क्यों छोड़ दिया ? इस पर पाठक विच करें ?

शिखाकृन्तन।

स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि गर्म देश में मूंछ दाड़ी अ शिखा इन तीनों को ही कटवादे, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं ४६ में लिखा किन्तु बीकानेर, जोधपुर, शिवि, सिन्ध प्रभृति अनेक गर्म देशों में आर्यसमाज रहते हैं, वे भी शिखा-मूंछ नहीं कटवाते यह क्या ? महर्षि लिखित वेद धर्म आर्यसमाजी नौ कोस दूर क्यों भागते हैं ? क्या स्वामी जी के सत्यार्थप्रकाश में लि समस्त वैदिक धर्म आर्य्यसमाजियों की दृष्टि में घृणित हैं ?

विवाहकाल।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि सोलहवें वर्ष से लेकर चौवीसवें वर्ष तक न्या का और पच्चीसवें वर्ष से लेकर अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह उत्तम विवाह है, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ४२ में लिखा है। आर्य्यसमाजियों में से क्या किसी आर्यसमाजी ने अपने पुत्र का विवाह अड़तालीसवें वर्ष में किया है? हमारी समझ में एक भी आर्य्यसमाजी भूतल पर ऐसा न मिलेगा कि जिसके माता पिता ने उसका विवाह अड़तालीसवें वर्ष में किया हो। अड़तालीसवें वर्ष के विवाह को जब आर्यसमाजी नहीं मानते तो क्या उनकी दृष्टि में यह लेख पागलपन का लेख नहीं है।

श्राद्धतर्पण।

स्वा० दयानन्द जी ने जीवित माता पिता का श्राद्ध तर्पण करना वैदिक तलाया है, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ४३ में लिखा है। माता पिता को जिन तो आर्यसमाजी देते हैं किन्तु 'ये निषाताः' इत्यादि मन्त्रों से माता पिता को ाकर तथा आसन पर बिठला, उनके चरणों में गिर उनके भोजन के चारों तरफ गती हुई लकड़ी फेर भोजन पर कच्चे तिल चावल चढ़ा कर नहीं देते और न र्से अपनी स्त्री के गर्भ धारण करवानें की प्रार्थना ही करते हैं श्राद्ध की समस्त धियों द्वारा किसी भी आर्यसमाजी ने आज तक अपने माता पिता का श्राद्ध हीं किया। क्या आर्यसमाजियों की दृष्टि में स्वामी दयानन्द जी तथा वेद दोनों ठे नहीं हैं?

विवाह।

स्वामी दयानन्द जी ने विवाह लड़का लड़की के आधीन रक्खा है इसको ने प्रमाण पंचक के नं० ४४ में लिखा है। क्या एक भी आर्यसमाजी संसार में ता है जिसने अपनी कन्या को पति के ढूंढने की आज्ञा दे दी हो। यदि नहीं दी र सभी कन्याओं का विवाह उनके माता पिता ही करते हैं तो क्या यह मानना गा कि स्वामी के लिखे इस वैदिक धर्म का पालन यूरोप वाले करेंगे?

सालम मिश्री का नुसखा।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि भोग के अन्त में सोंठ, केशर, असगंध, छोटी इची और सालममिश्री दूध में डाल के और गर्म जल से स्नान करके जो प्रथम रक्खा हुआ ठंडा दूध है उसको यथा रुचि दोनों पीकर अलग अलग अपनी

अपनी शय्या में शयन करें। इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ४८ में दिखलाया है। क्या सभी आर्यसमाजी स्वामी जी के कहे हुये इस वैदिक धर्म का अनुष्ठान करते हैं? नहीं करते तो स्वामी जी के बतलाये कोकशास्त्रोक्त इस धर्म का पालन कौन करेगा?

वीर्याकर्षण–योनिसंकोचन।

स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र, अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहें डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य प्राप्त समय अपान वायु को ऊपर खींचे। योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे पश्चात् दोनों शुद्ध जलसे स्नान करें, इसको हमने प्रमाण पंचकके नं०४६ में दिखलाया है, क्या महर्षि की बतलाई इस वैदिक चाँद मारी का अनुष्ठान आर्यसमाजी करते हैं? यदि नहीं करते तो फिर इस वैदिक धर्म का अनुष्ठान क्या यहूदी करेंगे?

आयु

स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में मनुष्य की आयु चारसौ वर्ष की बतलाई है इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ५० में दिखला दिया है। क्या किसी आर्यसमाजी ने स्वामी दयानन्दोक्त ब्रह्मचर्य विधि का अनुष्ठान कर चारसौ वर्ष की अपनी उम्र बनाई? या बनाने का उद्योग किया है? यदि नहीं किया तो क्या यह आर्यसमाजियों की दृष्टिमें सन्निपात ग्रस्त मनुष्यका लेख है? स्वामी जी कथित विधि द्वारा चारसौ वर्षकी आयु आर्यसमाजी न बनावेंगे तो क्या भेड़ बकरियां बनावेंगी? क्या स्वामी जी के इस लेख पर आर्यसमाजियों का विश्वास है।

ध्यान।

स्वामी जी अवतार की मूर्तियों के ध्यान से घबराते हैं, उन्होंने अपने प्यारे शिष्यों को लिख दिया है कि तुम कमर के हाड़ का ध्यान किया करो इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ५२ में दिखलाया है। यह क्या बात है आज तक एक भी आर्यसमाजी ने कमर के हाड़ का ध्यान क्यों नहीं किया? स्वामी जी के इस लेख को जो [illegible]र्यसमाजी नहीं मानते तो क्या उनको स्वामी जी के लेख से घृणा है।

सुशीलता का उपदेश।

[illegible]श में लिखा है कि जिस दिन गर्भाधान हो उसी दिन से लेकर

माता सुशीलता का उपदेश करे इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ५३ में उद्धृत किया है। क्या किसी आर्यसमाजी की स्त्री ने गर्भाधान के दिन से अपने पुत्र को सुशीलता का उपदेश देना आरम्भ कर दिया? यदि आर्यसमाजी इससे इन्कार करते हैं तो दयानन्दोक्त इस वैदिक धर्म का पालन क्या चील कौवे करेंगे?

ईश्वर का मूर्खत्व।

स्वामी दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ईश्वर में मूर्खत्व और नीचत्व ये दो दोष माने हैं इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ३२ में दिखलाया है। क्या आर्यसमाजी स्वामी जी की इस विवेचना को सत्य समझ कर ईश्वर को मूर्ख मानते हैं? नहीं मानते तो क्यों? क्या स्वा० दयानन्द जी के बतलाये हुये इस वैदिक विज्ञान को खूंख़ार जानवर मानेंगे?

हवन फल।

स्वामी जी ने हवन से दुर्गन्धि की निवृत्ति मानी है इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ५६ में लिखा है। क्या आर्य्यसमाजी इसको सत्यमान अपने २ शौचालयों में जहां दुर्गन्धि ज्यादा होती है हवन करने लग गये? यदि आर्य्यसमाजी पाखानों में हवन करके उनकी दुर्गन्धि का नाश नहीं करते तो फिर संसार के पास क्या प्रमाण है जिससे वह समझले कि हवन से दुर्गंधि दूर होती है यदि इस ऋषि कथित वैदिक लेख को आर्य्यसमाजी अमल में नहीं लावेंगे तो क्या इसका अनुष्ठान ऊंट- हाथी करेंगे?

मंत्र गुण।

स्वा० दयानन्द जी ने लिखा है कि हवन के मंत्रों में हवन के गुण लिखे हैं इस को हमने प्रमाण पंचक के नं० ५८ में स्पष्ट किया है। क्या कोई भी आर्य्यसमाजी इस बात को सत्य मानता है कि हवन के मंत्रों में हवन के गुण लिखे हैं। जब हवन के मंत्र आर्य्यसमाजियों के आगे रख दिये जाते हैं तब आर्य्यसमाजी बुरी तरह बिगड़ते हैं और मंत्र आगे रखने वाले एवं स्वा दयानन्द जी इन दोनों की चोखी खबर ले लेते हैं। तथा अन्त में यह भी कह देते हैं कि हम दयानन्द जी के लेख को मानने वाले नहीं।

परमेश्वर के नाम।

सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि ओं भूः और प्राण आदि नाम पर[illegible] इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६० में उद्धृत किया है और[illegible]

केतु आदि नाम भी ईश्वर के माने हैं इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ७१ में लिख दिया है। क्या भूः प्राण, राहु-केतु आदि ईश्वर के नाम कोई आर्य्यसमाजी मानने को तैयार है ? यदि तैयार है तो शास्त्रार्थ के समय क्रोध क्यों करते हैं और फिर यह क्यों कह देते हैं कि दयानन्द के लेख के हम जिम्मेदार नहीं ? भूः और प्राण तथा राहु-केतु दयानन्द के बतलाये ईश्वर के ये अजब नाम आर्य्यसमाजी न मानेंगे तो क्या मण्डूक- मत्स्य मानेंगे ?

अनोखा अर्थ।

स्वा० दयानन्द जी ने लिखा है स्वाहा शब्द का अर्थ यह है कि जैसा मन में हो वैसा ही बोले, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६१ में लिखा है । क्या यह अर्थ आर्य्यसमाजी सत्य समझते हैं ? यदि सत्य समझते हैं तो "अग्नये स्वाहा" बोल कर आहुति क्यों देते हैं ? क्या यह कहते हैं कि हे 'आग तेरे लिये जैसा मेरे मन में है वैसा बोलता हूं' । अग्नि तो दयानन्द के मत में जड़ है फिर जड़ों से बात चीत करना क्या मूर्खता नहीं है ? हम किस प्रकार मानें कि स्वा० दयानन्द के कहे स्वाहा शब्द के अर्थ को आर्य्यसमाजी सत्य मानते हैं ? एक बार सी० पी० में रहने वाले ब्रह्मानन्द संन्यासी नामक आर्य्यसमाजी ने कहा था कि दयानन्द का लिखा स्वाहा शब्द का यह अर्थ मैं ही नहीं बल्कि समस्त आर्य्यसमाजी गलत मानते हैं । चलो छुट्टी पाई ।

यज्ञ ।

स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ बतलाये हैं इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६३ में लिखा है। अग्निहोत्र और अश्वमेधके बीचमें इष्टि, दर्श, पौर्णमास, पुरुषमेध, शतरुद्रियाग, सौत्रामणि, बाजपेय, सर्वमेध, एवं खास अश्वमेध यज्ञ हैं क्या इनको आर्य्यसमाजी सत्य मानते हैं ? यदि मानते हैं तो क्या किसी आर्य्यसमाजीने कभी कोई यज्ञ किया है ? या यज्ञके मण्डन का लेख लिखा है ? अथवा किसी आर्य्यसमाजी अखबार या किसी ग्रन्थ में इनकी विधि का कभी उल्लेख किया है ? अथवा किसी आर्य्यसमाजी पंडित ने कभी अपने व्याख्यान में समझाया है कि इस यज्ञ को यह विधि है ? यदि कुछ भी नहीं किया तो हम कैसे मानलें कि आर्य्यसमाज "अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त" दयानन्द के इस लेख को सत्य मानती है ? यदि इसको आर्य्यसमाजी सत्य न मानेंगे तो फिर क्या नदी नाले सत्य मानेंगे ?

वैश्य का लक्षण ।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि जो ऊरु के बल से सब देशों में जावे आवे उस को वैश्य कहते हैं इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६४ में लिखा है। क्या इसको आर्य्यसमाजी सत्य मानते हैं ? यदि सत्य मानते हैं तो समस्त देशों में घूमने वाला ऊंट क्या आर्य्यसमाजियों की दृष्टि में वैश्य है। इस प्रश्न पर घबरा कर आर्य्यसमाजी कह उठते हैं कि यह प्रश्न तुम स्वामी से कर सकते थे हम से नहीं ? हम इनसे पूछते हैं कि जब स्वा० दयानन्द जी का वैश्य का लक्षण वैदिक है तो तुम उससे घबरा कर स्वामी जी के जिम्मे इसके उत्तर को क्यों मढ़ते हो ?

तुरन्त दान-महा कल्याण ।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि विवाह विधि को समाप्त कर तत्काल ही गर्भाधान की विधि की जावे, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६६ में दिखलाया है। तब यह धार्मिक कृत्य है तो आर्य्यसमाजी 'अभी समय नहीं' यह कह कर क्यों जी चुराते हैं क्या स्वा० दयानन्द जी के लिखे इस वैदिक धर्म का अनुष्ठान पशु-पक्षी करेंगे ?

ब्रह्मा का लक्षण ।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि जो सांगोपांग चारों वेदों को पढ़ा हो वह ब्रह्मा, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६७ में दिखलाया है। क्या आर्य्यसमाजी इसको सच मानते हैं ? यदि सच मानते हैं तो बतलावें कि आर्य्यसमाज ने किस २ मनुष्य को ब्रह्मा की उपाधि दी है ? यदि इसको सच नहीं मानते तो क्या स्वा० दयानन्द जी के साथ आर्य्यसमाजियों का विकट द्वेष है ?

ऋषि ।

स्वा० दयानन्द जी ने स्वमन्तव्यामन्तव्य में ब्रह्मा को ऋषि लिखा है, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६८ में दिखलाया है। क्या आर्य्यसमाज इसको सच मानती है ? यदि सच मानती है तो बतलावे कि किस २ आर्य्यसमाजी ने ब्रह्मा को ऋषि लिखा है।

गुरु भक्ति ।

स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में गुरु को लात घूंसों से पीटना या फाँसी तक पर लटका देना लिखा है, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ६६ में दिख-

लाया है । यदि आर्य्यसमाजी इसको सच मानते हैं तो उन्होंने अपने पूज्य गुरुओं के साथ में क्या ऐसा व्यवहार किया है ? यदि नहीं किया तो क्यों ? जब स्वामी जी के वैदिक लेख को आर्य्यसमाजी ही आचरण में नहीं लावेंगे तो क्या पारसी लावेंगे ?

मनुष्य मांस ।

स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि यदि मनुष्य का मांस मनुष्य खा ले तो कोई हानि नहीं, इस विषय को हमने प्रमाण पंचक के नं० ७० में लिखा है । क्या आर्य्यसमाजी भी यही मानते हैं ? यदि मानते हैं तो मनुष्य का माँस क्यों नहीं खाते ? यदि नहीं मानते तो स्वा० दयानन्द जी के लिखे इस वैदिक धर्मी लेख को क्या जैनी मानेंगे ?

जल पीना ।

स्वा० दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि जल वस्त्र से छान कर पीना चाहिये, इसको हमने प्रमाण पंचक के नं० ७३ में लिखा है क्या आर्य्यसमाजी इसको सच मानते हैं ? यदि सच मानते हैं तो क्या कपड़े से छान कर जल पीते हैं । नहीं पीते तो स्वा० दयानन्द जी के बतलाये इस वैदिक धर्मको क्या सनातनधर्मियों के लिये छोड़ दिया है ?

वर्णव्यवस्था ।

स्वा० दयानन्दजीने वर्णव्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव से माननी लिखी है हमने इसको प्रमाणपंचक के नं० ६१ में दिखलाया है । क्या आर्य्यसमाजी इसको सच मानते हैं । यदि सच मानते हैं तो क्या आर्य्यसमाजियों ने अपने उन बाप, दादा, भाई, लड़के और पौत्रों को शूद्र बनाया है । जो बिल्कुल ही वेद नहीं पढ़े ? यदि नहीं बनाया तो गुण कर्म स्वभाव की वर्णव्यवस्था को क्या ईसाई मानेंगे ?

तात्विक विवेचन ।

स्वामी दयानन्द जी ने जितने भी धार्मिक कर्तव्य और धार्मिक विवेचन लिखे हैं आर्यसमाजी उनमें से केवल परस्पर में नमस्ते करना, इस एक आज्ञा को तो सत्य मानते हैं बाकी के लेख इनकी दृष्टि में अमान्य घृणित और गप्पे हैं । वास्तव में आर्यसमाजी स्वामी जी के सिद्धान्तों को बिल्कुल नहीं मानते केवल संसार को धोखा देने के लिये यह झूंठ कहते रहते हैं कि हम दयानन्द जी के लिखे धार्मिक

सिद्धान्तों को सच मानते हैं। हमने नमूने के लिये कुछ प्रकरण ऊपर दिखला दिये हैं, यदि कोई हमसे आग्रह करे तो हम दयानन्द जी की प्रत्येक धार्मिक शिक्षा को लिख कर उत्तम रीति से दिखला सकते हैं

वेद पर विश्वास

हम ऊपर लिख आये हैं कि स्वामी दयानन्द जी के धार्मिक लेखों पर आर्यसमाज की न श्रद्धा है न विश्वास। अब हम यह दिखलावेंगे कि वेद पर आर्यसमाज की कितनी श्रद्धा है। वेद ईश्वर को निराकार और साकार दो रूप वाला बतलाता है, वेद यह भी कहता है कि आकाश, वायु, अग्नि जल, पृथ्वी ये पांच तत्व ईश्वर से उत्पन्न हुये हैं इस कारण ये ईश्वर के शरीर हैं। जैसे बरफ और जल में कोई भेद नहीं होता वैसे ही तत्वों में और ब्रह्म में कोई भेद नहीं। वेदने ब्रह्मा वराह, वामनादि ईश्वर के अवतारों के ... का भी विस्तृत लेख लिखा है देखो ईश्वर स्वरूप। वेद ...ल पाते हैं।

...नातनधर्मियों संसार से उखाड़ देने के लिये आर्यसमाज अपने मन से ...ती है यह वेदके ऊपर आर्यसमाजका पहिला विश्वास है।

...ा वर्णन किया, वेद ने यह भी आज्ञा दी कि तुम पूजन ..., जल, अग्नि पृथ्वी, के द्वारा ईश्वर का पूजन करना लिखा वेद ने "त्र्यम्बकम्" "नमस्तेऽस्तु विद्युते" "भवाशर्वौ" आदि सैकड़ों मन्त्रों में मूर्ति पूजा करने का विधान लिखा देखो वेद और आर्यसमाज की मूर्तिपूजा। किन्तु आर्यसमाज मूर्तिपूजा का अपने मन से ही खण्डन करती है यह आर्यसमाज का ...पर दूसरा विश्वास है।

वेद ब्रह्म को सृष्टि का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" मानता है इसमें ... ने अनेक मन्त्र दिये, देखो वेद और आर्यसमाज का "अभिन्न निमित्तोपदान कारण"। किन्तु आर्यसमाज वेद मिटाने के लिये ईश्वर को संसार का निमित्त कारण मानती है यह आर्यसमाज का वेद पर तीसरा विश्वास है।

वेद ने प्राणी मात्र की उत्पति ईश्वर के स्वरूप से लिखी है देखो वेद और आर्यसमाज का सृष्टि प्रकरण। किन्तु आर्यसमाज अपने मन से जवान जवान स्त्री और जवान जवान पुरुष तथा जवान जवान पशु और जवान जवान पक्षियों की उत्पत्ति अपने आप होगई मानती है यह आर्यसमाज का वेद पर चतुर्थ विश्वास है।

वेद ने मनुष्यों से भिन्न देव जाति का वर्णन बड़े विस्तार से किया है, देवताओं के कुछ नाम भी लिखे हैं, नामों से भिन्न देवताओं की संख्या लिखी, देखो वेद और आर्यसमाज का देवजाति प्रकरण। किन्तु आर्यसमाज अपने मन की तरंग से देवजाति का खण्डन कर लिखे पढ़े मनुष्यों को ही देवता मानती है यह आर्यसमाज का वेद पर पंचम विश्वास है।

वेदों ने वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मावतार के मुख से मानी है देखो वेद और आर्यसमाज का वेदोत्पत्ति प्रकरण। किन्तु आर्यसमाज नये नये जाल बना अग्नि, वायु, रवि इन तीन तत्व समूह को ऋषि बना, उनमें अपनी जबर्दस्ती से अंगिरा को मिला इनके द्वारा वेदों का प्रादुर्भाव होना मानती है यह आर्यसमाज का वेद पर छठा विश्वास है।

हमने वेद और आर्यसमाज नामक प्रकरण में यह स्पष्ट दिखला दिया कि आर्य्यसमाज वेद के किसी भी सिद्धान्त को नहीं मानती। वेद कहता है दिन तो आर्यसमाज कहती है रात, वेद कहता है धूप तो आर्यसमाज कहती है छाया, वेद कहता है प्रकाश तो आर्यसमाज कहती है अन्धकार, सभी सिद्धान्तों में जमीन और आसमान जैसा अन्तर है। अब आप समझ गये होंगे कि आर्यसमाज का आधार न वेद है—न दयानन्द के लेख, इसका आधार तो केवल गालियां देना, झूंठ बोलना, चाल बाजी करना, धोखे में फांसना, हठ बांध बैठना है। आर्यसमाज यदि वेद को प्रमाण मानती तो इसका आधार वेद रहता, यदि स्वा० दयानन्द जी के लेख को प्रमाण मानती तो इस का आधार स्वा० दयानन्द जी का लेख रहता किन्तु आर्य्यसमाजियों ने दोनों का ही मानना छोड़ दिया अतएव आर्य्यसमाज का कोई आधार ही नहीं रहा, आधार न रहने के कारण आर्य्यसमाज का मृत्यु हो गया और वह मृत्यु आर्यसमाजियों के हाथ से हुआ क्यों कि वेद और दयानन्द के लेख पर आर्यसमाजियों ने ही शिर हिलाया अतएव मानना पड़ेगा कि आर्यसमाज के मारने वाले न मुसलमान हैं न ईसाई, न यहूदी न पार्सी, न जैनी न सनातनधर्मी वरन् इसके मारने वाले वे ही आर्यसमाजी हैं जिनके नाम आर्यसमाज के रजिस्टर में लिखे हैं और जो आर्यसमाज के लीडर प्लीडर—पण्डित प्रोफेसर, प्रधान-मंत्री हैं। आधार छोड़ देने के कारण आर्यसमाजियों ने आर्यसमाज को ऐसा मारा कि सदा के लिये इसकी अन्त्येष्टि हो गई।

कई एक आर्यसमाजी यह कहते हैं कि हम गालियां देकर, झूंठ बोलकर, विविध प्रकार की चालबाजियां चल, मनुष्यों को धोखे में फांस, हठ बांध आर्यसमाज

की उन्नति करके दिखला रहे हैं फिर कोई कैसे कहेगा कि आर्यसमाज मर गई ? इसके ऊपर हम यही कहेंगे कि प्रथम तो लिखे पढ़े मनुष्यों पर इन पाँच मार्गों में से किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ सकता, दूसरे जब कोई मनुष्य यह समझ लेगा कि आर्यसमाज की जड़ इन अमानुषिक कर्तव्यों पर स्थित है तो फौरन आर्यसमाज छोड़ देगा। तीसरे इन अयोग्य कार्यों से न कोई धर्म चल सकता है और न स्थिर रह सकता है इसके विरुद्ध इन अयोग्य कार्यों के अवलम्बन करने वाले को संसार घृणा की दृष्टि से देखा करता है। हमने यहां पर जो लेख लिखा है वह आर्यसमाज से चिढ़ कर नहीं लिखा वरन् इस लिये लिखा है कि विचारशील मनुष्य विचार करें कि आर्यसमाज का अवलम्ब कोई धार्मिक ग्रन्थ है या संसार की आंख में धूल झोंक कर बलात्कार इसको सर्वोत्तम धर्म बतलाया है।

हरिः ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!





* श्रीगणेशायनमः *

हिन्दु कार्यालय के पुस्तकों

का—

सूचीपत्र ।

धर्मप्रकाश ।

यह पुस्तक आर्य्यसमाज और सनातनधर्म के सिद्धान्त में से किसके सिद्धान्त वेदानुकूल हैं इसकी जानकारी के लिये शास्त्री जी ने लिखी है। इसके प्रथम 'सत्यार्थप्रकाश' फिर उतने ही लेख के खण्डन का 'दयानन्द तिमिर भास्कर' इसके पश्चात् दयानन्द तिमिर भास्कर का खण्डन करने वाला 'भास्कर प्रकाश' फिर भास्कर प्रकाश के ऊपर 'धर्मप्रकाश' इस प्रकार प्रत्येक विषय पर चारों ग्रन्थों के लेख पूर्ण छापे गये हैं, इस ग्रन्थ की प्रशंसा स्वर्गीय विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र तथा वेदव्याख्याता पं० भीमसेन जी एवं विद्यारत्न पं० कन्हैयालाल जी, महोपदेशक पं० गोकुलचन्द जी शास्त्री, विद्यावागीश पं० गोविन्दराम शास्त्री और पं० श्रवणलाल जी प्रभृति स्वर्गीय विद्वानों ने लिखी है। वर्त्तमान काल के विद्वान् महामहोपध्याय पं० गिरिधर जी शास्त्री प्रिंसिपल जयपुर कालेज तथा कविरत्न पं० अखिलानन्द जी एवं विद्याविभूषण पं० श्रीकृष्ण जी जोशी बी० ए० एल० एल० बी० धार्मिक प्रोफेसर विश्वविद्यालय काशी प्रभृति अनेक विद्वानों ने की है इस ग्रन्थ में पृथक् २ समुल्लास हैं छः समुल्लास का यह ग्रन्थ छपा हुआ तैयार है। पृष्ठ संख्या १२१२। मूल्य ५) डाक व्यय चौदह आना।

सत्यार्थप्रकाश ।

स्वामी दयानन्द जी का बनाया हुआ असली 'सत्यार्थप्रकाश' यही है। इसमें मृतक पितरों का श्राद्ध, स्वर्ग में रहने वाले देवताओं का मानना तथा आर्य्यसमाजियों के लिये हवन करके गाय बैल को चढ़ कर जाना लिखा है। स्वामी दयानन्द

जी के स्वर्गवास होने पर प्रतिनिधि ने काट छाँट करके एक नया सत्यार्थप्रकाश बना लिया और इस असली सत्यार्थप्रकाश को खरीद खरीद कर आर्य्यसमाज ने नष्ट करना आरम्भ कर दिया, यहाँ तक अलभ्य हुआ कि तीन रुपये की पुस्तक खोजने पर साठ रुपये की भी नहीं मिलती थी, जब हमने यह देखा कि भीतरी जलन के कारण आर्य्यसमाजी लोग दयानन्द के सिद्धान्तों को संसार से उखेड़ रहे हैं तब हमने वही असल दयानन्दकृत सन् १८७५ में छपा प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश छपवा दिया। भारतवर्ष की आर्य्यसमाजों ने रेज़ुलेशन पास किया चन्दे का संग्रह हुआ, हम को मुकद्दमे का नोटिस दिया गया किन्तु इतने पर भी मुकद्दमा चल न सका, आर्य्यसमाजियों के मुँह पर स्याही पुत गई, हार कर घर में बैठ रहे। यह वही सत्यार्थप्रकाश है। मूल्य।२) रु० डाक महसूल पांच आने।

पुराणवर्म।

आर्य्यसमाजी मूर्तिपूजा, श्राद्ध, अवतार, वर्णव्यवस्था, विधवाविवाह, नियोगादि विषय पर सैकड़ों शास्त्रार्थ हार चुके, उपरोक्त विषय की पुस्तकें भी शास्त्री जी ने ऐसी लिखीं कि जिनके उत्तर में आज तक आर्य्यसमाज की लेखनी नहीं उठी, अब हार कर आर्य्यसमाजियोंने यह मैदान छोड़ दिया और पुराणों का खण्डन तथा पराणों पर शास्त्रार्थ आरम्भ कर दिये। आर्य्यसमाज के इस फौज फांटे वाले हमले सिाद ने के लिये शास्त्री जी ने "पुराणवर्म" नामक यह ग्रन्थ लिखा है यह ग्रन्थ अ... ा ही छपा है केवल पूर्वार्ध है, इसके ऊपर काशी से निकलने वाले साप्ताहिक हिन्दी केसरी ने लिखा है कि—

"पुराणवर्म पूर्वार्ध" धर्म ग्रन्थों की कौन कहे, जिस देव वाणी में हमारे धर्म ...थ लिखे हैं उससे भी पूर्णतया अपरिचित लोगों के बहकावे में आकर धार्मिक ...क्षा शून्य हमारे शिक्षित धर्म बांधव भी पुराणों के सम्बन्ध में हास्यास्पद शंकायें करते देखे सुने जाते हैं। इस प्रकार के सभी सज्जनों से हमारी प्रार्थना है कि वे 'पुराणवर्म' को एक वार अवश्य देखें, पुराणों पर बौद्ध काल से लेकर आज तक जितनी शंकायें हो सकीं हैं 'पुराणवर्म' में एक एक कर उन सभी के समाधान का प्रयत्न होगा। अभी 'पुराणवर्म' का केवल, 'पूर्वार्द्ध' ही प्रकाशित हुआ है। इसे आद्यन्त पढ़ने के बाद निःसंकोच भाव से हम कहते हैं कि पुराण के विद्यार्थी इस ग्रन्थ को अवश्य देखें। इस ग्रन्थ में जितनी शंकाओं का समाधान हुआ है उन पर कोई अगर मगर शेष नहीं रह जाता। हमारा विश्वास है कि 'उत्तरार्द्ध' के प्रका-

शित होजाने पर पुराणों के सम्बन्ध में एक भी शंका न रह जायगी। यदि इतने पर भी किसी को सन्तोष न होतो ग्रन्थकार की घोषणानुसार कोई भी मनुष्य विद्वत्ता पूर्ण खण्डन कर १०००) पारितोषिक लेने का प्रयत्न कर सकता है और हम अनुरोध करेंगे कि वह अवश्य प्रयत्न करे। अस्तु कहने का मतलब यह है कि पुराण के मानने वालों और उनके विरोधियों दोनों ही के लिये यह ग्रन्थ बड़े काम का है। इसी प्रकार इस ग्रन्थ के रचयिता पं० कालूराम जी शास्त्री सनातनधर्म की जो अकथनीय सेवा कर रहे हैं उस पर मुग्ध हो कुछ सनातनी यदि उन्हें श्री शंकराचार्य का अवतार मानने लगे हों तो क्या आश्चर्य है।

जिस 'पुराणवर्म' के पूर्वार्द्ध की समालोचना है उसका मूल्य ३) रु० और डाकव्यय ॥) आने। ग्रन्थकर्ता ने इस ग्रन्थ के खण्डन करने वाले को १०००) इनाम देना लिखा है।

व्याख्यान दिवाकर।

इस नाम का प्रशंसनीय ग्रन्थ शास्त्री जी ने लिखा है। यह इतना प्रशंसनीय है कि एक महीने में इसकी दो सहस्र कापियां बिक गईं। इसमें धर्म, धर्म, गृहस्थ-धर्म, अभ्युत्थान, सनातनधर्म गौरव ये पांच व्याख्यान धर्म के हैं। इसके आगे ईश्वर स्वरूप, अवतार, अवतारवाद, कृष्णावतार, ये चार व्याख्यान अवतार के हैं। मूर्तिपूजा, प्रतिमापूजन, मूर्तिपूजावाद, भक्ति, भक्ति इस प्रकार चौदह व्याख्यान हैं। सभी व्याख्यान मधुर, सरस प्रामाणिक और युक्ति युक्त हैं। इस ग्रन्थको हाथमें लेकर व्याख्यानदाता भी बन सकता है और शास्त्रार्थ में विरोधियों को पराजय भी कर सकता है। जिसमें ये चौदह व्याख्यान हैं उस "व्याख्यान दिवाकर" के "पूर्वार्द्ध" का मूल्य २) डाक महसूल पांच आने॥

विधवाविवाह निर्णय।

विधवाविवाह का आन्दोलन उठने पर शास्त्री जी ने यह ग्रन्थ तैयार किया है, इसमें वैदिक विवाह की उत्कर्षता, विधवाविवाह का जाल, वेद विवेचन, तर्क, निर्णय, नष्टे मृते मीमाँसा, वाग्दत्ता का पुनर्विवाह, पुनर्भू विवेचन, विधवाविवाह निषेध, इतिहास विवेचन, पुराणचर्चा, वेदमें नियोग की व्यवस्था ये बारह व्याख्यान हैं। यह ग्रन्थ व्याख्यान सीखने के लिये अद्वितीय है इस ग्रन्थ को हाथ में लेकर जो

शास्त्रार्थ करेगा वादी उसके आगे एक मिनट नहीं ठहर सकता इस ग्रन्थ के खण्डन करने वाले को ग्रन्थ कर्ता ने १०००) रुपया पारितोषक भी लिख दिया है ॥ यह ग्रन्थ व्याख्यान दिवाकर का दूसरा भाग है मूल्य २) रुपया डाक महसूल पांच आना ॥

दयानन्द छल कपट दर्पण ।

आर्यसमाजियों ने स्वामी दयानन्द जी के अनेक जीवन चरित्र लिखे हैं किंतु वे सब बनावटी और परस्पर विरुद्ध हैं। यह ग्रन्थ दयानन्द छल कपट दर्पण जिसका दूसरा नाम 'दयानन्द का जीवन चरित्र' है पं० जियालाल जी जैनी ने उत्कट खोजके साथ लिखाहै इस कारण यह सच्चा जीवन चरित्र है ॥ इसकी भाषा हृदयग्राही नहीं है किन्तु पंडित जी ने स्वामी दयानन्द के ऐसे मामले दिखलाये हैं जिनको पढ़ आर्य-समाजी शिर नीचा कर चल देते हैं ॥ इस ग्रन्थ का अधिकार लेकर हमने छपवाया है पाठक इसे अवश्य पढ़ें ॥ मूल्य दो रुपया, डाकव्यय पांच आने।

मूर्ति पूजा ।

वैदिक उपासना के विषय पर शास्त्री जी ने "मूर्तिपूजा" नामक ग्रन्थ लिखा है ॥ पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने भारत प्रसिद्ध सरस्वती मासिक पत्रिका में इस पुस्तक की भूरि भूरि प्रशंसा की है ॥ इस पुस्तक के खण्डन करने वाले को ग्रन्थकर्ता ने १०००) रु० परितोषिक भी रक्खा है ॥ सन् १९१० ई० से यह पुस्तक कई बार छपी, मूर्तिपूजा के खण्डन करने वालों के समस्त हौसले पस्त पड़ गये, खण्डन के लिये किसी ने भी लेखनी नहीं उठाई वरन् जिस दिन से यह पुस्तक तैयार हुई है मूर्ति खण्डन करने वालों ने शास्त्रार्थ करने छोड़ दिये भूल से कौंच, राठ, कुसरा, कानपुर प्रभृति जिन स्थानों में आर्यसमाज ने शास्त्रार्थ किया, इस पुस्तक के आगे भारी हार खाने पड़ी । पुस्तक का मूल्य १) रुपया डाक महसूल चार आना। ✓

अवतार ।

इस पुस्तक में वेद और युक्ति से ईश्वर का अवतार धारण करना दिखलाया गया है । वेद के प्रमाणों से ब्रह्मा, वराह वामना, यक्ष मत्स्य प्रभृति अनेक अवतार दिखलाये गये हैं। पुस्तक पढ़ते ही आर्यसमाजी लम्बी स्वांस लेने लगते हैं। ग्रन्थ कर्ता ने इस पुस्तक के खण्डन करने वाले को १०००) रु० इनाम रक्खा है किन्तु

किसी की भी लेखनी न उठ सकी। इस पुस्तक का मूल्य १) डाक महसूल चार आना।

धर्म।

धर्म क्या चीज़ है? धर्म से क्या लाभ है? संसार में धर्माचरण किस प्रकार शान्ति स्थापित करता है? धर्म के बिना संसार की क्या दुर्दशा होती है मरने के बाद जब कोई सहायता नहीं करता तब जीव का धर्म ही रक्षक होता है संसार में विज्ञान द्वारा सनातनधर्म किस प्रकार सत्य है और शेष धर्म सनातनधर्म के आगे किस प्रकार हार कर अपनी हस्ती को मिटा देते हैं प्रभृति विषयों का उत्तम फोटू खेंचा है, निर्माता इसके शास्त्री जी हैं मूल्य बारह आने, डाक महसूल चार आने।

शास्त्रार्थत्रय कानपुर।

सन् १९१८ में आर्यसमाज कानपुर को शास्त्रार्थ की खुजली पैदा हो गई, अन्त में सनातनधर्म सभा भी तैयार हुई और लेखवद्ध पुराण, श्राद्ध, मूर्तिपूजा इन तीन विषयों पर शास्त्रार्थ हुए। जिस आर्यसमाज कानपुर का डी० ए० वी० कालेज और डी० ए० वी० हाईस्कूल है वह आर्यसमाज ऐसी हारी कि उसने शास्त्रार्थ हो चुकने पर किसी समाचारपत्र में सूचना तक नहीं निकाली और न शास्त्रार्थ छपवाया वरन् उसी दिन से सनातनधर्म सभा से शास्त्रार्थ करने का नाम तक नहीं लिया। अब जब कोई सनातनधर्मी शास्त्रार्थ के लिये आर्यसमाज कानपुर को कहता है आर्यसमाज कानपुर फौरन शास्त्रार्थ से इन्कार कर देती है। इन तीनों शास्त्रार्थों में दोनों पक्षों के लेख बड़ी सावधानता के साथ संग्रह किये हैं। इस शास्त्रार्थत्रय को देख कर आर्यसमाजी चुप रह जाते हैं। मूल्य आठ आना, डाकव्यय चार आना।

नियोग।

स्वामी दयानन्द जी ने वेदों का गला घोट उनसे जबरदस्ती /योग निकाला है, स्वामी जी की समस्त चालाकियां इसमें खोल दी गईं। पं० /दरीदत्त जोशी, वेदतीर्थ पं० नरदेव शास्त्री, ला० मुन्शीराम उर्फ श्रद्धानन्द आदि ने जो इस नियोग का मीठा खण्डन लिखा है वह भी इस पुस्तक में दिखलाया है। स्वामी दयानन्द ने इतना झूंठा विषय लिखा कि आर्यसमाजियों को भी इस नियोग से घृणा होगई। इस विषय पर दो अदालतों के फैसले भी हैं, इन अदालतों ने नियोग को व्यभिचार

बतलाया है, नियोग पुस्तक में ये सब मौजूद हैं इसके खण्डन करने वाले को एक सहस्र रुपया इनाम देना भी शास्त्री जी ने लिखा है सन् १३ से यह पुस्तक छप रही है आर्यसमाजी कलेजा पकड़ के रह जाते हैं किन्तु उत्तर नहीं लिख सकते। मूल्य आठ आना।

वर्णव्यवस्था।

इस पुस्तक के प्रकरण और युक्तियों को देख कर सुधारक बिगाड़क लीडर और प्लीडर, आर्यसमाजी और जाति पांति तोड़कों के छक्के छूट जाते हैं, जबान बन्द हो जाती है, चुप से ही चल देते हैं। पुस्तक का मूल्य छः आना।

श्राद्ध निर्णय।

इस पुस्तक में युक्ति तथा वेदके प्रमाणों से मृतक पितरों का श्राद्ध सिद्ध किया गया है। साथ ही साथ जीवित पितरों के श्राद्ध की भी खूब छीछालेदर की गई है। पुस्तक को देख कर मृतक श्राद्ध के खण्डन करने वालों की नानी मर जाती है मूल्य छः आना

दयानन्द मत विद्रावण।

इस पुस्तक का जैसा नाम है वैसा ही गुण है। इसमें जो स्वामी दयानन्द के लेख का परस्पर विरोध और अवैदिकता दिखलाई गई है उसको सुन कर आर्य-समाजी अंगुली से जीभ दबा जाते हैं। मूल्य चार।आना।

सत्यार्थप्रकाश का छीछालेदर।

स्वामी दयानन्द जी के स्वर्गवास होने पर आर्यसमाजियों ने सत्यार्थ प्रकाश की छीछालेदर कर डाली। द्वितीयावृत्ति में स्वामी जी का कुछ लेख निकला कुछ अपनी तरफ से लिख कर सत्यार्थप्रकाश में मिलाया और उसको सत्य बतला दिया, फिर कुछ तृतीयावृत्ति में निकाला, चतुर्थावृत्तिमें फिर निकाल दिया कुछ बदल दिया इसी प्रकार तेरहवीं आवृत्ति तक इस ग्रन्थ में सत्यार्थप्रकाश की काट छाँट दिखलाई गई। स्वार्थ बुरी बलाय है, स्वार्थ में पड़ कर आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द ज को मूर्ख तथा उनके सत्यार्थप्रकाश को झूंठा लिखा करते हैं यही इस पुस्तक दिखलाया गया है मूल्य दो आना।